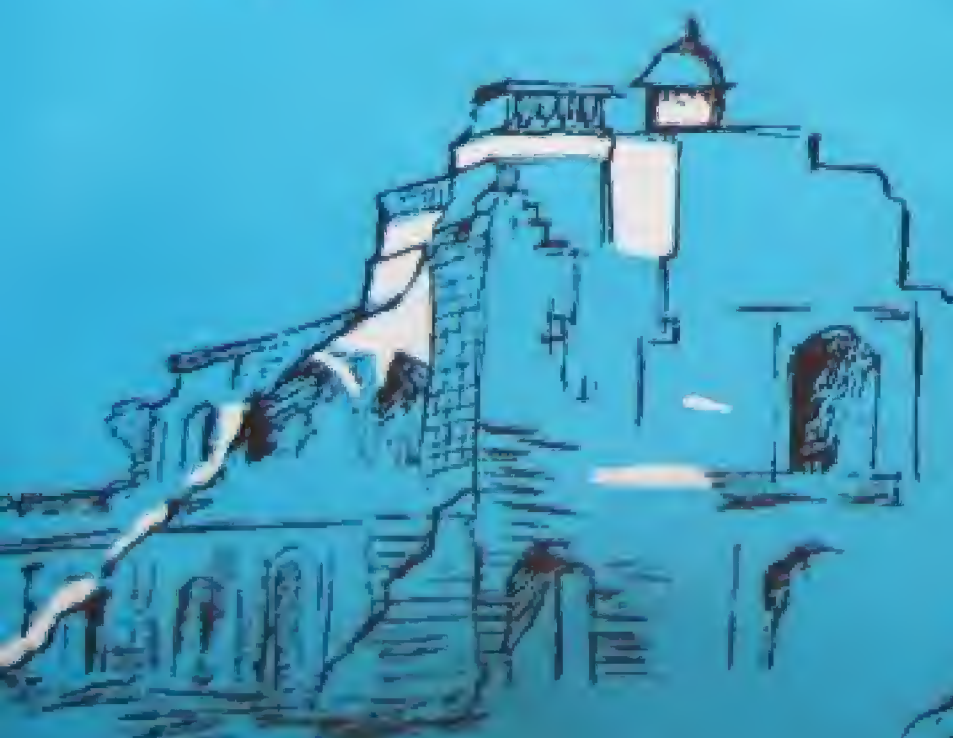


पुरुषोत्तम नागेश ओक

भारत में मुस्लिम सुल्तान



२



लेखक की अन्य रचनाएँ—

१. ताजमहल मन्दिर भवन है
२. भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
३. कौन कहता है अकबर महान् था ?
४. विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
५. भारत में मुस्लिम सुलतान-१
६. भारत में मुस्लिम सुलतान-२

भारत में मुस्लिम सुलतान

भाग - 2

(ई० श० 1527 से 1857 तक)

लेखक

पुरुषोत्तम नागेश ओक

अनुवादक

डा० रामरजपाल द्विवेदी

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली - 05

© लेखकाधीन

मूल्य 55.00

प्रकाशक हिन्दी साहित्य शकल

2 बी.डी. चैम्बर, 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005

email: indiabooks@rediffmail.com

फोन 23551344, 23553624

फैक्स 011-23553624

संस्करण 2006

मुद्रक संजीव आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-51

अनुक्रम

१. इब्राहीम लोदी	१७
२. बाबर	२४
३. हुमायूँ	४६
४. शेरशाह	६६
५. अकबर	८७
६. जहाँगीर	११६
७. शाहजहाँ	१३५
८. औरंगजेब	१५४
९. अन्य दुर्बल मुगल	२०१
१०. बहादुरशाह	२२२

प्रस्तावना

विदेशी यवनों के जत्थे, जो हिन्दुस्तान में बलपूर्वक घुसते रहे एवं जिन्होंने लगभग ७०० ई० से घर्म एवं तलवार का भय तथा यन्त्रणा दिखाई, १२०६ ई० में दिल्ली में अपनी केन्द्रीय सल्तनत स्थापित करने में सफल हुए।

अपनी समस्त कूरताओं, भ्रष्टाचार, भय-प्रदर्शन, उत्पीड़न एवं लूटपाट के बावजूद भी वह सल्तनत छह लम्बी तथा दुःखपूर्ण शतियों तक स्थित रही। १८५८ ई० में इसका अस्तित्व समाप्त कर दिया गया।

दिल्ली में विदेशी यवन-राज्य के वे ६२५ वर्ष दो समानांतरिकों में विभक्त किये जा सकते हैं। पूर्वार्द्ध (१२०६-१५२६) में दासों से समारम्भ होकर लोदियों में समाप्त होने वाले अनेक विदेशी यवन-वंश छल-कपट, हत्या, विश्वासघात द्वारा एक-दूसरे को स्थान-च्युत करने में सफल रहे। पर उत्तरार्द्ध (१५२६-१८५८) का इतिहास कुछ और ही है। इन ३३२ वर्षों का यह काल एक ही राज्यवंश—मुगलवंश—द्वारा शासित रहा। इससे पूर्व एक वंश दूसरे वंश को समाप्त कर राज्यासीन होता था, इस (मुगल) वंश में एक ही परिवार के लोग अपने ही शासक बुजुर्गों के विरुद्ध विद्रोह करते रहे।

पुत्र की पिता के विरुद्ध एवं भतीजे की शासक चाचा के विरुद्ध विद्रोह की यह परम्परा, जो भारत में विदेशी-यवन-शासन से प्रारम्भ हुई, समूचे मुगल शासन में व्याप्त रही।

इसका अनुभव सरलतया नहीं होता। विदेशी आक्रमणकर्ता बाबर द्वारा भारत में मुगल राज्य की स्थापना के पश्चात् उसके पुत्र हुमायूँ ने उसकी सब सम्पत्ति हड़प ली, जिसे उसने (बाबर ने) हिन्दुओं से लूटा था।

इतना ही खो, स्वयं हुमायूँ, अपने पिता की बिना आशा के, अपने कर्तव्य-स्थल से लगातार महीनों अनुपस्थित रहता और अनेकानेक लुटेरों को साथ ले घन एवं स्थियों की टोह में गाँवों की ओर चला जाता। अपने चार वर्ष के अदीर्घ शासन-काल में बाबर को सबसे बड़ा सन्ताप यही था कि उसका अपना ही पुत्र उसके अपने ही राज्य को अपने ही व्यक्तियों द्वारा लूट रहा था। उसके इस क्षोभ की अभिव्यक्ति उन संस्मरणों में लिपिबद्ध है जिनमें उसने अपने पुत्र के विद्रोही व्यवहार के प्रति उसे बुरा-भला कहा है।

हुमायूँ का पुत्र तो भला अपने पिता के विरुद्ध क्या विद्रोह करता क्योंकि अकबर जब मात्र तेरह वर्ष का था, हुमायूँ की मृत्यु हो गई। यदि हुमायूँ और अधिक जीवित रहता तो अकबर, जैसा कि उसके उत्तर-कालीन कार्यो से अनुमान लगाया जा सकता है, हुमायूँ को या तो कत्ल कर देता अथवा राज्य-च्युत करके बन्दी बना डालता। यद्यपि भाग्य ने हुमायूँ का साथ दिया पर उन तीन भाइयों से उसे काफी परेशानी हुई जिन्होंने हुमायूँ के बिछड़ एक के बाद एक विद्रोह किया।

अकबर के पुत्र जहाँगीर ने उसे विष देने का असफल प्रयास किया। अपने पिता को परोक्षतः हत्या करने में असफल रहने पर जहाँगीर ने अत्यन्त विद्रोह घोषित कर दिया।

जहाँगीर के पुत्र शाहजहाँ ने अपने पिता के प्रति विद्रोह की यह मुगल-परम्परा जारी रखी। पर बेचारा जहाँगीर को च्युत करने में सफल नहीं हुआ।

शाहजहाँ का पुत्र औरंगजेब वस्तुतः अपने पिता को बन्दी बनाने तथा अपने सभी भाइयों को मारने में सफल रहा। उसके पश्चात् तो मुगल साम्राज्य अत्यन्त ही बलहीन होकर छोटे-छोटे भागों में बंट गया था।

१७०७ में औरंगजेब की मृत्यु से लेकर अन्तिम मुगल बहादुरशाह के १८५८ में राजगद्दी से उतारे जाने तक मुगल दरबार के छल-कपट, लज्ज-टता, सतीत्वहरण, हत्या, लूटपाट आदि ने इसके पतन होने तथा दिल्ली की राजगद्दी पर अनेक छोटे-छोटे राजाओं के उत्थान-पतन में प्रभूत सहायता दी।

प्रस्तुत द्वितीय भाग प्रमुखतः मुगल-शासन से सम्बन्धित है जिनके साथ भारत में यवन-शासन समाप्त हुआ। पर क्योंकि पहले भाग में अन्तिम लोदी शासक, इब्राहीम, नहीं आ पाया था अतः प्रस्तुत भाग में उसको भी शामिल कर दिया गया है। प्रसंगतः यह मुगल-शासन की यवनिका उठाने में भी गहायक है।

भारत में यवन-शासन सम्बन्धी अनेक इतिहास विश्व में प्रचलित है पर उनमें अधिकांशतः दुष्टतापूर्ण तथ्यों को या तो छिपा देते हैं या उनकी लीपापोती करते हैं; और इसका कारण है चाटूक्तियों एवं धर्मान्विता की सहस्र वर्षीय परम्परा। अध्यापकों, प्राध्यापकों तथा लेखकों के मस्तिष्कों का इस खूबी के साथ परिवर्तन किया गया है कि अतीव क्रूर शासकों को वे या तो भूल जाएँ या ध्यान न दें या फिर उन्हें अत्यन्त भयता से चित्रित करें। यही मुख्य कारण है कि हम जनता के समक्ष उन तथ्यों को रखना चाहते हैं जिन्हें हमने विदेशी यवन लेखकों तथा यूरोपीय पर्यटकों एवं विद्वानों द्वारा लिखित विवरणों से लेकर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि भारतीय इतिहास के नाम पर विश्व को किस प्रकार प्रवंचित किया जाता है।

इस दूसरे भाग से दिल्ली की मध्यकालीन केन्द्रीय यवन सल्तनत का विवरण पूर्ण हो जाता है। हमने उन शासनों का मात्र बाह्य-स्पर्श किया है। अभी तो प्रभूत क्षेत्र है कि हम बिना किसी लाग-लपेट के चाटूक्तियों से रहित उनके नीच कारनामों का सविस्तार वर्णन करें। उन सहस्रों घटनाओं तथा तथ्यों को बेनकाब कर देना है जिन्हें या तो तोड़-मरोड़कर दिखाया गया है या फिर सहस्र वर्ष की परम्परा में विदेशी शासकों के लिए प्रशुविधाजनक समझकर छोड़ दिया गया है। इतिहास तो अतीत की घटनाओं का यथातथ्य लेखा-जोखा है, अतः वाक्छलों को निर्ममतापूर्वक भक्षण कर देना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

हजार वर्षों के विदेशी शासन से भारत स्वतन्त्र हुआ है अतः कोई कारण नहीं कि अब भी इतिहास को पहले की ही भाँति झूठों से भरा हुआ लिखा जाए, पढ़ाया जाए तथा प्रस्तुत किया जाए। इन दो भागों के प्रस्तुत करने का हमारा उद्देश्य प्रच्छन्न एवं विकृत किए गये सत्यों को जनता के समक्ष उजागर कर देना है।

दिल्ली सल्तनत के प्रतिरिक्त अन्यत्र की छोटी-मोटी सल्तनतें हुई हैं; तथा बहमनी, आदिलशाह, कुतुबशाह, निजामशाह, बादिरशाह, जौनपुर सुलतान, गुजरात सुलतान, मालवा सुलतान, हैदराबादी तथा टीपू सुलतान तथा प्रन्त के नवाब। बहुतों के तो नाम भी ज्ञात नहीं, उनके कृत्यों का तो प्रन्त ही नहीं।

उनके राज्यों पर भी ऐसे ही ग्रन्थों के प्रकाशन करने की हमारी इच्छा है। ये सभी ग्रन्थ मिलकर भारत में यवन-शासकों का विश्वकोश बन जाएंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय इतिहास में सन्दर्भ हेतु ऐसे ग्रन्थ की महती आवश्यकता है।

यह स्मरणीय है कि यद्यपि वे सब विभिन्न राष्ट्रियता एवं प्रजाति मानते थे, बोलियाँ भी भिन्न-भिन्न ही बोलते थे, उनके शासन प्रदेश भी भिन्न-भिन्न एवं विभिन्न प्रायामों के थे पर वे सभी इस्लाम के नाम पर शासन चलाते थे, तथा जहाँ कहीं भी जाते, मृत्यु और विनाश की लीला करते थे। पारम्परिक इतिहासों ने इस प्रथम तथ्य को या तो बड़े चातुर्यपूर्ण ढंग से यथासम्भव छिपाया है, तोड़ा-मरोड़ा है या फिर घूँ ही चलता कर दिया है। इन परम्परागत विवरणों को स्व० सर एच० एम० इलियट ने ठीक ही "निर्लज्ज एवं पक्षपातपूर्ण छल" कहा है। हम अपने पाठकों से इन परम्परागत इतिहासों के जालों से सावधानी बरतने की अपेक्षा रखते हैं।

प्रथमतः तो भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों से यह कहा गया है कि क्योंकि अरबी, फारसी, तुर्क तथा उर्दू में इन विदेशी यवनों के भारत में शासन से सम्बंधित अनेकानेक वृत्तान्त हैं अतः मुसलमान महान् इतिहासकार थे। यह सर्वथा गलत है। ये लेख तनिक भी सच्चे नहीं हैं। ये अधिकांशतः उन प्रथम, औरतहीन विदेशी घुमक्कड़ों द्वारा लिखे गये हैं जो भारत के यवन दरबारों के टुकड़खोर थे तथा जिन्होंने अपने छोटे-मोटे ज्ञान को अष्ट राजाओं की चापलूसी करने तथा उनके कुकृत्यों पर लीपापोती करने में प्रयुक्त कर रखा था। इस प्रकार शेरशाह सूरी, फीरोजशाह तुगलक तथा अनेक अन्य जिन्होंने कहर डाल दिया था वड़े न्यायप्रिय, विद्वान् तथा योग्य आदशाह ठहराए गए हैं।

इन वृत्तों का दूसरा जाल यह है कि ये सब मनमौजी लेखकों की काल्पनिक रचनाएँ हैं जिनकी छोटी-छोटी घटनाएँ भी—यथास्थान,

वर्तनी, घटनाएँ, व्यक्तित्व, विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियों के रक्त-संबंध—विश्वसनीय नहीं। इनमें से प्रत्येक लेखक ने नितान्त अप्रामाणिक गप्पें लिखीं या फिर कभी-कभी केवल पन्ने भरने के लिए नयी-नयी कथाएँ गढ़ लीं। ऐसी अशुद्धियों के हम अनेकानेक उदाहरण दे सकते हैं। चौथे मुगल सम्राट् जहाँगीर द्वारा लिखित 'जहाँगीरनामा' में, जो उसके अपने शासन का प्रामाणिक वृत्तान्त माना जाता है, उसने पुत्र परवेज की माँ को अपने हरम की अनगिनत स्त्रियों में से एक को बताया है किन्तु श्री एच० एम० इलियट की मान्यता है कि अबुल फजल ने परवेज की माँ किसी अन्य स्त्री को बताया है, और कि अबुल-फजल ही ठीक था। यह यवन-वृत्तान्तों की अविश्वसनीयता का एक उदाहरण है। स्वयं परवेज का पिता, जिसने वृत्तान्त लिखा, इस बात में विश्वसनीय नहीं कि अपने पुत्र की असली माँ तक को बता सके।

प्रथम भयानक विदेशी यवन आक्रमणकर्ता मुहम्मद बिन कासिम ने जब भारत पर हमला किया, अरबी वृत्तान्त सिन्ध के हिन्दू राजा का नाम दाहिर बताते हैं। उनका वास्तविक नाम धैर्यसेन होगा पर अरब (तथा यूनानी) लेखकों ने भारतीय नामों के साथ बड़ी मनमानी की है। उन इतिहास लेखकों का कैसे विश्वास किया जाय जो नामों तक के अति इतने लापरवाह थे? इसी प्रकार उसकी घरेलू स्त्रियों के विषय में बताते हुए एक अरब लेखक एक स्त्री को दाहिर की बहन, दूसरा दाहिर की पत्नी बताता है तो तीसरे (तथा आगे के अन्य भी) का तो कहना ही क्या? उसके अनुसार तो दाहिरने अपनी बहन से ही विवाह किया था। समय के व्यतीत होने पर परवर्ती इतिहासकारों तथा प्राध्यापकों द्वारा इस नीच अरब मूर्ख को प्रामाणिक मानकर उद्धृत किया जाता है और हिन्दू अपने ही देश में घृणा के पात्र बनते हैं केवल इसलिए कि एक अरब ने असावधानीपूर्वक या जानबूझकर यह आक्षेप लगा दिया कि हिन्दू अपनी सगी बहनों से विवाह करते थे।

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश (विश्वकोश, खण्ड १०, पृष्ठ 'के' ३६५) में उल्लेख है कि सभी अरबी वृत्तान्त ६४० से १,००० ई० तक के काबुल के (हिन्दू) राजाओं को ज़ांतबिल (Zant Bil) कहते हैं। ३६६ पृष्ठ पर विश्वकोश का अनुमान है कि काबुल के सभी राजा 'रणपाल' शब्द

प्रयुक्त करते होंगे। यह पदवी ज़ांतबिल (Zant Bil) के रूप में प्रयुक्त प्रकार से तिकी गई होगी और इसीलिए अरब लेखकों ने इसका प्रयोग ६४० से १,००० ई० तक के सभी हिन्दू राजाओं के लिए प्रयुक्त किया होगा। इन सब पर विचार करते हुए अरबों को महान् इतिहासकार मानने में कहाँ तक धोचल्य है? इससे सभी सम्बन्धितों को सावधान हो जाना चाहिए कि सभी मुस्लिम इतिहास कितने अविश्वसनीय है।

दूसरा जाल, जो सभी मुस्लिम वृत्तान्तों में पाया जाता है, यह है कि वे अपने सभी संरक्षकों को महान् मेघावान, लेखकों, कवियों तथा प्राविष्कारकों के रूप में प्रशंसा करते हैं। उदाहरणार्थ हुमायूँ की, जो सदैव नज़े में घुल रहता था एवं जो घनाचारण रूप से स्त्री-लोलुप था, अनेक वृत्तान्तों में महान् ज्योतिषी, गणितज्ञ और न जाने किस-किस रूप में प्रशंसा हुई है। हाँ, ज्योतिष की उसे एक ही बात आती थी—कि सूर्य ज्ञान: निरुक्तता है और साथ छिपता है। अतः इतिहास के विद्यार्थियों को, मुस्लिम वृत्तान्तों को सत्य रूप में नहीं स्वीकार लेना चाहिए। धृष्टि अर्थ-ज्ञान के लिए उन चापलूस लेखकों ने क्या-क्या नहीं गढ़ लिया?

यवन वृत्तान्तकारों की एक और नीचता रही है—और वह है विजित हिन्दू महलों, शालाओं, नहरों, किलों, नहरों, बगीचों आदि के निर्माण को अपने यवन संरक्षकों द्वारा निर्मित बता देना। हमसे विश्वास कराया जाता है कि अपने चार बर्षीय-राज्य काल में बाबर ने अनेक उद्यान, महल एवं मस्जिदें बनवाईं, हुमायूँ ने अपनी निजी दिल्ली बसाई और ज्यों ही उसका पतन हुआ जेरशाह ने उस दिल्ली को समस्त: विनष्ट कर अपने पाँच बर्ष के अल्पकाल में अपनी दिल्ली बसाई। इससे ही सन्तुष्ट न हो जेरशाह ने हज़ारों मौल जम्हों प्रमुख सड़कों, सराय, और कुएँ बनवाए। वेद का विषय है कि हमारे विद्यार्थी एवं विद्वान् इसी जल्दी जाल में फँस जाते हैं कि इन जाहिल चापलूसों द्वारा निर्मित कूड़े-करकट को यँ ही स्वीकार कर लेते हैं। सामान्य इतिहासकार ने चापलूसी, असत्य, कालित, मनसङ्गत तथा लोढ़-मरीहों से से सत्य को उजागरकर अपनी लोढ़ मेघा, तर्क-बीष, सांसारिक ज्ञान, पण्डितोचित सावधानी एवं न्यायो-चित विवेक का परिचय नहीं दिया है।

मुसलमानों के अवल-स्वरूप का सफेद झूठ अभी हाल में प्रकाशित

अनेक घोष कृतियों से प्रभावपूर्ण ढंग से स्पष्ट हो जाता है। कुछेक कृतियाँ हैं "ताजमहल मन्दिर भयन है", "फतहपुर सौकरी हिन्दू नगर है", "दरगाह बन्दा नवाज हिन्दू मन्दिर है" तथा "भागरे का लाल किला हिन्दू इमारत है।" भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान, ऐसे अनेक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए कटिबद्ध है जो प्रमाणित करेंगे कि मुसलमानों से सम्बन्धित सभी मध्यकालीन मस्जिदें, भवन, मकबरे, नहरें, पुल, महल, किले यवन-पूर्व हिन्दू निर्माण हैं।

प्रवचक आधुनिक इतिहास-पाठ्यग्रंथकार बड़े सहानुभूतिपूर्वक मध्य-युगीन यवन वृत्तान्तकारों के लेखों पर विश्वास कर लिख देते हैं कि अमुक सुलतान या बादशाह ने गोवध बन्द करा दिया था तथा जिजिया कर हटा दिया था। भारत में यवन-शासन के समूचे इतिहास में ये घोषणाएँ इतनी बार दोहराई गई हैं कि यह जानना कठिन कार्य है कि कोई ऐसा यवन शासक भी था जिसने जिजिया कर लगाया तथा गोवध पर बल दिया अथवा हरेक हर समय इन दो घृण्य प्रथाओं पर रोक ही लगाता रहा। और इस बार-बार की रोक-थाम के बावजूद इस बात के प्रमाण हैं कि समूचे यवन-शासनकाल में गोवध तथा जिजिया कर बसूली जारी रहे। यह तथ्य हमारी उस स्थापना से सिद्ध है जिसमें हमने अकबर के शासनकाल में जिजिया की प्रथा को प्रचलित बताया है। कहा जाता है उसने जिजिया समाप्त कर दिया था किन्तु हमने दिखाया है कि दो जैन संन्यासी—हिर-विजय तथा शांति-विजय—तथा एक शासक हिन्दू राजकुमार मुर्जनसिंह भिन्न-भिन्न अवसरों पर अकबर से, उसके शासनकाल में, जिजिया से विशेष मुक्ति की प्रार्थना करते हैं। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि अकबर ने जिजिया कभी समाप्त नहीं किया था तथा इतिहासकारों की विपरीत घोषणाओं के बावजूद अकबर के "प्रबुद्ध" शासन में हर समय जिजिया बसूल किया जाता रहा था? यह क्या यह भी सिद्ध नहीं करता कि इतिहास में अकबर की जिजिया के हटाने सम्बन्धी सभी घोषणाएँ या तो अज्ञानतावश हैं अथवा उत्तेजक असत्य?

इसी प्रकार प्रस्तुत पुस्तक के बहादुरशाह सम्बन्धी अंतिम अध्याय में हमने बताया है कि किस प्रकार उसे दो मास में तीन बार गोवध बन्द करने वाला बताया गया है। क्या यह प्रदर्शित नहीं करता कि बहादुरशाह के

गोवध सम्बन्धी तथाकथित आदेश मात्र प्रदर्शन थे? या तो वे आदेश कभी दिए ही नहीं गए या फिर उनका कभी पालन ही नहीं किया गया। ऐसे में—कहीं तक उचित है कि इतिहासकार साँस मूँदकर लिखें कि बहादुरशाह ने गोवध बन्द कर दिया या?

इससे हमें बड़े पुराने शराबी तथा भंगड़ी का मजाक याद आता है जो कहता है, "शराब पीना या भंग पीना बन्द करना कितना कठिन है; मैंने इसे सौ बार किया है और दो सौ बार कर सकता हूँ।" अतः इतिहास के विद्यापियों एवं अध्यापकों को महसूस करना चाहिए कि जिजिया से सताये हिन्दुओं की पीड़ियों की निरन्तर कराहटों तथा गोवध के लोलुप म्लेच्छों की लम्बा के कारण यवन-दरबारी-चापलूसों ने थोड़े-थोड़े काल के बाद यह लिख देना उचित समझा कि समुक्त सुलतान अथवा बादशाह ने गोवध तथा जिजिया कर पर रोक लगा दी थी। तद्वत् धूर्त यवन शासक भी राजनीतिक ढंग से हमों भर देते थे, जब कभी जिजिया कर वसूलों की कूरताओं एवं बहुत बड़ी संख्या में गोवध की बात बलपूर्वक दरबार में कही जाती थी। मध्ययुगीन दरबारी यवन इतिवृत्तकार भी कम धूर्त नहीं थे जो ऐसी छोटी-से-छोटी बात भी बिना लिखे नहीं रहते थे (जिससे जनता एवं राजा प्रसन्न हो जाए) कि यवन शासक ने कृपापूर्वक गोवध बन्द करने एवं जिजिया वसूली समाप्त करने का आदेश दे दिया है। पर यह केवल लेखा एवं करिबाद करने वाले व्यक्ति को अनिश्चित विश्वासों से दूर करने के लिए ही था जबकि तथ्य यह है कि जिजिया सदैव वसूल किया गया तथा गोवध सदैव किया जाता रहा, पर मध्ययुगीन यवन प्रशासन में किसी ने ध्यान तक नहीं उठाई। इस सबसे हमें एक ही शिक्षा मिलती है कि मध्य-युगीन यवन इतिहास लेखकों को कभी सम्भीरतापूर्वक न लें। प्रामाणिकता की मोहर लगाने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम मध्यकालीन यवन वृत्तान्तों की भली-भाँति जाँच करें, परीक्षा करें, पड़ताल करें, जिरह करें तथा स्वतन्त्र साक्षी से पुष्ट कर लें। हम इतिहास-जगत् से यह भी कहना चाहते हैं कि भारत के मध्ययुगीन अरब, तुर्क, अफगान, ईरानी, एबीसीनियायी तथा मुगल शासकों में कोई भी स्थायी, योग्य, दयालु अथवा ज्ञानवान नहीं था। बड़े चातुर्यपूर्ण ढंग से उनकी महत्ता एवं भलेपन की मिथों को दूर करने के लिए हमने प्रस्तुत तथा प्रथम भाग में दिल्ली के यवन सुलतानों में

से एक-एक के वृत्त को अमपूर्वक विश्लेषित किया है।

अपने निष्कर्ष निकालने में हम अतीव विश्लेषक तथा वस्तुनिष्ठ रहे हैं, धोखा देनेवाले, गतानुगतिक एवं दरबारी चाटुकारों के लिखित शब्दों के ग्रन्थभवत नहीं रहे हैं।

हमने अपना पक्ष समसामयिक दशाओं, लिखित अभिलेखों एवं मानव प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में तर्क से सिद्ध किया है। हमारा विश्लेषण तो पूर्णतः स्पष्ट है। हमने सर्वत्र यही बताया है कि पारम्परिक विचार क्या रहा है, यह गलत क्यों और किस सीमा तक है। अधिकांशतः हमने तो यही देखा है कि इतिहास अत्यन्त विपर्यस्त तथा उलटा-पुलटा है। उदाहरणार्थ मध्ययुगीन यवन आक्रमणकारी तथा शासक निर्माता न होकर विध्वंसक थे। अतः मध्यकालीन ऐतिहासिक स्थलों के दर्शकों को एक ही बात याद रखनी चाहिए, और जो उनके बड़े काम की होगी, कि "निर्माण सब हिन्दू का है और ध्वंस मुसलमान का।"

हम भारत के अध्यापकों-प्राध्यापकों से चाहेंगे कि वे अपने विद्यार्थियों से किसी प्रकार अकबर, शेरशाह या फीरोजशाह की महत्ता के बखान की आशा न करें। उनके लाभ के लिए हमने प्रस्तुत तथा पूर्व कृति में दिल्ली के सभी सुलतानों का चित्रण करके सिद्ध किया है कि कोई भी सुलतान बर्बरता, कूरता एवं विप्लवन में दूसरे से कम नहीं था। विद्यार्थियों से कलाओं तथा प्रतियोगी परीक्षाओं में अपठ विदेशी बर्बरों के काल्पनिक गुणों के दिल खोलकर वर्णन करने को कहना याव पर नमक छिड़कना है। यह सत्य नहीं है, फिर इतिहास कैसे?

अध्यापन एवं परीक्षाओं में राणा प्रताप, शिवाजी तथा अन्य राष्ट्रिय एवं देशभक्त योद्धाओं पर ध्यान ही नहीं दिया जाता। यह सर्वथा स्वाभाविक था कि एक हजार वर्षों के विदेशी शासन में इन्हें दूर हटा दिया जाय, इनके मुँह पर कालिख पोती जाए और इनका नाम भी न लिया जाए। पर जब हम स्वतन्त्र हैं तब ऐसा क्यों करें? सच तो यह है कि हमारे अध्ययन पूर्णतया इन राष्ट्रिय मूर्तियों पर केन्द्रित हों।

विदेशी आक्रमणकारियों एवं दमनकर्ताओं के शासनों का विस्तार-पूर्वक अध्ययन सभी भारतीयों को यह स्मरण दिलाने के लिए अतीव आवश्यक है कि जो सैनिक रूप से दुर्बल, राजनीतिक क्षेत्र में एकताहीन

एवं सांस्कृतिकतः घनकत रहते हैं उनके लिए इतिहास अपने गर्भ में भयानक दण्ड सिद्धाए रहता है।

सहस्र वर्षीय दास-परम्परा के कारण भारत के विदेशी दमनकर्ता सदैव शानदार एवं आदर्श शासक के रूप में प्रशंसित रहे हैं जबकि विलोमतः, भारतीय देशभक्त योद्धागण महत्त्वहीन एवं निन्दनीय नराधम के रूप में घृणा के पात्र रहे हैं। जनता, सरकार, अध्यापक तथा इतिहास पण्डितों का यह पुनीत कर्तव्य है कि इस आवश्यक तथा इतिहास बोध का सबलतापूर्वक अध्ययन करें। उन्हें इस आवश्यकता का भान कराने के लिए ही इन ग्रंथों को लिखा गया है। इस दृष्टि से ये ग्रंथ पिष्टपेषित इतिहास ग्रंथों से सर्वथा भिन्न हैं। यद्यपि इतिहासों के विपरीत हमने अंधविश्वास एवं शोषचिन्तनीयता से दूर रहकर कठोर सत्य एवं तर्क में आस्था रखी है।

—पुरुषोत्तम नागेश श्रोत्र

: १ :

इब्राहीम लोदी

(नवम्बर २१, १५१७-अप्रैल २१, १५२६)

इब्राहीम लोदी कुख्यात लोदी वंश का तीसरा तथा अन्तिम सुलतान था। कुतुबुद्दीन से लेकर आगे तक दिल्ली के सभी विदेशी यवन सुलतानों के समान इब्राहीम ने भी अपनी दीन-हीन प्रजा पर असह्य अत्याचार डाये। अपने पूर्वजों की भाँति वह भी कट्टर मुस्लिम था।

अपनी अगणित हिन्दू प्रजा से तो वह घृणा करता ही था, अपने सगे-सम्बन्धियों को भी सताने में उसे आनन्द आता था। स्पष्ट है कि वह उन विदेशी सुलतानों से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं था जिन्होंने १२०६ ई० से १८५८ ई० तक दिल्ली अथवा भारत की अन्य छोटी-छोटी यवन-जागीरों में शासन किया।

भारत के मुस्लिम शासन की विशेष बात यह थी कि प्रत्येक सुलतान ने इस्लाम के नाम पर हिन्दुओं तथा ईसाइयों पर भयानकतम क्रूरताएँ कायीं तथा प्रत्येक ही अपने ही भाइयों, पिता, दरबारियों तथा सेनापतियों द्वारा घृणा का पात्र बना। फिर भी उनका कोई न कोई ऐसा इतिहासकार अवश्य होता था जो उसकी योग्यता, नेकनीयती तथा ईमानदारी की प्रशंसा के पुल बाँध देता था। इब्राहीम लोदी के दरबार में भी कुछ ऐसे चापलूस थे जिन्होंने उसे सम्माननीय व्यक्ति एवं प्रबुद्ध प्रशासक बताया है। फिर भी उसके शासन के प्रत्येक वर्णन से स्पष्ट है कि वह अभिमानी, घमण्डी, ठीठ, मौज पसन्द, अयोग्य, धर्मान्ध एवं क्रूर व्यक्ति था।

इतिहास के विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को जब यह लगे कि उसकी की गयी झूठी प्रशंसा के विपरीत तथ्य कुछ और ही हैं तो उन्हें किसी भी संशयात्मक स्थिति में न गड़कर आश्वस्त हो जाना चाहिए कि उसकी की

कयी प्रशंसाएँ निरी चापलूसियाँ हैं।

भारतीय इतिहास के प्राच्यनिक लेखकों की सबसे दुःखद कमी तो यह है कि मध्यकाल के उन मुस्लिम इतिहासों में से, जिनमें इस्लामी युद्ध-प्रियता तथा क्रूर शासक के प्रति विनीत भाव के कारण सफेद भूँट भरा हुआ है, सत्य नहीं निकाल पाते। सत्य की खोज के लिए लेखक को उसी युग की भावना से प्रोत्प्रेत हो जाना चाहिए।

उदाहरणार्थ यह जानना कठिन नहीं कि मध्यकाल में जब यह समा-कार फँका कि इसहाब भारतीयों पर शासन करते हुए मुस्लिम शासक घस लूट रहे हैं, हजारों का धर्म-परिवर्तन कर रहे हैं, उनकी स्त्रियों तथा बाल-बच्चों का अपहरण कर रहे हैं तो प्रतिदिन अफगानिस्तान से लेकर पच्छिम तक के नीच-गुण्डे भारत आने लगे। वे उन लोगों के नाम किसी का भी परिचय-पत्र ले पाते जो मुस्लिम दरबार के पदाधिकारी होते। अन्य लोग भी, जिन पर ऐसे परिचय-पत्र न होते, येन-केन-प्रकारेण प्रभाव-शाली दरबारियों तथा यवन शासक तक पहुँच ही जाते। उन म्लेच्छों को घस तथा भूमि प्रदान कर दी जाती थी, जो कुरान की कुछ आयतें सुना देते, घरब का दो-चार मुट्ठी रेत दे देते, गध या पशु में प्रशंसा-लक कसीदे या देते अथवा अपहृत महिलाएँ भेंट कर देते। आश्चर्य तो यह है कि चापलूसों ने ऐसे कृत्यों को कला एवं ज्ञान के संरक्षक कार्य धकदा न्याय, योग्यता तथा दयालुता के काम बताया है। जब उनके शासन के अभिलेख रचित एवं नृशंस कार्यों से परिपूर्ण हैं तो सच्चे इतिहास-कार की यवन इतिहासों की मिथ्या प्रशंसाओं द्वारा धोखा नहीं खा जाना चाहिए।

सत्य की इस घनमूर्ति से हमें इब्राहीम लोदी के शासन का अध्ययन भी अत्यन्त सतर्कतापूर्वक करना चाहिए। इब्राहीम के शासन के प्रारंभ के विषय में एलिफ़स्टन का कथन है* "उसका एक भाई, जिसने स्वयं को जीतपुर का राजा घोषित कर रखा था, एक वर्ष के भीतर ही जीतकर इब्राहीम द्वारा चुपचाप समाप्त कर दिया गया—अन्य भाइयों को जीवन

* इ हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, द हिन्दू एण्ड मोहम्मडन पीरीयड्स, माउंट स्टुअर्ट एलिफ़स्टन, किताब महल, इलाहाबाद, पृष्ठ ३६२।

भर के लिए बन्दी बना लिया गया। तदुपरान्त इस्लाम खाँ नामक सरदार ने विद्रोह किया, पर वह युद्ध में मार डाला गया। इन कृत्यों में भाग लेने वाले अन्य अनेक उच्चाधिकारी तथा प्रान्तों के शासक समाप्त कर दिये गये। अन्य अनेक सन्देह के कारण ही मार डाले गये; कुछ को बन्दी बना कर चुपके से समाप्त कर दिया गया; एक को तो शासन की कुर्सी पर ही कत्ल कर दिया गया।"

भारत में यवन शासन का यह एक अजीब ही तथ्य है, जिसकी ओर भली-भाँति ध्यान नहीं दिया गया, कि उक्त वर्णन ७१२ ई० से १८५८ ई० तक लगभग प्रत्येक यवन सुलतान के शासन पर घटता है, वह चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष, चाहे दिल्ली से राज्य चला रहा हो चाहे किसी अन्य स्थान से। बस शासक का नाम भर बदल देना है अन्यथा गड़बड़, भ्रष्टाचार तथा क्रूरता तो पूर्वज से उत्तराधिकारी तक लगातार जारी रही। दूसरी समानता यह थी कि प्रत्येक मुस्लिम शासक के पास निरपवाद रूप से चाटुकारों की कमी नहीं थी जिन्होंने विद्रोह, भूखमरी, क्रूरताओं, भ्रष्टा-चार तथा स्वेच्छाचारिता से भरे हुए शासन के होते हुए भी उनकी तारीफों के पुल बाँधे हैं।

इब्राहीम का पिता सिकन्दर लोदी अपनी लूटपाट, क्रूरता तथा हिन्दुओं के पवित्र स्थलों को अपवित्र करने के कृत्यों के लिए कुख्यात था। १५१७ ई० में वह आगरे में मरा। यद्यपि कुछ चाटुकारों द्वारा उसे श्रेष्ठ एवं महान् शासक घोषित किया गया है पर उसका महत्त्व इसीसे आँका जा सकता है कि वह भी नहीं पता कि उसे कहाँ दफनाया गया। उसकी मृत्यु आगरे में हुई, अतः निश्चय ही उसे वहीं कहीं दफनाया गया होगा। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि उसे दिल्ली के अधिकृत हिन्दू भवन के उस भाग में दफनाया गया बताया जाता है जिसे बड़ी मासूमियत से "लोदी का मकबरा" कहा जाता है। स्पष्ट है कि अन्य अनेक भूलों की भाँति यह भी पुरातत्त्व सम्बन्धी भूल है।

विश्वास किया जाता है कि इब्राहीम लोदी नवम्बर २१, १५१७ को बादशाह बना। अपने पिता के समान उसने भी समीपस्थ स्थानों पर घन तथा स्त्रियाँ लूटने और यदि सम्भव हो तो अपनी राज्य-सीमा विस्तृत करने के लिए चढ़ाईयाँ कीं।

इब्राहीम का पहला धावा ग्वालियर पर हुआ जिसका हिन्दू शासक राजा मानसिंह का पुत्र विक्रमादित्य था। दिल्ली या आगरे में शासन करने वाले विदेशी मुस्लिम सुलतानों की धावों में ग्वालियर का हिन्दू राज्य बहुत काल से बाँटे की भाँति खटक रहा था। फलतः इस पर अनेक बार आक्रमण हुए। प्रत्येक बार मुसलमान सेनाएं बुरी तरह खदेड़ दी गयीं जो बर्बाद हो गईं। प्रत्येक बार मुसलमानों के शासन करने से स्पष्ट है। फिर भी प्रत्येक मुस्लिम तवारीख प्रत्येक आक्रमणक प्रबल सुलतान की विजय की घोषणा करती है। इसी प्रकार इब्राहीम के शासन के मुस्लिम अभिलेख घोषणा करते हैं कि ग्वालियर शासक विक्रमादित्य ने पराजय स्वीकार कर दास बन जाना मान लिया था। ऐसी बातों को कोई महत्त्व नहीं देना चाहिए क्योंकि मुस्लिम तवारीखें प्रत्येक लड़ाई में मुस्लिम शासक की महान् विजय घोषित करती आयी हैं। मुस्लिम तवारीखों में ग्वालियर शासक 'विक्रमाजीत' कहा गया है जो इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वर्तनी तथा उच्चारण ने मुसलमान बहुत लापरवाही बरतते थे अन्यथा नाम 'विक्रमादित्य' होना चाहिए। स्वतंत्र भारत में तो इन अशुद्धियों को ठीक कर लेना चाहिए। पाठकों को भी महसूस करना चाहिए कि मुस्लिम तवारीखों में ऐसी अनेक बातें हैं, जिनके कारण उनकी विश्वसनीयता में प्रश्न-चिह्न लग जाता है।

इब्राहीम का दूसरा बृद्ध मेवाड़ के वीर हिन्दू शासक संग्रामसिंह उपनाम सागा से हुआ। मुस्लिम सेना को इतनी भीषण पराजय मिली कि बचे-बचे सैनिक अपने साथियों तथा सामान से हाथ धोकर इधर-उधर भाग बड़े हुए।

इब्राहीम के सगे छोटे भाई जलालखाँ ने इब्राहीम के राजसिंहासन पर बैठने के अधिकार को चुनौती दी। जलालखाँ ने अपने को जौनपुर का राजा घोषित कर दिया। इब्राहीम ने उसके विरुद्ध सेना भेजी। कालों पर हुए युद्ध में छोटा भाई हार गया। ग्वालियर भागकर उसने वहाँ के हिन्दू सत्ताधिकारी विक्रमादित्य के यहाँ कुछ दिन शरण ली। उसकी उपस्थिति से इब्राहीम का क्रोध ग्वालियर पर हुआ, तभी जलालखाँ दक्षिण की ओर भाग गया। राजपूतों के सरदारों ने उसे पकड़कर इब्राहीम को सौंप दिया। इब्राहीम ने अपने अधिकृत अनुज के शिरच्छेद में तनिक भी

देर नहीं लगायी।

अपने सभी पूर्वजों की भाँति इब्राहीम का शासन भी विध्वंसकारी धावों तथा विद्रोहों के प्रतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इब्राहीम के विरुद्ध उसके भाई के प्रतिरिक्त उसके अनेक दरबारियों एवं सेनापतियों ने भी विद्रोह किया। उनमें से एक आजम हुमायूँ था जिसके पुत्र इस्लाम खाँ ने तो आगरे तक पर चढ़ाई की, पर पकड़ा जाकर कत्ल कर दिया गया। बिहार के शासक दरया खाँ लोहानी, खान-ए-जहाँ लोदी, मिर्जा-हुसेन खाँ आदि एक के बाद एक उसके विरुद्ध विद्रोह करते रहे। दरया खाँ की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र बहादुर खाँ ने अनेक असन्तुष्ट सेनापतियों के साथ इब्राहीम के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बना लिया। मोहम्मद खाँ नाम से उसने अपने को बादशाह घोषित कर दिया। उसने अपने नाम के सिक्के भी चला दिये तथा १५२३ ई० तक बिहार का बहुत-सा भू-भाग अपने राज्य में मिला लिया।

इब्राहीम के चाचा आलम खाँ उर्फ अलाउद्दीन लोदी के मन में भी उसे गद्दी से उतार स्वयं सिंहासनासीन होने की लालसा थी। उसने विशाल सेना बना ली और सिन्धुपार के एक नये लुटेरे बाबर से भी बातचीत चलायी।

पंजाब के शासक दौलत खाँ लोदी ने भी राजभक्ति को तिलांजलि देकर अपने को शासक घोषित कर दिया। अब तक यह मुस्लिम साहसी, बाबर, अनेक वर्षों से भारतीय सीमा पर उछल-कूद मचा रहा था, पर इस गड़बड़ में उसने हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का अच्छा अवसर देखा।

इब्राहीम के क्रूर एवं तानाशाहीपूर्ण शासन ने भारत की कैसी दशा कर दी, इसका वर्णन करते हुए एक लेखक कहता है, * "दिल्ली सल्तनत नाम मात्र की थी। अपने पुत्र दिलावर खाँ के प्रति दुर्व्यवहार के कारण इब्राहीम लोदी से असन्तुष्ट पंजाब के सर्वाधिक शक्तिशाली दौलत खाँ तथा दिल्ली के सिंहासन पर आस लगाये इब्राहीम लोदी के ही चाचा आलम खाँ ने तो यहाँ तक कर डाला कि बाबर को भारत पर आक्रमण

* पृ० ४२६, एन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ले० : आर० सी० मजूमदार, एच० सी० रायचौधुरी तथा कालीकिंदरदत्त।

करने का विमर्श ही दे दिया।"

पहले से ही प्रस्तुत अनेक लुटेरों की सहायता से हिन्दुस्तान की लूटपाट में अत्यन्त लाभ देखकर विशाल मुस्लिम लुटेरों को साथ लेकर बाबर ने भारत में प्रवेश किया। अनेक विद्रोही सरदारों की सहायता पाकर वह पानीपत पहुँचा—वह पानीपत का मैदान जहाँ अनेक निर्णायक युद्ध हुए।

इस नयी बला से निपटने के लिए इब्राहीम लोदी आगरे से अपनी बाहिनी लेकर चला। १२ अप्रैल को दोनों सेनाओं का सामना हुआ। किन्तु वास्तविक युद्ध होने में एक सप्ताह लग गया। २१ अप्रैल, १५२६ को प्रातः दोनों सेनाएँ भिड़ गयीं। यवन इतिहासों में जैसे कि सामान्यतः पाया हो जाता है बाबर अपनी सेना में केवल २५,००० सैनिक तथा इब्राहीम की सेना में इसकी चार गुनी संख्या बताता है ताकि इतनी बड़ी संख्या पर अपनी विजय को और भी शानदार ढंग से प्रस्तुत किया जा सके। बिना किसी तथ्यपरक साक्षी के इसपर भी कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। हमें तो ऐसा लगता है कि ये संख्याएँ ठीक उलटी होंगी। क्योंकि इब्राहीम से उसके रिश्तेदार तथा सेनापति नाराज थे, अतः सम्भव है वह केवल २५,००० व्यक्ति ही एकत्र कर पाया हो जबकि नये लुटेरे बाबर की सेना एक युद्ध के बाद दूसरे युद्ध में क्रमशः बढ़ती ही गयी। इब्राहीम के रिश्तेदारों तथा विशाल बाहिनी के सेनापतियों तक ने बाबर की सहायता दी।

दीनहर होते-होते इब्राहीम लोदी की सेना मैदान छोड़कर भागने लगी। इस युद्ध में २०,००० व्यक्तियों के साथ स्वयं इब्राहीम भी मारा गया।

बाबर की विजय ने सुलतानों को उस लम्बी पंक्ति पर पर्दा डाल दिया जिन्होंने १२०६ से १५२६ तक दिल्ली या आगरे से शासन किया। यद्यपि वे शिखिन्त अराधियों तथा अफगानिस्तान से लेकर पश्चिम, टर्की, अरब एवं एरित्रीनिया तक के क्षेत्र इस्लाम के नाम पर गैर-मुस्लिमों का संहार करने, मर एवं कृता प्रदर्शित कर सामूहिक धर्म-परिवर्तन करने, धन-समरकन्द के बाजारों में दास रूप में बेचने के लिए पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों को ले जाने में सभी एक थे।

भारत में विशाल मध्यकालीन यवन कुशासन में इब्राहीम की हार तथा मृत्यु को मध्यान्तर कहा जा सकता है। इसके पश्चात् इतनी प्रवधि (१५२६-१८५८ ई०) तक दिल्ली उनके द्वारा शासित रही जिन्हें मुगल वंश कहा जाता है। पर इस नाम-परिवर्तन तथा एक ही वंश में उत्तराधिकार बने रहने के अतिरिक्त मुस्लिम शासन का रवैया वैसे ही गड़बड़, भ्रष्ट, क्रूरतापूर्ण, भ्रमों से भरा, स्वेच्छाचारी तथा पापपूर्ण रहा जैसा कि पहले था।

बाबर

यवन शासकों के सहस्र-वर्षीय क्रमिक शासन में १५२६ ई० में मुगलों द्वारा लोदियों का स्थान ग्रहण करने पर भारतीय इतिहास ने मध्यकालीन भारत का एक नया ही पृष्ठ जोड़ा, जहाँ निरन्तर हत्याओं एवं भारत-विनाश का सिलसिला जारी हो गया।

इन निरन्तरकालिक उत्तेजक परिवर्तनों से उन दरबारियों तथा उनके संतान सुतानों में चाहे कोई अन्तर प्राया हो, हिन्दू जाति के लिए तो यह नारकीश संश्राम की भयावह रात सिद्ध हुई।

लोदी वंश में एक से एक दुष्ट तीन सुलतान हुए। अन्तिम सुलतान, इब्राहीम, सिकन्दर के मरणोपरान्त १५१७ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसी यवन परम्परानुसार, उसका अपना भाई, जलाल खाँ ही उसका पौरुषम शत्रु था। जलाल खाँ, जिसकी राजधानी जौनपुर थी, स्वतन्त्र शासक था। दोनों भाई एक दूसरे के खून के प्यासे थे। प्रभावशाली आजम हुमायूँ साखानी प्रदीप्त ही यवन दरबारी था जो दोनों भाइयों से रिपवत लेकर जो जीतता उसी की ओर हो जाता था। जलाल खाँ को भागकर ग्वालियर तथा गोंडवाना के हिन्दू राजाओं के यहाँ शरण लेनी पड़ी। पर ऐसे हथियार की कौन सहायता करता? अन्त में इब्राहीम की सेना द्वारा वह पकड़ा गया और जब दिखावे के तौर पर अपने अन्य भाइयों के साथ हंगी बन्दीगृह के लिए ले जाया जा रहा था, उसकी हत्या कर दी गयी।

जलाल खाँ की मर्ग में हटाकर अब हिन्दू घरों को लूटने के लिए अकेला इब्राहीम ही रह गया था। अपने ग्वालियर को जय बनाया। इसका और शत्रु, मानसिंह, जिसने सिकन्दर को नीचा दिखाया था,

स्वर्गवासी हो चुका था। ग्वालियर-जनता के विरुद्ध इब्राहीम की क्रूरताओं ने कुमार विक्रम को सधि के लिए मजबूर कर दिया। हिन्दू ग्वालियर को विनष्ट करने के लिए इब्राहीम की सेना में नौ यवन सेनापति जा मिले। इस विजय से फूलकर यवन सेनाएँ मेवाड़ के राणा सांगा को ओर भी गयीं पर मूँह की खाकर वापस आ गयीं।

अन्य यवन शासकों की भाँति, इब्राहीम को भी उसके अपने ही दरबारी अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे। बदले में, इब्राहीम ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह "अफगानी कुलीन पुरुषों को पूर्णतया अधिकार में करके समस्त शक्ति को केन्द्रीभूत कर लेगा।" आजम हुमायूँ साखानी ग्वालियर के फेरे से वापस बुलाकर बन्दी बना लिया गया। इसी भाँति, मियाँ भूवाह नामक मन्त्री को भी बन्दी बना लिया गया। इस भयानक क्रूरता के कारण ही आजम हुमायूँ साखानी के पुत्र, इस्लाम खाँ ने कड़ा में विद्रोह का भण्डा जैचा कर दिया। इस कार्य में उसे ग्वालियर से अकस्मात् प्रत्यावर्तित दो लोदी सरदारों का भी समर्थन प्राप्त हो गया था।" (पृ० १४८-४९, द दिल्ली सल्तनत, भारतीय विद्याभवन की 'द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपुल', जिल्द VI, १९६७)। ये राज-द्रोही इब्राहीम के लिए बहुत गम्भीर चुनौती बन गये। इब्राहीम ने सुदूर प्रान्तों के शासकों को अपनी सहायता के लिए बुलाया। आगामी युद्ध में इस्लाम खाँ दस सहस्र अन्य विद्रोहियों के साथ मारा गया।

इस सफलता ने इब्राहीम को और भी अधिक क्रूर बना दिया। दो असहाय बन्दी, मियाँ भूवाह तथा आजम हुमायूँ साखानी मार डाले गये। "एक अन्य भद्र पुरुष, मियाँ हुसेन फारमुली को सुलतान के भाई के टट्टियों ने चंदेरी में ठिकाने लगा दिया। इससे दूसरे कुलीन व्यक्तियों में घृणा और भय की लहर व्याप्त हो गयी तथा वे अपनी सुरक्षा के उपाय सोचने लगे।" इब्राहीम की इस दुराचारिता का मेवाड़-शासक राणा सांगा ने लाभ उठाकर चंदेरी को हथिया लिया।

अनेक विख्यात यवन दरबारियों ने विद्रोह की घोषणा कर दी। बहार खाँ ने सुलतान मुहम्मद उपाधि धारण कर बिहार से सम्मल तक का भू-भाग अपने अधिकार में कर लिया। जब इब्राहीम पूर्वी क्षेत्रों में इन विद्रोहों को दबाने में लगा था, उसके पंजाब के शासक दीलत खाँ लोदी ने लुटेरे एवं

बाबर व्यक्ति बाबर से, भारत पर चढ़ाई करने तथा इब्राहीम को मार डालने के लिए रात शुरू कर दी। जब सुलतान इब्राहीम ने दौलत खाँ के पुत्र दिलावर खाँ को लालों का जादुई प्रदर्शन यह कहकर किया कि उसकी छात्रा न मानने वाली की गति होगी तो वह भय के मारे अपने पिता के पास लाहौर भाग गया।" (पृ० ८७, तारीख-ए-शाही) यवन इतिहासों में अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है कि भारत के अधिकांश यवन शासक अपने अधिकार को न माननेवाले रिश्तेदारों तथा दरबारियों को दगलने के लिए (अपने द्वारा) बंध किये हुए कुछेक शरीरों को रखा करते थे।

इब्राहीम लोदी की शाही सलमारी में रखे हुए उन अस्त्र-पंजरों से दिलावर खाँ इतना भयभीत हो गया कि वह भागकर सीधा काबुल में बाबर के पास गया जो हिन्दुस्तान को लूटने की ताक में ही था। इब्राहीम का चचा शानस खाँ स्वयं अपने भतीजे की क्रूरताओं से इतना परेशान था कि इब्राहीम की इस लूटखसोट पर रोक लगाने के लिए वह बाबर से जायना करने स्वयं गुजरात से काबुल गया था। अब हम बाबर के संस्मरणों के संदर्भ देखते हैं।

उसके वर्षों में पाँच सालों इयान है: १५०३-०४ ई०, १५०५-१५११, मार्ग २ से सितम्बर १८, १५२० तथा उसके जीवन के अन्तिम १५ महीने।

अब बाबर को भारत में मुगल वंश को स्थापित करने वाला कहा गया है, वस्तुतः वह तातार था, जिसने मुगलों का उल्लेख बड़ी धृष्टि के साथ किया है।

बाबर का पिता, उमरकोश, ५०,००० वर्गमील उपजाऊ भूमि का, जिसे तब फारस कहते थे, मालिक था। वही भू-भाग अब कोकन्द कहलाता है। जो कभी तुर्किस्तान में है।

बाबर का जन्म १४ फरवरी, १४८३ को हुआ। उसका पिता अतीव बराबर एक अमीर था, जिसके हस्त में अनगिनत बेगमे एवं बेध्याएँ थीं। बाबर का पिता अपने कब्जस्थानों से गिरकर मर गया और ११ वर्षों के बाद १४९४ ई० में बादशाह बन गया। बाबर का पालन करने वाला बेगम मजिद बेग "अत्यन्त अभिचारी तथा पुरुषमैथुनकर्ता था।" (बाबर के संस्मरण, ज्ञान जेठन तथा विलियम इंसकींग द्वारा अनूदित, सर लूकस

किंग द्वारा टिप्पणियों सहित, पृ० २२-२३)।

बाबर के पिता के अन्य सहयोगियों में अली मजिद बेग कुची था। बाबर के अनुसार "उसने दो बार विद्रोह किया तथा अत्यन्त कामी, क्रूर एवं पाखंडी था।" इससे पता चलता है कि भारत में १५२६ से १५५८ ई० तक राज्य करने वाले मुगलों ने अपने पितृवर्ण एवं मातृवर्ण से विरासत में मिली दुष्टताओं—शराबखोरी, अप्राकृतिक मैथुन, बलात्कार, लूटमार, स्त्री-व्यवसाय तथा दास व्यापार की किस शान से रक्षा की थी! पिता की ओर से तैमूर लंग तथा माँ की ओर से चंगेज खाँ—इस प्रकार इतिहास के धुनिततम एवं भयानक लुटेरों से सम्बन्धित होने के कारण आश्चर्य नहीं कि भारत के सभी मुगल शासक अपने विकृत पूर्वजों, सलाहकारों तथा सरदारों की हूबहू नकल तथा और भी नीच तथा कुटिल रूप थे।

स्वयं स्वीकृत पुरुष मैथुनकार बाबर काम की अष्ट तृप्ति के लिए सुन्दर लड़कों से प्यार करता था जबकि अपनी पत्नियों से सदैव लजाता था। अपनी पत्नी, आयशा के विरुद्ध उसका आक्षेप है, "अपनी बड़ी बहिन की चालों में फँसकर उसने मेरा परिवार छोड़ दिया था।"

बाबर का समूचा जीवन डाकूपन की कहानी है—प्रारम्भ में छोटी-मोटी लूटमार, बाद में बहुत भयानक डकैतियाँ। अपने 'संस्मरण' के ५४वें पृष्ठ पर वह बताता है कि एक बार उसने जगराग (एक वन्य जाति) पर घावा बोलकर उनकी २०,००० भेड़ें तथा १५०० घोड़े छीन लिये थे। इन्हीं लूट-खसोटों ने उसे आगे चलकर स्वयं तथा अपनी सन्तति द्वारा हिन्दुस्तान लूटने में सहायता दी।

प्राचीन भवनों को यवन इतिहास किस प्रकार भूठ बोलकर अपना सिद्ध करते हैं। इसका एक उदाहरण बाबर के 'संस्मरण' के ६३वें पृष्ठ पर है। उसने एक सराय के विषय में लिखा है कि उसे 'ग्रीन पैलेस' नाम से उसके पूर्वज तैमूरलंग ने निर्मित किया था। किन्तु उसी पृष्ठ पर 'पेटो ब ला क्रॉय' (Petis be la Croix) का उद्धरण (चंगेज खाँ का इतिहास, पृ० १७१) है, जिसके अनुसार उसी 'ग्रीन पैलेस' में चंगेज खाँ ने मेयर खाँ की हत्या की थी। यह भवन जो समरकन्द के बाहर स्थित है, तथा स्वयं समरकन्द ईसा पूर्व से ही अवस्थित है जब उस क्षेत्र में हिन्दुओं का राज्य था। उस पाद-टिप्पणी में यह भी लिखा है कि उस्मान के शासन काल में

समरकन्द इस्लाम स्वीकारने को मजबूर हुआ। समरकन्द के अनगिनत मंदिर एवं मस्जिदें बर्बाद, विभिन्न हिन्दुओं के परिवर्तित मन्दिर तथा मस्जिदें हैं, जिन्हें अष्टपूर्वक तैमूर तथा अन्य लुटेरों से सम्बन्धित बताया गया है।

इसी प्रकार ८० वें पृष्ठ को पारदर्शिकी है: "किसी विख्यात घटना को स्मरण करने के लिये यादगार के तौर पर किसी तिथि को स्थायी बनाने के लिए भारत में लोग स्मरण पत्रों का पर्याप्त प्रयोग करते हैं, जिनमें कुछेक वर्षों का साप्ताहिक मूल्य होता है जिनका योग वांछित तिथि प्रदान करता है। फारसी में इसे खबरे कहते हैं।" "कौन नहीं जानता कि यह बहुत प्राचीन सन्तान परम्परा है जो इस बात का प्रमाण है कि किसी काल में फारसी हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का गढ़ था।"

अकेला बाबर ही ऐसा लुटेरा नहीं था जिसके समय, इस्लाम के विकास कास में, धर्म तथा हहबदी का साम्राज्य था, दूसरे उससे भी कमजोर थे। दो वर्ष तक तो उसने उसके पिता का राज्य भी छित्त किया था। बाबर की शोकारोक्ति है, "मेरी दशा प्रतीव शोचनीय हो गयी थी और मैं बहुत अधिक रोता था, पर मेरे मन में विजय तथा राज्य-प्रसारण की उत्पत्ति लालसा थी। अतः एकाध बार मैं ही सर पर हाथ रखकर बैठने वाला नहीं था। मैं ताशकन्द के खान के पास गया कि उससे ही कुछ सहायता मिले।" इस प्रकार प्रयत्न कर-करके बाबर ने अपने पिता का लोहा लुहा लज्जतून, १४६६ में पुनः प्राप्त किया।

हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने समय म्लेच्छ आक्रमणकारी सदैव हिन्दू जलाशय, मंदिर, कुएँ तथा जल के अन्य स्रोतों को या तो विध्वस्त कर देने के लिये या मल-मूत्र एवं सड़ी लाशों से अशुद्ध कर देते थे। फतहपुर सीकरी से राजा सींगा ने युद्ध करते समय बाबर ने भी यही हथकण्डा प्रयोग किया। अपने 'वर्णन' के २८वें पृष्ठ पर वह इस तकनीक की जानकारी के विषय में लिखता है: "जब लूटकर लूटने में था तो एक दिन उसने नगर बहादुर की कन्ये के पासपास के सभी जल-स्रोतों को विनष्ट करने किया।"

बाबर स्वयं ताशकन्दीय कूर था। अतः उसने मुगल चरित्र को बहुत बुरा बताया है पर बाद में वही इसे भारत में लाया। ११०वें पृष्ठ पर

वह लिखता है, "मुगल लुटेरे हर प्रकार की बर्बादगी तथा विनाश के कर्ता हैं; अब तक उन्होंने पाँच बार मेरे विरुद्ध विद्रोह किया है। यही नहीं कि उन्होंने मेरे विरुद्ध ही विद्रोह किया है, स्वयं अपने खाँधों (khans) को भी उन्होंने नहीं बर्बाद किया है।" जब मुगल घोर नरनार, अरब तथा पर्वतीयानियों, तुर्क तथा अफगान सभी एक-दूसरे पर क्रूरता तथा विश्वासघात का दोषारोपण करते हैं और वे ही जब भारत में एक हजार वर्ष तक टिड्डी दल की भाँति घाते रहे तो कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने भारतीय जीवन को बर्बाद बनाकर रख दिया।

अनेक बार हम शिकायतें सुनते हैं कि लुटेरों की इस लम्बी कतार ने भारतीय जीवन को मूल्यवान् बनाया पर हमने कृतज्ञतापूर्वक इन्हीं स्वीकारा नहीं। हम इस शिकायत को उचित समझते हैं और चाहते हैं कि मध्यकालीन इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ इस बात पर बल दे कि किस प्रकार ये लुटेरे घनाद्वय, सम्पन्न, पवित्र, पावन एवं धार्मिक हिन्दुस्थान में जड़कारक शराब, नशा लाने वाले पेय, लम्पटता, अशुद्धता, दुराचारिता, गुदा-मैथुन, मातृ-पितृ-घात, बलात्कार, लूटपाट, छीनाभपटी एवं विनाश लाये। अल्बरुनी, जो यवनों का पक्षपाती था, लिखता है कि किस प्रकार इनमें से केवल एक लुटेरे मुहम्मद गजनी ने अकेले ही हिन्दुओं के जीवन को जलक बनाकर आंधियों में उड़ा दिया था।

एक साधारण लुटेरे से युद्धकर्ता बना हुआ बाबर अपने संस्मरणों के पृष्ठ ११८ (भाग १) पर अपने प्रथम युद्ध के विषय में बताता है। यह संघर्ष तंबोलों के साथ हुआ था। "हमने अनेक बन्दियों के सिरों को काटने की आज्ञा दी। जब मैं इन छावनीयों में रुका हुआ था, खुराबदों, ध्वज-वाहक, जिसे मैंने कुछ काल पूर्व ही बेग उपाधि से आभूषित किया था, दो-तीन बार तंबोलियों पर भपटा, उन्हें भगा दिया और न जाने उनमें से कितनों के सिर काटकर शिविर में ले आया। उग्र एवं अदेजन के युवक भी जत्रु देश की लगातार लूटते रहे, उनके घोड़ों को हाँक लाये, उनके लोगों को मार दिया और उन्हें मुसीबतों में डाल दिया।" और यह बाबर का मात्र प्रथम युद्ध था, जिसे हम उसका केवल अभ्यास मात्र कह सकते हैं। ऐसे बाबर तथा उसकी सन्तान को भारतीय इतिहास के पृष्ठों में "महान् तथा भयंकर मुगल" कहकर प्रशंसित किया गया है, जिन्होंने अपने समूचे जीवन

ऐसे पात्राधिक कृत्य करने में स्थित किए, जिनमें सताये गये तथा मौत के घाट उतारे गये लोगों की चित्ताहत तथा बलात्कार की हुई नारियों की काराह एक नुटे गये बच्चों की आहें ऊपर बैठे मल्लाह तक पहुँचने से पूर्व ही समाप्त हो गयीं।

बाबर का विवाह भावना से मार्च, १५०० ई० में हुआ था पर विकृत कायिक होने के कारण वह निरक्षर है : "मैं उसके पास १०, १५ या २० दिनों में कभी एक बार जाता था। उसके प्रति मेरा स्नेह इतना न्यून हो गया था कि मेरी माँ, खानुम (Khanum), मुझे बहुत डाँटा करती तथा दोस-बातीस दिनों में उसके पास कम-से-कम एक बार भेजा करती।" पर बाबर को तो हमजिस से मुहबब थी। अपने एक पुरुष स्नेहपात्र के विषय में बाबर लिखता है : "इसी समय कैम्प बाजार का बाबरी नामक एक लड़का था। हमारे लालों में समरूपता थी।" पृष्ठ (१२५-२६) इसके बाद तो बाबर जेक्सपियर के नायक की भाँति काव्यमय भाषा बोलता है, "मैं उस लालक को बहुत चाहने लगा। सब तो यह है कि मैं उसके पीछे पामन हो गया।" वह कहता है, "इससे पहले तो मेरा किसी से इतना प्यार था ही नहीं और न ही ऐसा अवसर ही आया था कि मैंने कभी प्रीति-भरे शब्द सुने या कहे हों। ऐसी दशा में मैंने फारसी में कुछेक तुकबन्दियाँ की, जिसका एक छन्द इस प्रकार है—

"मेरे समान कोई भी प्रेमी न जो इतना दुःखी था, न आसक्त और न ही प्रणमनांकित और मेरा मौत न इतना दयाहीन था और न ही तुझ जैसा हँस।" कभी-कभी ऐसा हुआ कि बाबरी मेरे समीप आता था और मैं लज्जा एवं शर्मता के कारण उससे प्रीति नहीं मिला पाता था। ऐसे में मैं कैसे या उसे बातों से प्रसन्न करता और कैसे प्रेम की भावना व्यक्त करता? नर्त में प्य होने के कारण मैं उसे उसके घाले का शुक्रिया अदा भी नहीं कर पाता। मैं उसके जाने का बुरा भी न मानता। बिन सत्तापूर्वक मैं उसका स्वागत भी न कर पाता। एक दिन यही मैं कुछ नौकरों के साथ एक पतली-सी गली में जा रहा था कि अकस्मात् बाबरी मेरे बिल्कुल सामने आ गया। इन घुमावों का मुझ पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि मुझ पर बस सड़ो जाती पर गया। मैं न तो उससे प्रीति मिला सका और न ही एक भी शब्द बोल सका। बड़ी गरमिन्दगी और हड़बड़ी के साथ मुहम्मद

सालिह का एक पद्य याद करते हुए आगे बढ़ गया—

मैं अपने महबूब को देखकर भरमा जाता हूँ।

मेरे साथी मुझे और मैं दूसरी जानिब देखता हूँ।

पद्य मेरी परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल था। भावातिरेक एवं यौवनाधिक्य में मैं नंगे सिर तथा नंगे पैर ही गलियों, सड़कों, बागों, बगीचों में किसी भी मित्र तथा नये व्यक्तियों की ओर बिना ध्यान दिये घूमा करता। मैं स्वयं तथा अन्य को भी उचित सम्मान न दे पाता—

भावातिरेक से मैं बुरी तरह पगला जाता.....

न सोच पाता कि आशिक का यही ह्रस्व होता है.....

मुझ में न तो जाने की शक्ति थी, न रुकने की कुव्वत.....

ऐसा विलिप्त बना दिया है तुमने, ऐ मेरे (पुरुष)-महबूब !"

इस प्रकार अपने पुरुष-मित्र के पागल बना देने वाले सौन्दर्य में खोकर वह नीचे बाबर और भी बहुत-कुछ बकता रहता है। १२६वें पृष्ठ पर सम्पादक की पाद टिप्पणी है : "समाज में स्त्री जाति की अधःपतितावस्था के कारण यवन देशों में इस गन्दी प्रथा अप्राकृतिक मैथुन का प्रचलन था।"

इस प्रकार अप्राकृतिक मैथुन में एक ओर तो उसने कुत्तों की नकल की, दूसरी ओर अपने साथियों की हत्या करने में उसने लकड़बग्घों, व्याघ्रों तथा चीतों को भी मात कर दिया था। एक बार जब उसके अनुचरों ने शांतिप्रिय समरकन्द पर घावा बोला "उन्होंने उजबेकों का हर गली-कूचे में पीछा किया और पागल कुत्तों की भाँति लाठियों और पत्थरों से उनमें से ४००-५०० को मार दिया।"

जिन क्षेत्रों में बाबर घूमा वहाँ अब भी अनेक संस्कृत नाम प्रचलित हैं। "ताशकंद प्रदेश सर(Sirr) नदी के तट पर है, जिसका प्रारंभिक संस्कृत नाम श्री था। कोहिक (कोशिक) के दोनों ओर, दाबसी के समीप, मिर्पा-काल अर्थात् महाकाल है। २००वें पृष्ठ पर बाबर लिखता है कि उसने दो-एक आगन्तुकों से दो-एक बड़ी बात की थी तथा पादटिप्पणी में एक बड़ी २४ मिनट के बराबर बतायी गयी है। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उन क्षेत्रों में बाबर के समय तक में समय-मापक 'घड़ी' शब्द प्रचलित था। हिन्दुकुश पर्वतमालाओं में वह दर्रा, जिसमें से होकर बाबर निकला, पंजशिर (पाँच शिखरों के लिए संस्कृत शब्द) कहलाता है। काबुल नगर

भी हिन्दू शासकों द्वारा निर्मित प्राचीन दीवार से परिवेष्टित है। काबुल के बायीं ओर एक संवृद्ध मार्ग का नाम देवरन है जो निश्चित ही संस्कृत शब्द देवारण्य (देवर का वन) का अपभ्रंश रूप है।" पेशावर के समीप हसनगर भी है, जो प्रारम्भ में हस्तिनगर अर्थात् हाथियों का नगर था।

अपने संस्मरणों के २१६वें पृष्ठ पर बाबर 'दासों' के विषय में लिखता है कि इनके कारण ही यवन लुटेरे भारत पर हमला किया करते थे। स्पष्ट है कि साउथो गंगा, जबसे भारत पर यवनों के आक्रमण हुए, निम्नहाथ हिन्दू स्त्री, पुरुष, बालक वन्धु पशुओं की भाँति घेरे जाकर कुहरा, घमनाकृतिक मंथन आदि के लिए बुझारा, समरकन्द, काबुल और यवनो जैसे यवन बाजारों में बेचे ही नहीं जाते थे अपितु उन्हें बलपूर्वक इस्लाम धर्म में परिवर्तन करके अपनी मातृभूमि पर ही आक्रमण कर उसे परतन्त्र बनाने के लिए वापस लाया जाता था। इस प्रकार ये दुष्ट लुटेरे गुण्डों की साथ लेकर जितनी बार निस्सहाय हिन्दुओं पर आक्रमण कर उन्हें दास बनाकर बेच देते, उसी अनुपात में यवनान हो जाते थे। यवन दास-व्यापारी अपने 'भाज' का मूल्य कई प्रकार से बढ़ा देते थे—उन्हें शाही खानदान का बनाकर, उनका शारीरिक सौन्दर्य दिखाकर या उनका शारीरिक बल बताकर। अपने सभी पुरुषों को भयभीत कर दास बनाकर बेचते समय इन पण्डित व्यापार में अच्छी बिक्री के वे सभी हथकण्डे अपनाते थे यथा—'एट्टे पर खोरीदिए या उमार लीजिए'; 'आज खरीदिए और आसान किरतों से छटावरी कीजिए'; 'सन्तुष्ट न होने पर वापस'; 'अच्छी वस्तु के बदले में फिर बदल ले जाइए' इत्यादि।

काबुल में भारत की चार पर्वतीय दरें जोड़ते हैं। इनके किनारे के सभी नगर मस्जिद नाम धारण किए हुए हैं। एक दिनकोट है। दूसरा नगर कोट का जो कोट में इस्लाम के आदु में जलानावाद हो गया।

अपने संस्मरणों के २३६ वें पृष्ठ (भाग १) पर बाबर ने लिखा है कि किस प्रकार उसने इस्लाम के नाम पर बुद्धों को लूटने वालों का भंडाफोड़ किया था। उसके अनुसार, "यवनो के एक गाँव में एक मकबरा था। वह ऊपर ही घूम जाता जिधर घान्नाह के प्यारे (प्रोफेट) ने आशीर्वाचन कहे थे। मैंने उधर जाकर इसे देखा और सचमुच ही उधर एक मति की। अन्त में मैंने इस देश को जाना कि वहाँ के नौकरों ने मकबरे के ऊपर एक प्रकार

का मकान बना रखा था जिस पर लड़े होते ही कुछ हलचल हो जाती। दर्शक को लगता कि मकबरा ही घूम गया है।"

हिन्दुस्तान में पूरी तरह पैर जमाने से पहले बाबर ने इसपर पाँच हमले किये थे। पहला १५१६ ई० के प्रारम्भ में, दूसरा उसी वर्ष सितम्बर में, तीसरा १५२० में, चौथा १५२४ में और पाँचवाँ नवम्बर, १५२५ में। काबुल से चलकर बाबर छः पड़ाव डालने के पश्चात् काबुल नदी के दक्षिण में अदिनापुर के दुर्ग में पहुँचा। गढ़ अन्निय नामक प्रसिद्ध, विशाल एवं बक हिन्दू दुर्ग के विषय में सुनकर लुटेरे बाबर ने मलिक अबू सईय कामरी से हिन्दू दुर्ग तक ले चलने के लिए कहा, पर उस वीर देशभक्त हिन्दू ने इंकार कर दिया। विक्रम एवं गढ़ अन्निय नामक प्राचीन नगर आधुनिक पेशावर के भाग हैं।

दो पड़ावों की दूरी पर ही कोहट था। बाबर का कथन है, "हम कोहट पर टूट पड़े, दोपहर के समय उसे खूब लूटा, अग्नित्त बैलों तथा घोड़ों को साथ लिया और अनेक अफगानों को बन्दी बना लिया। उनके घरों में बहुत अन्न-भण्डार प्राप्त हुआ। हमारे लुटेरे दल सिन्ध नदी तक पहुँच गये। पर हमारी सेना ने वह सब सम्पत्ति नहीं पायी, जिसकी बकी चेगनियानी के कथनानुसार हम आशा किये बैठे थे।" इस प्रकार बाबर अलीबाबा से समान जित लाखों चोरों के साथ अफगानों के सोने-चाँदी, हीरों को लूटने आया, उसमें उसे निराशा ही हुई।

उसके लुटेरों का दल इतना दुःखी हुआ कि उसने घर लौटने का किगुल बजा दिया। बाबर को मजबूर होकर वापस जाना पड़ा, यद्यपि वह वापसी भी रास्ते भर डकैती ही थी। "यह निश्चित हुआ कि हम अफगानों तथा बंगश के प्रदेशों को लूटते-खसोटते नगर (नगज) के मार्ग से वापस जायें।"

कोहट तथा हंगू की घाटी के बीच अफगानों ने एकत्र होकर बाबर और उसके साथियों को अफगान स्त्रियों, बच्चों तथा सम्पत्ति को ले जाने से रोका। पर बाबर के गुण्डे डकैती में माहिर थे, अतः वे इन शान्तिप्रिय किसानों से इक्कीस ही रहे। "आदेश दिये गये कि जीवित पकड़े हुएों के सिर काट दिये जाएँ; हमारे आगाभी पड़ाव पर उनके सिरों की मीनार खड़ी हो गयी थी।" (पृ० २५६) पाठकों को याद रखना चाहिए कि भारत के यवन शासन में सदैव यही डंग रहा। शान्तिप्रिय शासन लोगों

पर चढ़ाई की गयी एवं बन्दी बनाये हुओं को या तो काट डाला गया अथवा शस्त्रों के रूप में बेच दिया गया। कत्ल किए हुओं के शरीरों एवं शिरों को पीनारों के रूप में, घोरों की तो कौन कहें, अकबर के शासनकाल तक ने एकत्र करके रखा जाता था।

विजित अफगान अपने यमराज बाबर के समक्ष अपने दांतों के बीच तिनका रखाकर जाते थे मानो कह रहे हों, "मैं आपका बेल हूँ।"

हुं पर भी अफगानों ने बाबर का मुकाबल किया पर वहाँ भी उन्हें काट-काटकर डेर कर दिया गया। पाल (संस्कृत शब्द 'स्थल') पर भी बाबर का हुजूम "समीपस्थ अफगानों को लूटते चला। बन्नू के मार्ग में बाबर को अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा तथा लूटे हुए जानवर मरते सगे।"

भाग १ के पृष्ठ २५८ पर यवन इतिवृत्तों की अशुद्धियों, तोड़-मरोड़ों एवं अनियमितताओं का उल्लेख है, "बन्नू की समस्त सैनिक कार्यवाही में बाबर दक्षिण के लिए पश्चिम का प्रयोग करता है और इसी हिसाब से अन्य दिशाओं का।"

कीवी जाति पर की गई चढ़ाई में बाबर के गुण्डों ने बहुत-सा कपड़ा लूटा। मारे हुए अफगानों की श्लोपड़ियों का डेर लगा दिया गया। उनका सरदार सादो खाँ बाबर के समक्ष मूँह में तिनका रखकर प्रस्तुत हुआ।

कोहट को हराने के पश्चात् बाबर के हुजूम ने बंगल तथा बन्नू को हराकर काबुल लौटने की सोची। पर यह सूचना पाकर कि दशत की लूट में उन्हें बहुमूल्य पदार्थ मिल सकते हैं, बाबर ने उधर जाने का निश्चय किया। मार्ग में इसखेल (संस्कृत 'इक्षिकुल') पर आक्रमण किया गया तथा "बहुत बड़े परिमाण में भेड़, पशु तथा कपड़े लाये गये।"

उसी रात वीर इसखेलों ने आक्रमण किया। बाबर के साथी अधिकांशतः अपनी रातें प्रत्यक्षतः गाँवों में असहाय, लूटी हुई स्त्रियों के साथ बलात्कार में बिता रहे थे। अपने को खतरे में डालकर बाबर ने किसी प्रकार उन्हें हरा दिया। कुर बाबर के आदेश पर दूसरे दिन "(मेरी सेना के) ऐसे व्यक्तिों की, जो अपने स्थान पर नहीं गये थे, नाक काट डाली गयी।"

मार्ग में दशत तथा अन्य स्थानों की लूट, बलात्कार, कत्लेआम में

बाबर को बहुत-कुछ प्राप्त हुआ। २६५वें पृष्ठ पर इस बात का उल्लेख है कि दूसरों को पाठ पढ़ाने के लिए किस प्रकार एक बन्दी के टुकड़े कर दिये गए थे।

यवन इतिवृत्तों में भारत पर राज्य करने वाले हर यवन सुलतान अथवा सूबेदार (क्षत्रप) को बड़ा प्रतिभाशाली अन्वेषक कहा गया है। उनके आविष्कार केवल इसी बात तक सीमित थे कि निस्सहाय बन्धियों को किन-किन ढंगों से यन्त्रणा दे-देकर मार डाला जाय। बाबर के संस्मरणों के भाग २ के ५२वें पृष्ठ पर ऐसी ही एक विधि, जिसका नाम 'अतकू तथा तिकेह' है, का उल्लेख है: "इस प्रकार के दण्ड में दण्डित प्राणी का सिर लकड़ी के दो खण्डों के बीच स्थिर कर दिया जाता है तथा इसके एक छोर पर बहुत बड़ा भार अथवा बहुत भारी काष्ठफलक रखकर ऊपर उठा दिया जाता है। इस भार को हटाने पर, भारी छोर एकदम नीचे गिरकर दण्डित प्राणी के सिर पर टकराता है।"

बाबर को यह अन्तर्राष्ट्रिय गिरोहबाजी प्रत्यक्षतः लाभकारी सिद्ध हुई। भाग २ के पृष्ठ ५३ पर उसकी एक लूट 'अरेबियन नाइट्स' के चोरों की प्राप्ति-सी लगती है, "लूट में अश्व, ऊँट-ऊँटनियाँ, रेशमी कपड़ों से लदे खच्चर, चमड़े के थैलों, तम्बुओं तथा मखमली चंदोवों भरी ऊँटनियाँ थीं। हर घर में हजारों मन सामग्री ठीक तरह रखकर पिटारों में बन्द कर दी गयी। हर भण्डार में डेर के डेर टंक तथा गट्ठर तथा अन्य सामान, लबदों के थैले तथा चाँदी के सिक्कों से भरे बर्तन थे। हरेक के घर में लूट का अत्यधिक सामान था। इसी प्रकार अनगिनत भेड़ें थीं।" इस सबसे स्पष्ट है कि अरेबियन नाइट्स के किसी मुहम्मद बिन-कासिम से लेकर अहमद-शाह अब्दाली तक के लुटेरों की चोरियों, गिरोहों, तथा कामुकताओं के ऐतिहासिक वर्णन हैं। बाबर लिखता है, "धन को गिनने में स्वयं को असमर्थ पा हम तराजू से तोलकर इसे बाँटते थे। बेग लोग, अधिकारी तथा नौकर-चाकर चाँदों के थैलों तथा सम्पूर्ण खरभारों (सं० 'खर-भार' अर्थात् गदर्भ का भार, लगभग ७०० पौंड) को लेकर चलते थे और हम काबुल पर्याप्त धन, लूट का सामान एवं स्याति लेकर लौटते थे।" आज यदि अफगान सरदार अपना इतिहास जान लें तो उन्हें अपने को मुसलमान कहने में भी बड़ी शरम आएगी।

शब बाबर को किसी सरदार जागीरदार की कन्या को बेगम बनाने की याचना कला महसूस हुई। बुरासान के सुलतान महमद मिर्जा की पुत्री मासुमा सुलतान बेगम से निकाह के लिए उसने कहा। इस भय से कि मना करने पर उसका समूचा घर ही न लूट लिया जाय, सुलतान को उसकी बात मान लेने के प्रतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था।

सितम्बर में बाबर ने अपने राक्षसी गिरोह से एक प्रयास फिर करने के लिए कहा। पर अफगान लोगों द्वारा कड़े प्रतिरोध के कारण वह पुनः लौट आया। अनेक अफगान मार डाले गये और बन्दियों को सब कुछ लूट-कर सुली पर चढ़ा दिया गया। इतना ही नहीं, उनके खेतों में आग लगा दी गयी। काबुल लौटकर बाबर ने आदेश दिया कि अब से आगे उसे बाद-शाह कहा जाय। इसी समय हुमायूँ का जन्म हुआ और बाबर को सिर झुकाने वाले स्थानीय सरदार भेंट के रूप में ढेरों चाँदी लाये।

अन्तर्राष्ट्रिय जुटेरे गिरोह की अपूर्व सफलता ने बाबर को इतना घमण्डी, क्रूर तथा कामुक बना दिया कि कूच बेग, फकीर अली, करीमदाद तथा आला बिहरेह जैसे उसके गिरोह के अनेक व्यक्तियों ने परेशान होकर विद्रोह कर दिया। पारसियों को भी बाबर के सहज विश्वासवात का स्वाद उस समय मिल गया जब उज्बेकों के साथ युद्ध में उत्कोच स्वीकार कर फारस के निकासियों को बोखा दिया जिससे उनकी हार हो गयी।

भारत पर अपने तीसरे आक्रमण में बाबर बेजोर तक बढ़ गया "जहाँ मैंने आज्ञा दी कि भूमि पर झोपड़ियों का स्तम्भ बना दिया जाय।" मैं बेजोर के दुर्ग तक गया जहाँ हमने मदिरापान किया।" पृष्ठ ८३ (भाग २) की सार्वजनिक है: "यहाँ से आगे लगता है मृत्यु-न्यस्त बाबर बहुत अधिक शराब पीता था।" बाबर भेषज-प्रयोग भी करता था।

हुमायूँ गिरोहवालों की नीति बाबर एवं पूरे समुदाय की ही धन के लिए बन्दी बनाने का। "अराब के निवासियों से देने अपनी सेना के लिए १००० गलों पर जब तक देने वाली आपसी होगी। इससे उन्हें बहुत परेशानी हुई। मैंने अपनी सेना पंजकेरा लूटने भेजी। इसके वहाँ पहुँचने से पूर्व ही लोग भाग गये थे।" यह तो राज की ही बात थी जब सारी दुनिया में खबर केनालों के बीच के कारण लोग भयभीत हो भाग जाते थे और अराब के अराब के साथ पर आसन्न सबन गुण्डों के गिरोह हजारों वर्षों

तक इधर-उधर घूमते रहे।

मुर्शिखाने की सच्ची भाषा में, जहाँ एक साथ अनेक बच्चे सेये जाते हैं, बाबर ८३वें पृष्ठ (भाग २) पर लिखता है कि उसके अनगिनत स्त्रियों के हरम में "इस वर्ष मेरे कई बच्चे हुए।"

सिन्धुनदी पार करने पर बाबर का सामना जनजुआरों से हुआ। ये राठौर राजपूतों के वंशज थे, जिनके सरदार को राय तथा अनुजों एवं पुत्रों को मलिक कहा जाता था।

अपने समूचे इतिवृत्त में बाबर पीने-पिलाने की पार्टियों की लज्जा-स्पद बातों को लिखता है: "अपने पुत्र के जन्म-दिवस पर एक नाव पर मैंने मद्यपान का आयोजन किया। मध्यह्नान्तर के प्रार्थना-काल तक हम स्प्रिट पीते रहे। स्प्रिट से घृणा करके हमने माजून पीना शुरू कर दिया। बाद में पार्टी असह्य तथा अप्रिय होने पर शीघ्र ही समाप्त हो गयी।" जहाँ तक दोपहर की प्रार्थना का प्रश्न है "एक नाव में शराब का दौर फिर चला। हम काफी रात तक शराब पीते रहे और जब पूरी तरह घुत् हो गये, घोड़ों पर बैठकर, हाथों में मशालें लेकर नदी की ओर से सरपट अपने शिविर की ओर आये। उस समय घोड़े के कभी हम एक ओर फिसल जाते, कभी दूसरी ओर। मैं बहुत बुरी तरह नशे में चूर था और दूसरे दिन प्रातः जब लोगों ने रात की घटना सुनायी तो मुझे तनिक भी याद नहीं आया। घर आकर मुझे भरपूर उल्टियाँ हुईं।" इन बातों से सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इतने गुण्डों के गिरोह के मालिक इस बबर व्यक्ति तथा उसके भुण्ड द्वारा बलात्कार एवं लूटमार जैसी कितनी भयानक क्रूरताएँ जनता को सहनी पड़ती होंगी।

भारत के सीमा-निवासी बहादुर गक़्खरों तथा अन्य हिन्दू जातियों द्वारा बाबर को सिन्धु के पार खदेड़ दिया गया। जलालाबाद मार्ग पर काबुल से लगभग १० मील पूर्व स्थित बुत-खाक में होकर बाबर का प्रत्यावर्तन हुआ। इसका नाम जुटेरे मुहम्मद गजनी के उस मूर्तिभञ्जक करतब से पड़ा है जब वह भारत के हिन्दू मन्दिरों को लूटकर उनकी पवित्र मूर्तियों को विचूर्ण कर गया था।

अपनी तीसरी यात्रा में बाबर ने सियालकोट जीत लिया। सईदपुर के निवासियों ने प्रतिरोध किया पर उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया,

उनके बन्धु एवं रिश्दों को बलाकार तथा इस्लाम में परिवर्तित करने के लिए साथ ले जाया गया और उनकी समूची सम्पत्ति को लूट लिया गया। इसी बीच कम्हार के तासक माहबेग ने उसके उपनिवेश पर आक्रमण कर दिया, अतः बाबर को बहुत जल्दी लौट जाना पड़ा।

१५२४ में बाबर का चौथा आक्रमण हुआ। इब्राहीम लोदी के अफगान सेनापतियों की हार हुई तथा लाहौर नगर को लूटकर प्रायः लगा दी गयी। देवतपुर में कलेघाम का आदेश दे दिया गया। बाबर सरहिन्द तक बढ़ाया और फिर वापस काबुल लौट गया।

७ नवम्बर, १५२५ को उसने हिन्दुस्तान पर पुनः आक्रमण किया। पृष्ठ १५६ (भाग २) की पाद-टिप्पणी है: "यद्यपि एक बार उसने सौगन्ध का लो भीयर बाबर ने बालोस बंध होने पर भी शराब पीना नहीं छोड़ा।" इससे उन पाठकों की आँखें खुल जानी चाहिए कि अबुल फजल तथा अन्य चापलूसों के पाण्डुपुर्ण झूठे दावों पर विश्वास न कर जिन्होंने यत्रतत्र अकबर तथा अन्य पादो मुगलों के विषय में लिखा है कि उन्होंने मद्यपान या मोर्मास त्याग दिया या अथवा जिजिया कर आदि की मुक्ति के आदेश दे दिये थे।

अपने अन्तिम आक्रमण में जिसमें बाबर दिल्ली का शासक बना, उसके लोग अन्यतः हो गये। दिसम्बर २२, १५२५ को सियालकोट पर पुनः अधिकार कर लिया गया। इस क्षति की पूर्ति भारत अब तक नहीं कर पाया। इब्राहीम लोदी के पंजाब के गर्ववर दोलतखाँ लोदी को बन्दी बना लिया गया। जिन तलवारों को वह अपनी कमर में खोसे रहता था उन्हें उससे गले में लटकाने के लिए, तथा बाबर के सामने क्षाप्त्य लेटने के लिए कहा गया। घानाकानी करने पर बाबर के दर-बारियों ने उसकी टाँग में जात जमायी जिससे वह एकदम नीचे गिर पड़ा। इस घनाचार का भी बाबर के सभी वंशजों ने भली-भाँति पालन किया। अमीरगढ़ के राजा द्वारा अर्पित स्वीकारते हुए अकबर ने भी वही कृत्य दोहराया।

जनवरी ८, १५२६ को बाबर ने मलोट दुर्ग में प्रवेश किया। जंजुघा राजपूतों की वह परम्परागत गद्दी थी। दुर्ग में उसे अनेक मूल्यवान् पुस्तकें मिली जिन्हें वह "शाही की पुस्तकालय" कहता है। स्पष्टतः, ये सभी

प्राचीन हिन्दू पुस्तकालय, जो ऐतिहासिक लेखों, वैज्ञानिक ग्रन्थों तथा पवित्र धार्मिक ग्रन्थों से भरे हुए थे यवन-काल में विनष्ट कर दिये गये क्योंकि आक्रमणकर्ता बबर ही नहीं थे, वे हर हिन्दू वस्तु से पूर्णतः घृणा करते थे।

इस युद्ध के विषय में बाबर लिखता है: "मलोट दुर्ग में प्राप्त स्वर्ण एवं अन्य वस्तुओं के कुछ अंश को मैंने स्वार्थसिद्धि के लिए बल्क, कुछ को अपने रिश्तेदारों तथा मित्रों को भेंट स्वरूप काबुल भेज दिया तथा कुछ अंश अपने बन्धु एवं आश्रितों को बाँट दिया।" हिन्दू सम्पत्ति को यवन देशों में अपव्यय करने के लिए धीरे-धीरे भेजने से हिन्दुस्तान अत्यन्त निर्धन हो चला और यह निर्धनता आज भी अपने देश को कष्ट पहुँचा रही है।

बिखरे हुए हिन्दू स्थानों, यथा शिमला की पहाड़ियों के हरे एवं बिलासपुर को लूटने के लिए बाबर ने अपनी सेना के कुछेक अंश भेजे।

अप्रैल १२, १५२६ को बाबर पानीपत पहुँचा। वह निर्णायक युद्ध, जिसमें दिल्ली का यवन शासक इब्राहीम लोदी मारा गया, २१ अप्रैल, १५२६ को हुआ। इब्राहीम के कटे हुए सिर को बड़ी घूमघाम के साथ बाबर के शिविर में भेजा गया। यह रक्तिम रीति बाबर के आगामी मुगल वंशजों को भी बहुत प्रिय थी। शत्रुओं के खिन्न सिर उन्हें ऐसे ही अच्छे लगते थे जैसे गुलदस्ते। मध्ययुगीन युद्धों में बाबर की सफलता का श्रेय प्रथम बार बन्दूकों के प्रयोग को दिया जाता है।

बाबर द्वारा इब्राहीम को पानीपत में हराकर उसके सिर से दिल्ली का ताज छीन लेना भारत में यवन शासन के अन्त का प्रारम्भ था क्योंकि दिल्ली से विदेशी शासनकर्ताओं की शृंखला में मुगल वंश अन्तिम बबरों का था, पर मुगल निष्ठुरों ने सभी विदेशी राजवंशों के योग से भी कहीं अधिक राज्य किया था। भारत में बाबर का शासनारम्भ हिन्दुस्तान के यवन शासन को दो लगभग बराबर भागों में बाँटता है। ३२० वर्षीय पूर्वाह्न में (१२०६-१५२६ ई०) अनेक छोटे-छोटे यवन राजवंश थे यथा; दास, खिलजी, तुगलक, सैयद एवं लोदी। बाबर से प्रारम्भ होने वाले मुगलों ने ३३२ वर्ष तक राज्य किया, यानी १८५८

तक, जब अंतिम हुसैन, बहादुरशाह अफर को संघर्षों ने समाप्त कर दिया। यह निश्चित की विश्वासना है कि मुगलों का पहला छोर, बाबर, भारत में पश्चिम से हुआ और दूसरे छोर, बहादुरशाह को पूर्व का पर्दा दिखा दिया गया।

पानीपत की विजय के पश्चात् ४ मई, १५२६ को बाबर आगरे की छोर पहुँचा। उसने सर्वप्रथम सुलेमान फारमुली द्वारा हथियाये गये एक प्राचीन हिन्दू महल पर अधिकार किया। यह दुर्ग से बहुत दूर था अतः बाबर एक अन्य हिन्दू महल में गया जिसे अलाल खाँ जिगहट ने हड़प लिया था। हुमायूँ जो सेना की कुछ टुकड़ियाँ लेकर पहले ही आ गया था, आगरे के दुर्ग का अधिकारी था। परिवार का मुखिया, राजा विक्रम, पानीपत में इब्राहीम के पक्ष में लड़ता हुआ कुछ सप्ताह पूर्व ही कत्ल कर दिया गया था। विक्रम तथा अन्य अनेक हिन्दू सरदारों के परिवार, जो आगरे के दुर्ग में थे, सबन आक्रमणकर्ताओं द्वारा बन्दी बना लिये गये थे तथा उनकी समूची सम्पत्ति, जिसमें हीरे-जवाहरात एवं अन्य मूल्यवान् धातुएँ थीं, लूट ली गयी थी।

पृष्ठ १६२ (भाग २) पर बाबर लिखता है कि उसने आगरे में लोदी के महल को १० मई, जुमा रात, के दिन अपने कब्जे में कर लिया था। पृष्ठ २५१ पर वह लिखता है, "ईद के कुछ दिन पश्चात् एक आलीशान बाग़ (जुलाई ११, १५२६) ऐसे विशाल कक्ष में हुई जो पाषाण खंभों की उत्तम वंशित से सुसज्जित है और जो सुलतान इब्राहीम के पाषाण-प्रासाद के मध्य के गुम्बद के नीचे है।" अत्यन्तः यह मुमताज की मृत्यु के १०४ वर्ष पूर्व ताज-महल का मन्दिर है, जिसे उसका मकबरा समझा जाता है। "महान् मुगल, अकबर" (पृष्ठ ६) पुस्तक में विन्सेंट स्मिथ का कथन है कि बाबर आगरे में अपने उद्यान-प्रासाद में मृत्यु को प्राप्त हुआ था। जिसके चारों किनारों पर प्रापूषित पत्थरों की मीनारें हैं। बीच में गुम्बद तथा शानदार बगीचा है। आगरे में ऐसा अकेला भवन ताजमहल है।

प्रधानतया बाबर उन विवादास्पद बातों को प्रमाणित कर देता है जो भारतीय जीवन में सबन-आक्रमणों के कारण उत्पन्न हो गयी थीं। पृष्ठ २०८ (भाग २) पर उसका कथन है, "हिन्दुस्तान में जन-घन नगरों का,

पूर्ण विनाश एक साथ होता है। विशाल नगर, जो अनेक वर्षों से स्थित है (यदि निवासी भय के कारण भाग नहीं जाते) एक-दो दिन में इस प्रकार पूर्णतया निर्जन हो जाते हैं कि आप कठिनता से ही विश्वास करेंगे कि उन में भी कभी कोई आबादी थी।"

पृष्ठ २४५-४६ (भाग २) पर बाबर लिखता है कि किस प्रकार हिन्दुस्तान की लूट के सामान को उसने वितरित किया। "मैं खजाने को देखने एवं बाँटने लगा। मैंने इस खजाने से सत्तर लाख देने के प्रतिरिक्त एक महल दिया जिसकी अपार सम्पत्ति का कोई लेखा-जोखा तथा विवरण नहीं है। कुछ अमीरों को मैंने दस लाख, कुछ को आठ लाख, सात लाख तथा छह लाख दिये। अफगानों, हजाराओं, अरबों, बलूचों तथा अन्यत्र को, जो मेरी सेना में थे, उनकी स्थिति के अनुसार मैंने उपहार दिये। जो व्यक्ति सेना में नहीं थे उन्हें भी इन कोषों से मैंने अनेक उपहार दिये। उदाहरणार्थ कामरान को १७ लाख, मोहम्मद जमान मिर्जा को १५ लाख अस्करी मिर्जा तथा हिन्दाल यानी प्रत्येक-छोटे-बड़े रिश्तेदार तथा मित्र को सोने, चाँदी, वस्त्र, आभूषण तथा बन्दी दासों (हिन्दुओं) के रूप में कुछ न कुछ उपहार मिला ही। अपने पुराने प्रदेश के बेगों तथा उनके सिपाहियों को भी बहुत से उपहार भेजे गये। मैंने समरकन्द, खुरासान, काशगर तथा इराक के अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों को उपहार भेजे। खुरासान, समरकन्द, मक्का तथा मदीना के मुल्लाओं को भी भेंट भेजी गयी। अब उनके निवासियों को, प्रत्येक को, चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष, चाहे स्वतन्त्र हो चाहे दास, चाहे बड़ा हो चाहे छोटा स्पर्धा के रूप में भेंट के तौर पर मैंने एक-एक शहरोखी (चाँदी का सिक्का) भेजा।" उन आदमियों की पवित्रता की कल्पना की जा सकती है, जिन्हें बाबर जैसे डाकू ने लूट का माल भेजा। यही पंक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि बादशाहों के रूप में विस्मात मुगल लुटेरों ने भारत में सुख-समृद्धि फैलाने की अपेक्षा उसे पूर्णतया निर्जन बना दिया।

बाबर, हुमायूँ, अकबर तथा उनके वंशजों के क्रूर कारनामों से भय के कारण, जहाँ ये गये वहाँ से लोग भाग गये। बाबर का कथन इसको प्रमाणित करता है (पृष्ठ २४६) : "जब मैं प्रथम बार आगरा गया, मेरे लोगों तथा वहाँ के निवासियों में पारस्परिक द्वेष तथा घृणा थी। उस

देश के किसान तथा सैनिक घेरे घादमियों से बचते थे तथा दूर भाग जाते थे। कतलवाहू दिल्ली तथा आगरा के प्रतिरिक्त सर्वत्र वहाँ के निवासी के विभिन्न बौद्धिकों पर क्रिमेबन्दी कर लेते थे तथा नगर शासक सुरक्षात्मक किलाबन्दी करके न तो आजा का पालन करते थे और न भुक्त ही थे।" (पृ० २४७) : "जब मैं आगरे आया, वहाँ के सभी निवासी डर के मारे भाग गये। फलतः उन घादमियों तथा अपने घोड़ों के लिए न तो अन्न प्राप्त हो सका। हमसे शत्रुता तथा घृणा के कारण ग्रामीणों ने बिटोहा, चोरी तथा डकैतियाँ अपना ली थीं। सड़कों पर चलना असम्भव था। अनेक लोग तेज धूप के कारण गिर पड़ते थे और वहीं दम तोड़ देते थे। इन कारणों से मेरे अनेक वेग तथा श्रेष्ठ व्यक्ति दम तोड़ने लगे, हिन्दुस्तान में रहने को मना करने लगे और यहाँ तक कि वापसी की तैयारी भी करने लगे। हिन्दुस्तान से बहुत अधिक परेशान होकर ख्वाजा कलौ ने लिखा :

घर में ठीक-ठाक ढंग से सिन्ध पार कर सका,
यदि पुनः मैं हिन्द की इच्छा कहूँ तो लानत है।"

आगरा के लोगों ने तो पूरा नगर छोड़ दिया था अतः बाबर ने अपने शिरोह के घादमियों को आसपास के क्षेत्र में भोजन लूटने के लिए भेजा। बाबर इन शत्रुता के बातावरण में प्रत्यक्ष असुरक्षित था। उसे भय था, कि कहीं पकड़ा न जाय प्रधवा मूर्खों न मर जाय। हिन्दू स्वतंत्रता का संरक्षक तथा महायोद्धा राणा सांगा, जिसके शरीर पर युद्धों के ८४ घाव थे, अपने विजय वाहिनी लेकर बाबर नाम के इस विदेशी लुटेरे को देश से खदेड़ने के लिए आगे बढ़ रहा था।

निजाम खान, एक विदेशी मुसलमान जिसने बाबर को देखा तक नहीं था और जो बाबर को अपना एक मित्र समझता था, ने आगे बढ़ते हुए राणा सांगा से बाबर को सुरक्षित रखने के लिए बयाना उसे सुन दिया।

एक अन्य विदेशी मुसलमान, तातार खान, ग्वालियर दुर्ग का अधिपति था। उसने बाबर को अपनी स्वतंत्रता स्वीकार नहीं की। बाबर के मुख्य साथी रहीमदाद ने तातार खान की आज्ञा लेकर अपने कुछ साथी सहित हाथीपोल द्वार के भीतर घुसा। रात को प्रचानक अपनी श्रेष्ठ सेना के लिए द्वार खोल कर उसने कतलवाहू पर अधिकार कर लिया। दूसरे विदेशी मुहम्मद

जैतून ने धौलपुर बाबर को समर्पित कर दिया। जैतून तथा निजाम खान को भारत से कोई प्रेम नहीं था। उनके कामों से स्पष्ट है कि मुसलमान होने के नाते वे देश के महान् भक्त राणा सांगा, जो आक्रमणकर्ता को रोके धकेलने के लिए समस्त शक्ति एकत्र कर रहे थे, की अपेक्षा बाबर जैसे बबर तथा सहधर्मि आक्रमणकर्ता को पसन्द करते थे।

राणा सांगा की प्रगति से चिन्तित होकर फरवरी ११, १५२७ ई० को बाबर आगरा से बाहर निकलकर ऐसे उचित स्थान की खोज करने लगा जहाँ वह उससे युद्ध कर सके। उसने उस महान् भील का समीप पसन्द किया, जिसे हिन्दुओं ने फतहपुर सीकरी नगरी की जल पूर्ति के लिए निमित्त किया था। अपने सम्पूर्ण वैभवशाली महलों वाली यह नगरी जो हमें आज दिखाई पड़ती है और जहाँ पर्याप्त जल उपलब्ध है, अकबर से शताब्दियों पूर्व स्थित थी। जो दावे अकबर को उसका निर्माणकर्ता बताते हैं, वे सब झूठे हैं। यह तथ्य कि फतहपुर सीकरी नगरी पहले से ही स्थित थी नयी व्याख्या करने के लिए भूले हुए भारतीय इतिहासकार बड़ी मासूमियत से कहते हैं कि राणा सांगा और बाबर का अन्तिम युद्ध कनवाहा से कुछ मील दूर हुआ था किन्तु यह ऐतिहासिक भूल है। अपने संस्मरणों के पृ० २२७ (भाग २) पर बाबर का कथन है कि अब्दुल अजीज और मुल्ला अपाक के मातहत उसकी आगे की सैनिक टुकड़ी को राणा सांगा के अग्रिम दल ने समाप्त कर दिया था। वहाँ राणा सांगा का एक छोटा-सा दुर्ग तथा महल था। इसके पश्चात् राणा सांगा फतहपुर पहुँचा "जैसा कि इतिहासकार बदायूनी अपने मुन्तखब्रउत-तबारीख (पृष्ठ ४४५, भाग १) में कहता है।

कनवाहा संघर्ष के कई सप्ताह पश्चात् बाबर तथा राणा सांगा की फौजें फतहपुर सीकरी की ओर बढ़ीं। राणा सांगा ने फतहपुर सीकरी की चार दीवारी के अन्दर, जैसा कि दर्शक को आज भी दिखाई पड़ता है, अपना शिविर लगाया। बाबर ने अपना शिविर इसकी दीवार के बाहर भील के समीप लगाया जहाँ से पूरे नगर को पानी जाता था। जैसी कि इन म्लेच्छों की आदत थी, बाबर ने उस जल को दूषित करना प्रारम्भ कर दिया। पृष्ठ २६४ पर उसका कथन है कि शनिवार, मार्च १६, १५२७ ई० को उसकी फौज ने "एक पहाड़ी के समीप, जो धार्मिक

जन्मों की समाधि के समान समती है," डेरा डाला। ३०८वें पृष्ठ पर उसका कथन है कि बुद्ध हमारे गिबिर के समीप ही एक छोटी-सी पहाड़ी पर हुआ था।

राणा सांगा की सेना के हिन्दू वीर तथा देशभक्त सैनिक और वे मुसलमान सैनिक भी थे, जिन्हें बाबर से घृणा थी। उनमें डूंगरपुर के राजस उदयसिंह, मेदिनी राय, हुसैन खाँ मेवाती, ईदर के भारमल, चर्मदेव, सिकन्दर लोदी तथा रायसेन का देशद्रोही हिन्दू सरदार शैलादित्य थे।

कनबाहू की हार से बाबर के गिबिर में अत्यधिक भय छा गया था तथा उसके सेनापति लोट चलने के लिए जोर दे रहे थे। यदि राणा सांगा कनबाहू से सौधें ही बाबर की सेना को खदेड़ते पाते तो उनकी विजय हो जाती पर उन्होंने जन्म की सेना पुनर्गठित करने का समय दे दिया।

बाबर ने मासवा से रायसेन के हिन्दू शासक के माध्यम से राणा सांगा से सन्धि-वार्ता प्रारम्भ कर दी। बाबर रायसेन के राय को रिश्वत देकर अपनी तरफ मिलाने में सफल हो गया। कपटपूर्ण संधि-वार्ता लम्बे समय तक चलती रही ताकि बाबर अपनी सैनिक स्थिति दृढ़ कर सके और जन्म सेना का भेद प्राप्त कर सके। देशद्रोही राय ने युद्ध प्रारम्भ होने पर अपनी सैनिक टुकड़ी बदल दी। धायल प्रवर्चित राणा को ऐसे समय पर युद्धभेज छोड़ना पड़ा जब कि उसे विजय-श्री प्राप्त होने ही वाली थी।

फतहपुर सीकरी नगरी जिसे दशक अमपूर्वक अकबर का निर्माण माना जाता है। आज भी इस युद्ध के समय अपनी वही विद्यमानता के चिह्न निभे जा रही है। भवन-समूह की प्राचीर पर आज भी बाबर की तोपों द्वारा बरसाए गए शीलों के निशान देखे जा सकते हैं। आक्रमण के समय कट हुए कुछ भाग के अवशेष अब भी वहाँ देखे जा सकते हैं। हाथी पोल के हाथियों की हड्डियों ने ही अस्पष्ट किया था। स्वयं बाबर का कथन है कि उस पहाड़ी पर "मैंने काफ़िरों के सिरों की मीनार बनाने का हुक्म दिया।" उस चतुर्दशे पर जो सैकड़ों कब्रें बनी हुई हैं, वे उन मुस्लिम आक्रान्तियों की हैं, जो युद्ध में राणा सांगा की सेना द्वारा मारे गए थे।

देशद्रोही हिन्दू राय के विश्वासघात के कारण बाबर को जो सफलता मिली उसका कर्तक समस्त हिन्दू जाति पर है, जिससे क्रूर मुगल

साम्राज्य की नींव पड़ी और जिसके कारण भारतीयों की अताभिदियों तक बवंडारपूर्ण यातनाएँ सहन करनी पड़ीं।

अपने पूर्वजों एवं पूर्ववर्ती मुस्लिम शासकों की भाँति बाबर ने विजित मुस्लिम शासकों के हरेमों को सुन्दरियों और अपहृत हिन्दू ललनाओं को अपने हरेम में डाल लिया। उसकी कामासक्ति से दुःखी होकर इब्राहीम लोदी की माँ ने किसी प्रकार उसे विष दे दिया। विष-प्रभाव से मुक्त होने पर बाबर ने विष देने वाली स्त्रियों में से एक को हाथी के पाँवों के नीचे कुचलवा दिया, दूसरी को तोप के गोले से उड़वा दिया गया और इब्राहीम लोदी की माँ को काल कोठरी में डलवा दिया।

दोआब में विद्रोह करने वाले इलियास खाँ को पकड़ लिया गया और उसकी खाल उतरवा ली गई।

बाबर का कामी और क्रूर जीवन अब समाप्तप्रायः था। उसका पुत्र हुमायूँ भी नीम लुटेरे के रूप में फल-फूल रहा था। बाबर को आज्ञा के बिना वह दिल्ली के लिए चल पड़ा। बाबर और उसके सेनापतियों द्वारा एकत्रित खजानों को स्थान-स्थान पर लूटता हुआ वह दिल्ली पहुँचा। मद्यपान और व्यभिचार में उसने बहुत-सा धन विनष्ट किया। कामुकता के सम्बन्ध में डाँटते हुए बाबर ने उसे एक कठोर पत्र लिखा, परन्तु इसका उसपर कोई प्रभाव न पड़ा।

दरबारी इतिवृत्त में उल्लिखित यह बात भी सफ़ेद झूठ है कि हुमायूँ की बीमारी के समय बाबर ने खुदा से दुआ माँगी थी कि उसकी बीमारी बाबर को लग जाए। वास्तव में मद्यप कामी अपने ही दुष्कर्मों के कारण जर्जर हो गया था। पुत्र के विद्रोह से भी उसे गहरा धक्का लगा था, अतः ४८ वर्ष से कम आयु में आगरा के ताजमहल में २६ दिसम्बर, १५३० को उसका देहान्त हो गया। उसका शव कुछ दिन यमुना-तट पर राम बाग में रखा गया। और बाद में काबुल ले जाकर दफनाया गया।

बाबर को भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डालने वाला कहा जाता है। वास्तव में जिस दुराचारपूर्ण बीभत्स शासन की नींव उसने डाली उसके कामी, बर्बर, सम्पट वंशजों से उसका निष्ठापूर्वक अनुसरण किया। जिसके कारण 'मुगल' शब्द 'हिंस्र वंश' का पर्याय बन गया।

हुमायूँ

द्वितीय मुगल बादशाह, हुमायूँ, तीसरे दजे का आदमी तथा अव्वल दर्जे का शराबी, पिक्कड़ था। इसके प्रतिरिक्त वह हत्यारा, कसाई एवं व्यभिचारी भी था। उसके पिता बाबर ने, जिसने हुमायूँ को अपने जैसा ही बनाया था, उसे चेतावनी देते हुए कहा था, "अगर अल्लाह ने तुम्हें कभी ताज-मो-उन्नद बख्शा, अपने भाइयों के प्राण न लेना।" (पृष्ठ २३१, क्रिसेंट इन इन्डिया, द्वारा एस्० आर० जर्नी)। बाबर अपने पुत्र हुमायूँ से अति-मानवीय वस्तु की आकांक्षा कर रहा था, कारण कि ६०० वर्षों तक पहले अल्लाह के इन बन्दों का काम प्रत्येक आदमी के प्राण लेना तथा जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक स्त्री का शील-हरण करना था।

बाबर स्वयं जीवन-पर्यन्त इस रक्तिम नियम का पालनकर्ता रहा। वह लिखता है : "जब-जब मैंने हिन्दुस्तान में प्रवेश किया है, जाट तथा गुरूर हमेशा पहाड़ियों तथा वनों से बहुत बड़ी संख्या में बैल तथा भैंसे लेने के लिए आए हैं। जब मैंने समूचे पड़ोसी प्रांत पर अधिकार कर लिया है, उन्होंने यही बात दोहरायी है।" (पृ० २३५, वही) बाबर नामक इस मुगल की दिलचस्पी विचारणीय है जो स्वयं डाकू तथा भारत में गिरोह-बन्द रहा है हिन्दुओं को, जो अपने ही घरों तथा पशुओं को ले जाते हैं, चोर कहता है।

इस गिरोहबाज की, जो मुगलों का प्रथम सम्राट कहा जाता है, मानवीय क्रूरताओं का दूसरा उदाहरण, जो उसने हिन्दुओं पर की थीं, अहमद यादगार (पृ० २३६, वही) द्वारा वर्णित है। एक काजी ने बाबर से शिकायत की कि मोहन मुन्दाहिर नामक एक वीर हिन्दू ने, काजी द्वारा उसकी सम्पत्ति हूष लेने का बदला लेने के लिए, काजी की भू-

सम्पत्ति पर हमला किया, जलाया, सब सम्पत्ति लूट ली और काजी के पुत्र का कत्ल कर दिया।

बाबर ने ३,००० घरबों के साथ अपनी कुली हुमादानी को काजी के बेटे के प्रति किये गये दुर्व्यवहार का बदला लेने के लिए भेजा। "लगभग एक सहस्र मुन्दाहिर मार डाले गये और इतने ही स्त्री, पुरुष एवं बालक बन्दी बना लिये गये। कत्ल बड़ा भयानक था, कटे हुए सिरों का मीनार बन गया था। मोहन को जीवित ही पकड़ लिया गया। जब बन्दी दिल्ली लाये गये तो सभी स्त्रियाँ (बलात्कार एवं आण देने के लिए) मुगलों को दे दी गईं। दोषी मुन्दाहिर को कमर तक भूमि में गाड़ दिया गया और तब तीरों से छेद-छेदकर उसका प्राणान्त कर दिया गया।" बाबर का सम्पूर्ण जीवन तथा उसके परवर्तियों की भी ऐसी ही भयानक क्रूरताओं की सम्बन्धी कहानी है।

प्रत्येक कल्लेआम के पश्चात् हिन्दू स्त्रियाँ कामुक मुगल कुत्तों को दे दी जाती थीं। नियति की विडम्बना यह थी कि वे हिन्दू रानियाँ तथा राजकुमारियाँ, जो पहले अतीव सम्मान की पात्र होती थीं, मजबूर कर दी जाती थीं कि वे उन्हीं अपने महलों में वेश्यावृत्ति करें। स्वयं बाबर लिखता है : "मैं प्रतिदिन अपने महलों में ६६० लोगों को नौकर रखता था तथा आगरा, सीकरी, बयाना, धौलपुर, खालियर एवं कोल (जिसे गलती से आज अलीगढ़ कहते हैं) में प्रतिदिन १४६१ संग-तराश नौकर थे।" अहमद यादगार के अनुसार बाबर अपना खाली समय ऐसे बाग में व्यतीत करता था जो "यमुना तट पर था तथा जहाँ उसके साथ मुगल साथी एवं मित्र होते थे। वहाँ-वहाँ गुलाबी गालोंवाली नर्तकियों के समक्ष मद्यपान (और सच तो यह है कि आलिंगन-चुम्बन) किया करता था। वे (नर्तकियाँ) घुनें गुनगुनातीं तथा अपना सौन्दर्य (यह उनके नग्न शरीरों की लग्नता का ही सुष्ठु प्रयोग है) प्रदर्शित करतीं।"

यहाँ यह ध्यातव्य है कि बाबर (फतहपुर) सीकरी, खालियर तथा अन्य स्थानों की ही बात करता है। अन्य मुगल बादशाहों की भाँति वह उन्हें अपना ही बताता है। संग-तराश निश्चय ही हिन्दू मूर्तियों को काटने के लिए ही रखे गये थे अर्थात् हाथी की उन विशाल मूर्तियों को जो आगरे के दुर्ग तथा फतहपुर सीकरी के द्वारों की शोभा थीं। उसके सीकरी के प्रासादों

के सम्बन्ध में उन इतिहासकारों को ज्ञान जाना चाहिए जो फतहपुर सीकरी की नींव डालने वाला शकबर को बताते हैं वह भी तब जबकि शकबर का मान्यार्थ नामक दरबारी कहता है कि उसने न तो किसी संगतराश की छेनी की छाकाज सुनी और न किसी कुशल की।

कुत्खात मीना बाजार जिसमें ऊँचे तथा नीचे घरानों की सुन्दर स्त्रियों को मजबूर किया जाता था कि वे मजबूत गोंड की तरह घूमते हुए मुगल बादशाह की इच्छा पूर्ति करें, यत्नवर प्रसवा हुमायूँ का ही प्राविष्कार नहीं था बल्कि जैसा कि ऊपर कहा गया है, बाबर द्वारा ही प्रारम्भ की हुई एक सम्मानित प्रथा थी। इस पितृ-परम्परा में जन्म लेने के कारण कोई आश्चर्य नहीं कि हुमायूँ बहुत बड़ा कामी तथा नरसंहारक हो गया, जिसकी तलवार ने उसके भाइयों को भी नहीं बरखा।

हुमायूँ का जन्म मार्च ६, १५०८ को काबुल में हुआ था। जैसा कि यवन राजवंश में सामान्य बात है, हुमायूँ की वर्ष-परम्परा अतर्क्य नहीं। कदम उठाया गया कि उसे राजगद्दी से अलग रखा जाय और बाबर के बहनाई, मीर मोहम्मद मेहदी स्वाबा को बादशाह बना दिया जाय किन्तु हुमायूँ ने अपने पिता की मृत्यु के तीन दिन पश्चात् किसी प्रकार ताज हड़प लिया। २६ दिसम्बर, शुकवार को आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद में हुमायूँ के बादशाह बनने की घोषणा पढ़ी गयी। (पृष्ठ २४२, वही) और फिर भी आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद में लिखा हुआ है कि शाहजहाँ की महली जहाँनारा बेगम ने सौ वर्ष से अधिक वर्ष पश्चात् उसका निर्माण कराया। इससे सिद्ध होता है कि मुसलमानों की मस्जिदों तथा कब्रों पर यह किन्ती गसत बातें लिखी गई हैं और इस प्रकार विजित हिन्दू मन्दिरों तथा छाछादों को यवनों द्वारा निमित्त बना दिया गया है।

केवल बारह वर्ष की अवस्था में, १५२० ई० में, बाबर ने हुमायूँ को बदमाश का नामक नियुक्त किया। १५२४ में हुमायूँ ने लुटेरों के बहुत बड़े झुण्ड को लेकर हिन्दुस्तान पर अधिकार जमाने में बाबर की सहायता की। कुछ पञ्जाब की यवन टुकड़ियाँ जो इब्राहीम लोदी की सहायता के लिए आ रही थीं, हुमायूँ की सेना ने तितर-बितर कर दीं। हुमायूँ ने उन सुडों में साथ लिया, जिनमें बाबर ने १५२६ में पानीपत में इब्राहीम लोदी को हराया तथा फतहपुर सीकरी के युद्ध में, जिसमें रायसेन के एक

देशद्रोही हिन्दू शासक ने घन के लोभ में भारत का मुकुट विदेशी मुसलमान के सिर पर रख दिया। बाद में अन्य चढ़ाईयों में भी, इब्राहीम लोदी की सैनिक टुकड़ियों के विरुद्ध सम्मेलन, जौनपुर, गाजीपुर तथा काल्पी में हुमायूँ ने मुगल सेनाओं का संचालन किया।

१५२८ में हुमायूँ घरों, प्रांगणों तथा अपने पत्नियों से दुरी तरह बेरकर छीनी हुई सहस्रों हिन्दू ललनाओं तथा सैकड़ों मन सौने, चाँदी तथा जवाहरातों से उत्सव मनाने के लिए अपने यौवन के रंगीन दिनों को गुजारने बदमाश लौट गया।

एक वर्ष पश्चात् अपने स्थान को वीरान करके बिना किसी से कुछ कहे हुमायूँ आगरा लौट आया। इस घटना से बाबर को बड़ा आश्चर्य हुआ। बाह्यतः बाबर सम्पट जीवन व्यतीत करने के लिए भारत को इस गड़बड़ में ही रखना पसन्द करता था। एक दिन इसी प्रकार बाबर से कुछ भी कहे बिना वह दिल्ली चल दिया "और वहाँ उन अनेक घरों को खोला डाला, जिनमें कोप था और समस्त सम्पत्ति को बलपूर्वक हथिया लिया। मैं निश्चय ही उससे ऐसे व्यवहार की आशा नहीं रखता था। अतः प्रतीक दुःखी होकर मैंने उसे अनेक कठोरतम निन्दाभरे पत्र भेजे।" (पृष्ठ ३१५, भाग २, बाबर के संस्मरण)। आश्चर्य है कि बाबर जैसे बदमाश को भी हुमायूँ के व्यवहार में दोष दिखाई दिए। यह प्रदर्शित करता है कि युवक हुमायूँ अपने कृपाणधारी पिता के जीवन में ही कितना कामुक तथा व्यभिचारी हो गया था।

यह सहज ही कल्पना की जा सकती है कि हथियारधारी मुसलमान मित्रों के साथ, शराब के नशे में चूर होकर दिल्ली के समीप घरों को विनष्ट करता हुआ तथा समस्त खजानों को लूटता हुआ हुमायूँ कितने भयानक प्रत्याचार कर रहा था! यही लुटेरा था जो भारत का दूसरा मुगल-बादशाह बना। गयासुद्दीन, उपनाम खैन्दावीर, हुमायूँ नाम का लेखक लिखता है कि "हुमायूँ ने चन्द्रवार तथा बुधवार मोज उढ़ाने के लिए निर्गुल कर दिए थे। इन दिनों उसके पुराने साथी तथा चुने हुए दोस्त बुलाये जाते थे तथा गबैयों को भी बुलाया जाता था और उन सबकी इच्छाएँ परिपूर्ण होती थीं... चन्द्रवार चन्द्रमा का दिन है और बुधवार बुध ग्रह का। अतः ये उचित ही था कि इन दिनों वह चन्द्रमा जैसे सुन्दर युवकों के

बाद समय व्यतीत करे।" यह उल्लेख कि हुमायूँ अपना समय चन्द्रमा जैसे कुम्हार चुबकों के साथ व्यतीत किया करता था, इस बात का द्योतक है कि वह निश्चित ही अपने पिता बाबर के समान ही संप्राकृतिक संभोगी था। एकत्र हुए ऐसे प्रवक्त्यों पर हर व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति करना इस बात का प्रमाण है कि ऐसे सम्मिलन कितने विकृत तथा कामुकतापूर्ण हुआ करते थे। (पृ० ११२, भाग १, इलियट तथा डाउसन)।

सर एच० एम० इलियट का कथन है कि, "अपनी वृद्धावस्था में खैन्दा-और दरबारी बन गया था तथा इतिहास-लेखन छोड़कर शाही चारण बन गया था। उसकी हृति से स्पष्ट है कि उसे दरबार में बहुत सम्मान मिला था तथा उसे 'समोर-ए-मलबार' की उपाधि भी प्राप्त हुई थी, (प्रिंस आफ़ राइडर्स, पृ० ११६, इलियट तथा डाउसन)। जब यह बदमाश भाट संघीरतापूर्वक सिखता है, "१५३४ ई० मुहर्रम के महीने के बीच में हुमायूँ ने सोहयनाह नामक नगर की दिल्ली में प्राधारणिला रखी और उसी वर्ष के अंत तक सोहयनाह के महीने में (सम्पूर्ण नगर के) दीवारें, बुर्ज, प्राचीर द्वार तथा लगभग पूर्ण हो गये।" (पृ० १२६, वही)। स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार हिन्दू नगरों तथा प्रासादों को बोखे से यवनों द्वारा निर्मित बता दिया गया।

हमें विश्वास है कि हमारे विश्वविद्यालय तथा इतिहास-अध्यापक इन बातों को और अपने शैक्षणिक नयन उधाड़ेंगे। बाबर को गुजरे केवल तीन वर्ष हुए थे। इन तीन वर्षों में उसके शक्तिशाली विरोधियों ने—अपने सगे भाई, महमूद लोदी, इब्राहीम लोदी का भाई, शेरशाह सूरी, आलम खाँ उपनाम अलाउद्दीन, इब्राहीम लोदी का चाचा—उसका पीछा किया। ऐसे में यह कथन कि अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् इन तीन वर्षों में, हुमायूँ जैसे लम्पट ने, जो सर्वत्र अनेक भयानक शत्रुओं से घिरा रहता था, दिल्ली के समीप एक सम्पूर्ण नगर बसाने के लिए और वह भी कुछ ही महीनों में शान्ति, धन तथा कारीगरों को पा लिया, जहाँ तक लेखक का सम्बन्ध है, शैक्षणिक घृष्टता एवं निर्लज्जता की पराकाष्ठा है।

इसके विपरीत, एक अन्य इतिहासकार हैदर मिर्जा देगलात, तारीख-ए-रसीदी के लेखक ने "हुमायूँ के प्रारम्भिक शासनकाल की असमता एवं अव्यवस्था का वर्णन" किया है (पृ० १२८, वही)।

हुमायूँ के तीन भाई कामरान, अस्करी मिर्जा तथा हिन्दाब बे। कामरान को पंजाब, काबुल तथा कन्धार का मालिक बना दिया गया था। अस्करी को सम्भल और हिन्दाब को मेवात (प्रसवर) जिले का प्रधान बना दिया गया था।

बादशाह बनने के इच्छुक कामरान ने हुमायूँ के विरुद्ध काबुल से कूच किया तथा कभी सेना की सहायता से तो कभी काव्यात्मक चाटुकारिता द्वारा हुमायूँ से दिल्ली से उत्तर की उपजाऊ भूमि हथिया ली। इससे हुमायूँ की आय में बहुत कमी हुई। उधर कामरान को लूट-खसोट के लिए बहुत बड़ा भूखण्ड प्राप्त हो गया। विन्सेंट स्मिथ ने उचित ही लिखा है कि कामरान ने "अपने विपक्षियों पर राजसी हमले करके, सित्रियों एवं बच्चों तक को न छोड़कर, बहुत दुर्नाम कमाया।" (महान् मुगल अकबर, पृ० १८) फिर भी जैसा कहा जाता है, हुमायूँ मूख नहीं था। यही तथ्य कि उसने अपने तीनों शरारती भाइयों को दूर ही रखा, इस बात का प्रमाण है कि वह अतिघूर्त था। चापलूस यवन इतिहासकार हुमायूँ को इसीलिए महान बताते हैं कि वह बादशाह था।

जैसा सामान्यतया होता रहा, हुमायूँ ने अपना शासन हिन्दू राज्य को लूटकर प्रारम्भ किया। कालिंजर का हिन्दू राज्य सर्वप्रथम हुमायूँ के यवन लुटेरों का शिकार हुआ।

स्वर्गीय सुलतान सिकन्दर लोदी के पुत्र, महमूद ने स्वयं को जोनपुर का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और इस प्रकार वह हुमायूँ की राज्य-सत्ता के लिए चुनौती बन गया। लोदी शत्रु को अनेक अफगान सरदारों से अनुमोदन मिला। हुमायूँ उनसे लड़ा और कहते हैं कि उसने बहुत बड़ी विजय प्राप्त की। हुमायूँ ने इस अवसर पर एक उत्सव मनाया, जिसमें दावत ही नहीं दी, अपने दरबारियों को उपहार भी दिये। इससे उसके राजकोष में और कमी आ गयी।

एक के बाद एक राजद्रोह ने हुमायूँ को चैन से नहीं बैठने दिया। एक विद्रोही दरबारी मुहम्मद जमान मिर्जा को अन्धा करने के लिए बयाना के किले में भेजा गया, जहाँ से वह भागकर गुजरात के शासक सुलतान बहादुर से जा मिला। कुछ-कुछ ऐसे ही नाम वाला दूसरा दरबारी मुहम्मद सुलतान मिर्जा, अपने दो पुत्रों के साथ कन्नौज चला गया और वहाँ उसने हुमायूँ

के अधिकार को चुनौती दे दी।

हुमायूँ ने गुजरात के शासक से विद्रोही मोहम्मद जमान मिर्जा को माँगा। उसके बना कर देने पर हुमायूँ ने उसपर चढ़ाई कर दी। खालियर पहुँचने पर (१५३२ में) हुमायूँ दो मास तक कामुकता में डूबा रहा और बाद में लौट आया। दो वर्ष पश्चात् जब वह गुजरात के शासक को बंधकामे गया, उसने चित्तौड़ के दुर्ग को घेर लिया। जैसी मुसलमानों की विलेखता ही है, हुमायूँ ने अपने शत्रु, सुलतान बहादुरशाह को कहला भेजा कि जब तक वह, मुस्लिम होने के नाते, चित्तौड़ के हिन्दू दुर्ग का विराव किस् रहेंगा, हुमायूँ उसे किसी प्रकार परेशान नहीं करेगा और न कोई क्षति रहेगा, हुमायूँ उसे किसी प्रकार परेशान नहीं करेगा और न कोई क्षति रहेगा। हुमायूँ का यह कवन पवन दुष्टता का स्पष्ट दर्शक है जो हिन्दुओं को परेशान करने तथा हिन्दू राज्यों को विनष्ट करने के लिए अपनी निजी लक्ष्मता बिसार देते थे।

क्रूर दुष्ट बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया, हिन्दू शौर्य के उस स्थल को लूटा तथा विनष्ट किया, मनमाना धन एकत्र किया और छत्र हुमायूँ पर अपना क्रोध प्रदर्शित किया। मन्दसौर के स्थान पर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। लम्बे युद्ध तथा हुमायूँ के प्रभावशाली घेरे के कारण बहादुरशाह की सेना को भूखों मरने की नौबत आ गयी। वह माण्डवगढ़ (माँडू) की ओर भागा। हुमायूँ ने उसका पीछा कर माण्डवगढ़ का घेरा बाल दिया। बहादुरशाह वहीं से भी भागा। अहमदाबाद जाने समय बहादुरशाह ने पावगढ़ के दुर्ग से धन लूटकर, वहीं वसे हिन्दू नगर चम्पानेर में शरण लगा दी।

बहादुरशाह का पीछा करते-करते हुमायूँ ने अहमदाबाद जीत लिया तथा उस नगर के धनाढ्य हिन्दू व्यापारियों का सब माल लूट लिया। हुमायूँ ने बहादुरशाह को पुनर्तथा समाप्त करने के इरादे से कम्बे तक पीछा किया। बहादुरशाह के डीरे भाग जाने पर हुमायूँ ने उसका पीछा छोड़ चम्पानेर की लूट प्रारम्भ कर दी। पावगढ़ के किले का चार मास तक घेरा करने के पश्चात् हुमायूँ ने उसे हथिया लिया। इतिहासकार फरिश्ता लिखता है, "अनेक दुर्गरक्षक मारे गये और उनकी पत्नियों तथा बच्चों ने प्राणों से कुछकर प्राप्त दिये। जिस स्थान पर बहादुरशाह ने धन गाड़ दिया था, उसे केवल एक व्यक्ति जानता था। उससे रहस्य ले लिया गया।

यह धन जलाशय के तख्ते के नीचे महाराज में पाया गया। समस्त धन सैनिकों में बाँट दिया गया। वस्तुएँ तथा स्वर्णहार सैनिकों को इतना मिला कि उस वर्ष उन्होंने गुजरात में मालगुजारी भी वसूल नहीं की।" इसका अर्थ यह है कि हुमायूँ के लुटेरे हिन्दुओं को लूटकर इतने संतुष्ट हो जाते थे कि बाद में वे उत्सव भी मनाया करते थे।

गुजरात के यवन दरबारियों ने विद्रोह का झण्डा बुलन्द कर दिया क्योंकि हिन्दुओं को मुगल दरबारियों ने इतना लूटा कि गुजराती मुसलमानों के लिए कुछ भी शेष नहीं बचा। हुमायूँ के भाई अस्करी ने इस विद्रोह को दबाने में सफलता प्राप्त की। दो हजार से अधिक विद्रोही मारे गये तथा गुजरात के विभिन्न भाग हुमायूँ के सेवकों में बाँट दिये गये।

हुमायूँ तब आर्थिक लूट के लिए माँडवगढ़ तथा बुरहानपुर तक बढ़ गया। दक्षिण के यवन राजाओं ने हुमायूँ के आक्रमण के भय के कारण उसे चापलूसी से भरे पत्र लिखे। किन्तु हुमायूँ बहुत शीघ्र वापस आ गया क्योंकि शेर खाँ सूर नामक एक तथा जमींदार बहुत बड़ा लुटेरा होता जा रहा था। किन्तु शेर खाँ से निपटने के स्थान पर हुमायूँ अपनी कामाग्नि शान्त करने आगरा रुक गया (१५३५-३६)। ज्यों ही वह आगरा गया गुजरात तथा मालवा में मुगल राज्य की नींव हिला दी गई।

मुहम्मद जमान मिर्जा जो गुजरात में बहादुरशाह की हार से सिन्धु भाग गया था, लाहौर पर चढ़ बैठा। हुमायूँ के आगरा लौटने पर मुहम्मद मिर्जा एक बार पुनः गुजरात भाग गया। पारसियों ने कुछ काल तक कंधार अपने नियंत्रण में रखा पर कामरान ने इसे वापस ले लिया। गुजरात का बहादुरशाह, जिसे पुर्तगालियों ने हुमायूँ से गुजरात लेने में सहायता की थी, पुर्तगाली गवर्नर से सलाह करने दीव जाते हुए समुद्र में डूब गया। उस समय बहादुरशाह केवल तीस वर्ष का था।

शेरशाह उपनाम शेर खाँ ने, जो अफगान जमींदार था, बिहार में पूर्ण सत्ता ग्रहण कर ली तथा बनारस के गंगा के समीपस्थ युनार के दुर्ग को हथिया लिया। हुमायूँ ज्यों ही इस नये शत्रु से निपटने गया, समाचार मिला कि गुजरात का सुलतान बहादुर, जिसने माँडवगढ़ पर अधिकार कर लिया था, हुमायूँ की राजधानी दिल्ली पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था, तथा मोहम्मद मिर्जा, जो बघाना के दुर्ग में बन्दी था, पलायन कर

गया है। हुमायूँ को दक्षिण में गया हुआ जानकर शेरशाह ने बिहार में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी। हुस्नी अफगानों को शेरशाह के रूप में एक सबल नेता मिल गया।

वर्षा के पश्चात् जब हुमायूँ ने शेरशाह के दमन की सोची, उसने (शेरशाह ने) जौनपुर के शासक हिन्दू बेग को, जिसे हुमायूँ ने अपने और शेरशाह के बीच मध्यस्थ बनाया था, बहुत भारी रिश्वत दी। शेरशाह ने सबकाटों से यह भी कहा कि वह तो हुमायूँ का केवल एजेंट तथा आसामी था। इस प्रकार स्वयं को हुमायूँ से अलग कर शेरशाह ने बंगाल में लुटेरे भेज दिए।

यह जानकर कि उसे मूर्ख बनाया गया है, हुमायूँ ने आगामी वर्ष ही बुनार पर आक्रमण कर दिया। पर जब उसने उस दुर्ग को ले लिया, शेरशाह के पुत्र ने बंगाल की राजधानी गौड़ रोहतास दुर्ग नामक एक अन्य महत्वपूर्ण किले पर अधिकार कर लिया। बुनार की विजय के पश्चात् हुमायूँ फिर कामुकता एवं शराब में डूब गया।

जब हुमायूँ बनारस की ओर बढ़ा, शेरशाह ने कहा भेजा कि यदि उसे बंगाल में रहने दिया जाय तो वह बिहार प्रान्त दे देगा। इतना ही नहीं वह हुमायूँ को प्रति वर्ष दस लाख रुपये भी देगा। मूर्ख हुमायूँ लौटने ही वाला था की बंगाल के सुलतान महमूद ने उससे कहा कि शेरशाह बहुत धोखेबाज है तथा उसका किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करना चाहिए। हुमायूँ की सेना ने बंगाल में प्रवेश कर अफगानों को अपने अधीन कर लिया। भूत शेरशाह ने घबोहता का स्वांग भरकर हुमायूँ का अभूतपूर्व स्वागत किया।

"सभी (विभिन्न हिन्दू) महल आभूषणों तथा विभिन्न प्रकार की साज-सज्जाओं, (नग्न) स्त्रियों, मूल्यवान् गलीचों तथा रेशमी साज से सज्जित कर दिये गये।" तथा, कामुकता एवं अप्राकृतिक मैथुन के आनन्द की वस्तुओं की बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध करा दी गयी थी। कामुक हुमायूँ इस जल में डूबने से रोक नहीं पाया तथा "चार महीने तक गौड़ में रहा, जहाँ सिखा विजयदोषभीम ने उसके पास कोई समय नहीं था।" इसी बीच शेरशाह ने ३०० मुगल मार दिये, बनारस नगर पर अधिकार कर लिया, कन्नौज पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी तथा हुमायूँ के घनेक सहायकों के

परिवारों को पकड़कर रोहतास दुर्ग की कोठरियों में जड़ कर रखा।

बनारस जैसे पवित्र हिन्दू तीर्थस्थल की दयनीय दशा की सहज कल्पना की जा सकती है जिसे हुमायूँ तथा शेरशाह जैसे दो राक्षस यवनों के मूर्तिभंजक गुणों ने एक के बाद दो बार इतनी गीघ्र रोव डाला। तथा-कथित अनेक मस्जिदें इन दो यवन आक्रमणकारियों द्वारा परिवर्तित मन्दिर हैं।

जब हुमायूँ दूर बंगाल में मछपान में लिप्त था, शेरशाह ने हुमायूँ के राज्य के पश्चिमी भाग में कूरता का नंगा नाच प्रारम्भ कर दिया था। बनारस के दुर्गरक्षक तलवार के घाट उतार दिये गये, बहराइच मुगलों से रहित कर दिया गया, संभल पर अधिकार करके निवासियों को या तो बन्दी बना लिया गया या इस्लाम में परिवर्तित कर दिया या फिर कत्ल ही कर दिया गया तथा नगर के मन्दिरों को मस्जिदों में परिवर्तित करके प्रष्ट कर दिया गया।

जौनपुर पर भी अधिकार कर लिया गया। प्रत्येक पड़ोसी नगर के मुगल शासक को भगा दिया गया या मार दिया गया तथा आगरा की ओर विशाल वाहिनी भेजी गयी, जिसने मार्ग में आये सभी हिन्दुओं से भारी कर वसूल किया। इस प्रकार धीरे-धीरे सभी हिन्दू अत्यन्त दीन बना दिये गये जबकि प्रत्येक मुस्लिम गुन्हा, इतस्ततः घूमकर, उनके घरों को फूँक देता। उनके स्त्री-बच्चों को पकड़ लेता, सबको कत्ल कर देता, मन्दिरों को मस्जिदों तथा मकबरों में बदल देता, उनकी दुषारु मायों को मारकर खा जाता तथा उनकी सभी बहुमूल्य वस्तुएँ लूट लेता।

हुमायूँ को बंगाल में छोड़कर उसका सबसे छोटा भाई हिन्दाल आगरा आया और अपने को राजा घोषित कर दिया। हुमायूँ के विश्वास-पात्र शेरबहाल को मार डाला गया। कामरान भी लाहौर से प्रत्यक्षतः हुमायूँ की सहायता करने चला पर वस्तुतः वह उसे सिंहासन से ज्युत करना चाहता था। हिन्दाल तथा कामरान की सेनाओं ने दिल्ली का घेरा डाल दिया पर हुमायूँ के स्वामिभक्त शासक ने आत्मसमर्पण नहीं किया। तब दोनों भाई आगरे की ओर बढ़े जहाँ कामरान ने स्वयं को सम्राट् घोषित कर दिया तथा हिन्दाल अलवर (मेवाड़) भाग गया।

सब हुमायूँ को मजबूरन आराम तथा वासनापूर्ण जीवन त्यागकर

अपनी राजधानी खाना पड़ा। मार्ग में बुफाघाट उपनाम जोसा के स्थान पर शेरशाह ने उसका मार्ग प्रवरुद्ध किया हुआ था। जून २६, १५३६ की रात: अफगान सेना ने हुमायूँ के शिविर पर पीछे से आक्रमण किया, खूब शोर किया तथा उसके सैनिकों एवं अनुयायियों में गड़बड़ पैदा कर दी। शत्रु के एक हाथी ने हुमायूँ के पास ही आक्रमण किया। हाथी से छूटे हुए एक बाण ने हुमायूँ की घुंजा को घायल कर दिया। अब हुमायूँ को शत्रु से एक बाण ने हुमायूँ की घुंजा को घायल कर दिया। अब हुमायूँ को शत्रु से घिर जाने का भय था। उसने अपने घंगरलकों को शत्रुओं का सफाया करने को आज्ञा दी परन्तु किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया। हुमायूँ ने एक से एक भागा छौंकर हाथी के पीछे दिया। भागते हुए हाथी ने बढ़ते हुए शत्रुओं के बीच मार्ग बना दिया जिससे हुमायूँ के कुछेक स्वामिभक्त सैनिक उसके समीप हो आ गये। एक ने हुमायूँ के घोड़े को लगाम लेकर उसे वहाँ से दूर कर दिया। हुमायूँ सरपट दौड़ा जा रहा था जबकि अफगान शत्रु बिल्कुल उसके पीछे हो था। उसने अपना घब्र जल की धारा में डाल दिया। बीच धार में घोड़ा रुक गया। जब हुमायूँ स्वयं को जल से ऊपर रखने का प्रयत्न कर रहा था, निजाम नामक एक भिक्ती ने अपनी मशक फुलाकर हुमायूँ की ओर फेंक दी जिसने जीवन-नौका का काम किया। कृतज्ञ हुमायूँ ने अपने रसक से भागते-भागते कहा कि राज्य मिलने पर वह उस निजाम को दो घण्टे के लिए राजा बना देगा। इस भगदड़ में ८,००० मुगल तथा हुमायूँ के पीछे चलने वाले अनेक हिन्दू उस नदी में डूब गये। हुमायूँ का यह पलायन इतना दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि उसका सम्पूर्ण हरम अफगान कामुकता का शिकार हो गया।

निराश्रित हुमायूँ घागरा पहुँचा। उसके अज्ञानक आ जाने से कामरान ने हुमायूँ की अनुपस्थिति में राजा बनने के लिए पञ्चाज्ञाप किया। हिन्दाल ने भी घनवर से आकर यही स्वाग दिलाया। कामरान ने लाहौर वापस जाने के लिए तब तक बना कर दिया जब तक उसे स्वतन्त्र शासक न मान लिया जाय तथा हुमायूँ के कोष से अच्छा-खासा भाग न दे दिया जाय। उसके इस क्रूर हठ से दुःखी हो हुमायूँ ने अपने भाई कामरान को विष दे दिया जिससे वह बहुत बुरी तरह बीमार पड़ गया। इस चाल का सन्देह कर कामरान लाहौर जाने के लिए तैयार हो गया। यद्यपि उसने हुमायूँ की सुरक्षा के लिए सेना का आवांश छोड़ जाने का वचन दिया था पर

उसने केवल २,००० निराश व्यक्ति छोड़े।

शेरशाह की सेना अब हुमायूँ के सम्पूर्ण राज्य में मनमानी कर रही थी। शेरशाह के पुत्र कुतुब खाँ के नियन्त्रण में भेजी गई एक टुकड़ी की अस्करी तथा हिन्दाल की सेना से मुठभेड़ हो गयी जिसमें कुतुब खाँ मारा गया।

इस विजय से फूलकर हुमायूँ ने शेरशाह से दो-दो हाथ करने की ठानी। दोनों सेनाएँ आमने-सामने थीं, जिन्हें गंगा नदी अलग कर रही थी। दोनों ओर की हिन्दू वस्तियाँ इन यवन सेनाओं द्वारा बरबाद हो गयीं। हुमायूँ की सेना परित्याग के कारण क्षीण होती गयी। मुहम्मद सुलतान मिर्जा, जिसने हुमायूँ से अनेक बार भगड़ा शान्त किया था, उसका जनरल था। वह शेरशाह से मिल गया। कामरान की सेना के पिछले भाग ने लाहौर की राह ली। अन्य अनेक टुकड़ियों ने हुमायूँ का परित्याग कर दिया और यह कहकर कि 'चलो घर चलकर आराम करें' चले गये। एक महीना पहले ही गुजर चुका था। यह सोचकर कि यदि उसने और भी देर की तो उसके पास बिल्कुल सेना नहीं रहेगी, हुमायूँ ने नदी पार कर दूसरी ओर शेरशाह के शिविर से कुछ ही दूर डेरा डाल दिया। अब इन दोनों सेनाओं में प्रतिदिन झड़पें हो जाती थीं। हुमायूँ के शिविर और नदी के बीच २७ तुग थे जिनके अपने निजी ध्वज थे किन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपने ध्वजों को नीचे कर लिया कि कहीं ऐसा न हो कि उन पर शेरशाह की कुदृष्टि हो जाय। ये वही आदमी थे जिन्होंने हुमायूँ की अप्राकृतिक मैथुन सम्बन्धी रंगरेलियों में भाग लिया था। यह ठीक ही कहा गया है कि, जो आनन्द में भाग लेने के लिए एकत्र होते हैं, वे मुसीबत के समय भाग जाते हैं।

प्रत्येक मुस्लिम दरबारी के पास बहुत से दास थे। जिस दिन शेरशाह ने आक्रमण किया, हुमायूँ की फौज बिना कुछ प्रतिरोध किए भाग खड़ी हुई। हुमायूँ स्वयं आगरा की ओर भागा पर शेरशाह द्वारा पीछा किया जाने पर उसे लाहौर की ओर जाना पड़ा। शरण की खोज में पंख फड़-फड़ाते हुए जंगली पक्षी की भाँति हुमायूँ लाहौर से भी बाहर लुढ़क दिया गया। कामरान काबुल चला गया और हुमायूँ ने सिन्धु के किनारे-किनारे भक्कर की राह पकड़ी।

जंगल में भगोड़े हुमायूँ के साथ कुछ सैनिक ही थे, जिससे उसे

कही परेशानी हुई। कई दिनों तक उसके साथियों को पानी तक नहीं मिलता था। जिस दिन पानी मिल जाता था, वे इतनी बुरी तरह पीते थे कि कुछ तो बरकर, बर्बाद के कारण बेहोश हो जाते थे। हुमायूँ ने जोधपुर के राजा मालदेव से शरण माँगी। किन्तु यह सोचकर कि हो सकता है उसे मालदेव के हथाने कर दिया जाए, हुमायूँ अच्छे दिनों की भाशा में बिना किसी सन्देह के रेगिस्तान में घूमता रहा। सौभाग्य से अमरकोट के राणा प्रसाद ने उसे अपना प्रतिनिधि बनाया। राणा के पिता लगभग २०० साल दूर थट्टा के बदन शासक द्वारा मार दिये गये थे। उसे आशा थी कि बदन शासक पर धाकधम करेगा। भारत में हुमायूँ की लूटों का बदला लेने के लिए राजा मालदेव के दो हिन्दू मूरवीरों ने हुमायूँ का पीछा किया। वह जोधपुर की सीमा से अमरकोट की ओर भाग गया। तबकात-अकबर की का लंबक निजामुद्दीन इस घटना का वर्णन करते हुए (पृष्ठ २१२, भाग ५, इनपट तथा डाउन) कहता है, "हिन्दू जो गुप्तचर के रूप में उसके पीछे थे, उसके हाथ पड़ गये और उसके सामने लाए गए। उनसे प्रश्न किए गये और धोखा दिया गया कि ठीक तथ्यों का पता लगाने के लिए उनमें से एक को मृत्युदण्ड दिया जाए। दोनों बन्दी छूट गये तथा दो समीप कटे हुए से चाकू तथा कटार लेकर उन्होंने सत्रह पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों की हत्या कर दी तब वहाँ वे पकड़े गये और कत्ल कर दिये गए। सच्चाई का निजी शोध भी मार दिया गया था। उसके पास दूसरा धोड़ा नहीं था।"

जब हुमायूँ मार दिया जाता तो भारत कई शताब्दियों तक मुगलों के विनाशों से बचा रहता। जब हुमायूँ ने फारसियों की सहायता से अपने भाई प्रस्करी से कन्धार छीना उस समय निजामुद्दीन के कथन से ही मुगलों की नैतिकता धीकी जा सकती है। इतिहासकार निजामुद्दीन कहता है, "तब हुमायूँ ने फारसी सेनापतियों को बुलाकर चिनती की कि तीन दिन तक उन अपने-अपने परिवारों को पीछा न दी जाये जो वहाँ थे।" (पृष्ठ २२०, भाग ५, वही) इस कथन से स्पष्ट है कि जब हुमायूँ ने अपनी जानि के परिवारों को पीछे के लिए तीन दिन की प्रार्थना की थी तो भारत में हजार साल से ऊपर हर बदन धाकधम के पश्चात् कितने हिन्दू

परिवारों को भ्रष्ट कर दिया जाता होगा।

यद्यपि हुमायूँ का सारा जीवन ऐसी ही दुष्टताओं से भरा है तथा वह हमेशा नशे में चूर रहता था फिर भी नीच निजामुद्दीन लिखता है (पृष्ठ २४०, भाग ५, वही) "हुमायूँ के दैनिक चरित्र में प्रत्येक मानवीय गुण था। ज्योतिष तथा गणित विद्याओं में तो वह अद्वितीय था।" हमारे इतिहास मशीन की तरह मुस्लिमों की क्रूरताओं का उल्लेख करते हुए जान-बूझकर कही गयी इन्हीं झूठी बातों को दोहराते रहते हैं। कोई इतना तक नहीं सोचता कि हुमायूँ जैसे दुष्ट को एक प्रधर भी सीखने का समय कहाँ मिला था? उसे ऐसे गहन विज्ञान किसने और कहाँ सिखाये? और यदि वह इतना महान् वैज्ञानिक था तो उसकी प्रकृति में ऐसी दुष्टता कैसे बनी रही जो लकड़बगलों, भेड़ियों, चीतों तथा बिलियों को भी शरमा दे?

लगभग एक वर्ष पूर्व रेगिस्तान में अपने भाई हिन्दाल के शिविर में जाते समय ३३ वर्षीय हुमायूँ की कामुक स्त्री, हिन्दाल के हरम में खोजते-खोजते १३ वर्षीया हमीदा बानू पर टिक गयीं। उसका पिता मीर बाबा दोस्त हिन्दाल का धार्मिक मार्गदर्शक था। हुमायूँ की क्रूरता तथा कामुक आदतों के कारण वह बालिका हुमायूँ की अंकशायिनी नहीं होना चाहती थी। उसके पिता की भी इच्छा नहीं थी परन्तु उनके इन्कार का क्या मूल्य? पिता को दो लाख रुपये की रिश्वत दी गयी और बालिका हुमायूँ को सौंप दी गई। एक बेघर घुमकण्ड द्वारा सितम्बर, १५४१ में कामुक भँवर में फँसायी गयी १३ वर्षीया यही बालिका थी जिसने अक्टूबर १५, १५४२ को अकबर को जन्म दिया। इस जोड़े ने अमरकोट के हिन्दू शासक राणा प्रसाद के महल में मधुयामिनी बितायी थी। हिन्दू घर में जन्मा यही अकबर आगे चलकर ऐसा राक्षस बना जिससे हिन्दू लोग भय के कारण दूर भागते थे।

हुमायूँ ने मरुभूमि में तीन वर्ष व्यतीत किये। जब वह कन्धार जाने की सोच रहा था, तब उसका सेनापति बैरम खाँ, जो हुमायूँ की हार के पश्चात् गुजरात में छुपा हुआ था, आकर उससे मिल गया था। फरार पहुँचने पर हुमायूँ को सूचना मिली कि उसके भाई कामरान तथा प्रस्करी थट्टा के शासक शाह हुसैन से हुमायूँ की जान में फँसाकर मारने की बात कर रहे हैं। इस समाचार से भयभीत होकर हुमायूँ ने अकबर

को कन्धार के हरम की कुछ स्त्रियों के हवाले कर फारस की राह बंद की। प्रारम्भ में ईरान के शाह की ओर से सीमास्तान के शासक द्वारा उसका खयाल रखा गया। बाद में हुमायूँ शाह के समीप गया। शाह ने हुमायूँ को १४,००० लुटेरे इस शर्त पर दिए कि हुमायूँ सुन्नी न रहकर इस्लाम के सिवा वर्ग में विश्वास रखेगा तथा हथियाने के बाद कन्धार शाह को दे देगा।

इस सेना को लेकर हुमायूँ वापस लौटा। उसके संगे भाई ही उसके सबसे बड़े शत्रु थे। कामरान काबुल का राजा था, अस्करी कन्धार का। कामरान ने बदरुशा (दक्षिण बंदिद्या) को भी इसके शासक सुलेमान मिर्जा से खीन किया था। इसे बाबर ने नियुक्त किया था।

हुमायूँ की सेना ने गर्मसीर क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। फिर उसने कन्धार का घेरा डाला। लम्बे घेरे के बाद अस्करी ने इसका समर्पण कर दिया पर साथ ही ईरान के शाह से की गई शर्त के अनुसार कन्धार को ईरान को सौंप देना था। मिर्जा अस्करी यद्यपि घर में बन्दी था पर वह किसी प्रकार हुमायूँ के शिविर से भाग गया। उसका पीछा किया गया और वापस लाकर चौकसी के साथ बन्दी बना दिया गया।

चुगताही सेनापतियों ने हुमायूँ को शाह से पुनः कन्धार लेने के लिए उकसाया। कृतघ्न हुमायूँ द्वारा अचानक पीठ में छुरा भोंकने से फारसी आन्ध्र में पड़ गये और बिना किसी प्रतिरोध के सितम्बर, १५४५ में उनके हाथ से कन्धार हुमायूँ के हाथ चला गया। बैरम खान, जिसे बाद में अकबर का संरक्षक बनाया गया, कन्धार का शासक नियुक्त हुआ तथा हुमायूँ अपने विद्रोही तथा हठी भाई कामरान से काबुल छीनने चला। हुमायूँ ने काबुल को घेर लिया। कामरान के सेनापति एक-एक कर हुमायूँ की ओर घाते किए। कामरान ने हुमायूँ से सुलह की बात चलायी। हुमायूँ ने कामरान को इस शर्त पर क्षमा करने का वचन दिया कि वह व्यक्तिगत तौर से क्षमा माँगे। अपने भाई की कुरान की शपथ में भी विश्वास न कर कामरान काबुल के दुर्ग से खिप गया। उसके अधिकांश सेनापति हुमायूँ से जा मिले थे। अक्टूबर १५, १५४५ को जब हुमायूँ ने काबुल पर अधिकार किया, कामरान गजनी भाग गया। यही अकबर का एक बार फिर हुमायूँ से मिलन हुआ।

हुमायूँ ने बदरुशा के मिर्जा सुलेमान का समर्पण चाहा। दुत्कारे जाने पर हुमायूँ ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया। उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर कामरान काबुल और गजनी पर चढ़ बैठा तथा दोनों नगरों पर अधिकार कर लिया। बालक अकबर अब कामरान के अधिकार में था। सुलेमान की हार हुई पर क्योंकि हुमायूँ को कामरान से निपटने वापस जाना था, उसने बदरुशा की गद्दी पर पुनः सुलेमान को बैठा दिया। हुमायूँ की सेना ने घेरा डाल दिया। हुमायूँ की तोपों की मार जिस दीवार पर सर्वाधिक होती थी वहीं कामरान अकबर को बिठा देता था ताकि हुमायूँ आक्रमण करने से विरत हो जाय। हुमायूँ को नई कुमक मिलती ही गई। अन्त में हार मानकर कामरान ने शान्ति की बात चलाई। अब भी हुमायूँ के समक्ष वह नहीं आता चाहता था अतः बदरुशा भाग गया। वहाँ उसने उजबेक लुटेरों को एकत्र करना चाहा पर असफल होने पर वह अग्रेत, १५४७ में हुमायूँ के शिविर में आ गया। एक बार पुनः हुमायूँ ने उसे क्षमा कर दिया तथा शाही सम्मान के साथ उसे खर्च के लिए कोलाब का भूभाग प्रदान कर दिया।

जून, १५४८ में हुमायूँ काबुल से बलख की ओर बढ़ा। अपनी सहायता के लिए उसने तीनों भाई बुलाये। हिन्दाल तो उसके समीप आ गया, अस्करी तथा कामरान ने उसके बुलावे को नामंजूर कर दिया। इससे क्रोधित होकर हुमायूँ ने कामरान की जागीर समाप्त कर दी। कामरान ने सिन्ध के शाह हुसैन सारगुन से सहायता माँगी। इसकी पुत्री कामरान द्वारा रखी हुई हजारों पत्नियों में से एक थी। उसकी सहायता से कामरान ने पुनः काबुल पर चढ़ाई की। इस आक्रमण में नवम्बर १६, १५५१ को हिन्दाल मारा गया। कामरान सलीमशाह सूर से शरण लेने भारत भाग गया। वहाँ दुर्व्यवहार प्राप्त करने के कारण कामरान सियालकोट की पहाड़ियों में भाग गया। इन पहाड़ियों में घूमते हुए वह लोगों को लूटता तथा स्त्रियों का सतीत्व भ्रष्ट करता। हिन्दुओं के गक्खर जाति के गुर-वीरों ने उसे पकड़कर बन्दी के रूप में हुमायूँ के समीप भेज दिया।

कामरान की कृतघ्नता से परेशान हो चुगताही सेनापतियों ने हुमायूँ को कामरान को अन्धा कर देने की सलाह दी। कामरान को भान हो गया कि उसे कोई भयानक दण्ड दिया जाएगा, उसने हरम-सलनाओं का परि-

घात प्रांग हुमायूँ के बन्दीगृह से, यवन स्त्री के वेश में, पलायन करने का प्रयत्न किया। पर एक लम्बू में उसे पहचान लिया गया। टाँग पकड़कर उसे बाहर धसीट लिया गया, जमीन पर ब्रिस्त लिटा दिया गया, एक व्यक्ति उसके घुटने पर बैठठा, दूसरे ने कामरान की दोनों आँखों में छुरी जोड़ दी। इतना ही नहीं, जीवन भर हिन्दू तथा मुस्लिम स्त्रियों एवं बच्चों के साथ दालसौ व्यवहार करने के एवज में उसके चक्षु-गह्वरों में नीबू का रस तथा नमक लगा दिया गया। इस विलक्षण, दयनीय शल्यचिकित्सा के ठीक पश्चात् कामरान को घोड़े पर बिठाकर उसके रक्षक के साथ बाहर कर दिया गया। चार वर्ष पश्चात् अक्टूबर ५, १५५७ को अन्धा कामरान बिना किसी आशय के मक्का में मर गया। यवन इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है जहाँ हर यवन गुण्डे तथा देशद्रोही ने कुरान की झूठी समझ खापी है तथा मक्का को अपनी अन्तिम शरण स्थली माना है। हर यवन पाखण्डी तथा कपटी व्यक्ति ने, धन एवं लड़कियों की इच्छा पूरी न होने पर, मक्का जाने की धमकी दी। फिर भी, अपना दोषपूर्ण जीवन व्यतीत करके वह तब तक यहाँ बना रहा जब तक उसका अंगभंग करके देश से बाहर न कर दिया गया अथवा मारकर इस्लामी नरक में न भेज दिया गया।

अब हुमायूँ को भारत से सुलमाचार सुनाई पड़ने लगे। १५४५ में शेरशाह की मृत्यु हो ही गई थी। शेरशाह का उत्तराधिकारी सलीमशाह भी अल्ताह को प्यारा हो गया था। अफगान सरदार सब बिखरे हुए थे। अब अपने की सबल मान नवम्बर, १५४४ में हुमायूँ भारत के लिए रवाना हुआ। अफगान से बिना कोई प्रतिरोध पाये फरवरी २४, १५५५ को हुमायूँ ने लाहौर में प्रवेश किया। हुमायूँ की सेना अब विभिन्न दिशाओं में बिखर गयी। अफगानों में साहस अब बिल्कुल नहीं था। दीयालपुर में कुछ अफगानों ने अवश्य सामना किया पर हार कर मुगलों की वासना-शान्ति के लिए अपनी स्त्रियों एवं बच्चों को भी दे बैठे।

अन्य भयंकर युद्ध माछीवाड़ा में लड़ा गया। समीपस्थ हिन्दू गाँवों में प्राण लया दी गई और इस अभूतपूर्व प्रकाश में यवन राक्षस एक-दूसरे के प्राण लेने लगे तथा हरम के पीछे एक-दूसरे की रोती-बिलखती स्त्रियों को जोचने लगे।

दिल्ली का शासक सिकन्दर अफगान अपनी सेना लेकर हुमायूँ की प्रगति रोकने को रवाना हुआ। उसने सरहिन्द में अपना डेरा डाला। विरोधी सेनाएँ कई दिनों तक लड़ती-भिड़ती रहीं। अन्तिम युद्ध में अफगान हार गये और उनका नेता सिकन्दर भाग गया। अब हुमायूँ के लिए दिल्ली तथा आगरे का मार्ग साफ हो गया। दिल्ली पर अधिकार करने के लिए सिकन्दर खाँ उजबेक के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी पहले ही भेज दी गई। हुमायूँ ने स्वयं जुलाई २३, १५५५ को दिल्ली में प्रवेश किया तथा एक बार फिर भारत की राजधानी में दूसरे यवन लुटेरे के नाम पर शाही फरमान पड़ा गया। जोरदार उत्सव मनाया गया। सभी यवन समूह ने अब मनमानी लूट तथा बेगोटोक वासना से अपने को तृप्त किया। हुमायूँ ने उस महल पर अधिकार कर लिया जो आज-गलती से तथा बेसोचे-समझे उसका मकबरा कहा जाता है। यह महल दिल्ली के उन अनेक भवनों का एक भाग था जिनके एक ओर पुराना किला तथा दूसरी ओर अब्दुल रहीम खानखाना का मकबरा था। पुराने किले से उस हिन्दू महल तक, जिसे हुमायूँ ने जीवित अवस्था में अपने अधिकार में कर लिया था और अब भी जहाँ उसकी कब्र है, सीधी तीन फलाँग की दूरी थी। यह इमारत पुराने किले से भूगर्भ-मार्ग से उस स्थान के पीछे से जुड़ी हुई थी जहाँ आज दिल्ली पब्लिक स्कूल है।

जनवरी २१, १५५६ को सूर्यास्त की बेला में हुमायूँ हिन्दुओं की एक प्राचीन इमारत की ऊपरी मंजिल पर था (दुष्ट शेरशाह ने इसे एक समय हड़प लिया था अतः इसे गलती से शेर मंडल कहा जाता है)। ४७ वर्षीय मदिरा मत्त हुमायूँ के कदम लड़खड़ाये और वह एक सीढ़ी से सिर के बल बड़ाम नीचे आ गिरा। अचेतावस्था में तीन फलाँग दूर उसे अपने घर ले जाया गया। जनवरी २१, १५५६ को यह कामुक दुष्ट, जिसने अपने अन्धम भाइयों तथा हत्यारे पिता के साथ हिन्दुस्तान को अपवित्र किया, लूटा तथा नष्ट किया, एक हिन्दू भवन में मर गया, जिसे उसने अपने निवास के लिए चुना था। हिन्दू शक्ति चक्र (गुम्फित त्रिभुजों का चिह्न जो भवानी माँ के भवनों में बड़ा प्रचलित है), जिसके ठीक बीचोंबीच उठा हुआ पाषाण-पुष्प होता है, आज भी तथाकथित हुमायूँ के मकबरे तथा पास ही स्थित तथा-कथित खानखाना के मकबरे के बाहरी भाग पर देखे जा सकते हैं।

हुमायूँ की लाश नीचे के केन्द्रीय कक्ष में लायी जाकर एक गड्ढे में बस यूँ ही डाल दी गयी। धरतल से कुछ ही इंच उठा हुआ मिट्टी का टीला इस मुस्लिम ज्ञानिम का अन्तिम स्थल है। इस हिन्दू महल की चक्करदार दीवारों के नीचे की मंजिल में घूमने वालों के पैर हुमायूँ के ऊपर पड़ते थे, अतः नीचे की मंजिल में घूमने वालों के पैर हुमायूँ के ऊपर पड़ते थे, अतः मकबरे के पास का हिस्सा एक दीवार खड़ी करके सदा के लिए बन्द कर दिया गया है। वास्तविक ऐतिहासिक शोध के लिए इस दीवार को गिरा देना चाहिए तथा इस हिन्दू महल के नीचे की मंजिल तक जनता की पहुँच होनी चाहिए।

हुमायूँ के मकबरे के नाम से विख्यात इस विशाल भवन के विषय में मृतपूर्व चिन्तन किस प्रकार समाप्त हो जाता है यह भारत सरकार के एक प्रकाशन (५० ३०५, मान्युमेण्ट्स एण्ड म्यूजियम्स, आर्थोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, १९६४) से स्पष्ट है : हुमायूँ "१५५६ में मरा तथा उसकी विधवा हमीदा बानू बेगम, उरनाम हाजी बेगम, ने उसका मकबरा उसकी मृत्यु के चौदह वर्ष पश्चात् १५६६ में बनवाना प्रारम्भ किया। फारसी भवन-निर्माताओं द्वारा प्रेरित मुगल ढंग का यह प्रथम उदाहरण है। निस्सन्देह हुमायूँ ने अपने निर्वासित काल में फारसी भवन-निर्माण कला के सिद्धान्त सीखे और यद्यपि कोई लेखा नहीं, पर लगता है उसी ने मकबरे की योजना बनायी। फारस के मीरक मिर्जा गियाथ को इस मकबरे के निर्माण के लिए हाजी बेगम ने नियुक्त किया था।"

उक्त गद्यांश के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इसमें विचारों का कितना गड़बड़ घोटाला है। प्रथम तो यही कि इस इमारत की शैली न मुगल है न फारसी। रेखांकन में तथाकथित हुमायूँ का मकबरा ताजमहल जैसा है। अतः हुमायूँ का मकबरा कहा जाने वाला अष्टकोणीय भवन भी हिन्दू इमारत है। विख्यात अंग्रेज भवन-निर्माता ई० बी० हवेल भी इस बात पर जोर देते हैं। दूसरे, पूछा जा सकता है कि हुमायूँ का मकबरा १६ वर्ष बाद क्यों बनना प्रारम्भ हुआ। इस बीच उसकी लाश का क्या हुआ? तीसरे, हुमायूँ ने अपने ही मकबरे की योजना क्यों और कैसे बनायी? अपनी इस प्राकृतिक मृत्यु से पूर्व वह दिल्ली में मुश्किल से छह महीने रहा होगा। चौथे, उस रेगिस्तान में हुमायूँ को कहाँ से फारसी मृत्-निर्माण कला के अध्ययन का अवसर मिला गया, जहाँ उसे खाना-पीना,

तक तो नसीब नहीं होता था और जब वह अपने दिन इकैती और चोरी द्वारा काट रहा था? उदाहरणार्थ, अकबर के जन्म के पश्चात् उसने जोहर नामक अपने भृत्य से कहा कि वह लूटे हुए २०० सिक्कों तथा रजत आभूषणों को उनके मालिकों को लौटा दे ताकि इस चोरी के कारण अल्लाह नवजात शिशु को शाप न दे दे। यदि उसकी पत्नी ने इस मकबरे का निर्माण किया तो इसके नक्शे, बिल तथा रसीदे कहाँ हैं? स्पष्ट है कि मीरक मिर्जा गियाथ मात्र कब्र खोदने वाला था, जिसे हुमायूँ को दफनाने का काम सौंपा गया था।

इस समाधि पर जाने वाले दर्शकों को इस धोखे से मूर्ख न बन जाना चाहिए कि मृतक हुमायूँ पर बहुत विशाल इमारत बनायी गयी थी। डोल पीट-पीटकर जो कहा जाता है कि हुमायूँ का मकबरा बनाया गया, इसका अर्थ केवल इतना ही है कि उसके लिए मध्य कक्ष की निचली मंजिल में उसकी कब्र पर एक टीला बना दिया गया। प्रवर्चित दर्शक जल्दी में उतने ही अनजान 'गाइड' से नहीं पूछ पाता कि यदि वह हुमायूँ का मकबरा है तो उसका महल कहाँ है? क्या यह बात तर्कसंगत है कि हुमायूँ की लाश के लिए एक महल बनाया गया जिसके चारों ओर खाई, विशाल तिहरी दीवारें, संलग्न भवन तथा बीसियों कमरे थे जबकि हजारों स्त्रियों तथा लड़कों के साथ अपनी अप्राकृतिक मैथुनयुक्त तथा कामुक जीवन बिताने के लिए उसे कहीं एक इंच भूमि तक न मिली? यह रहस्य यहीं समाप्त नहीं हो जाता। ब्रिक्स द्वारा अनूदित फरिश्ता के इतिहास के दूसरे खण्ड के पृष्ठ १७१ पर लिखा गया है, "राजकुमार मुराद (अकबर का पुत्र) जो पहले शाहपुर में दफनाया गया, बाद में आगरा ले जाकर अपने बाबा हुमायूँ के समीप दफनाया गया।" तब दिल्ली में हुमायूँ के मकबरे के नाम से विख्यात इमारत भी क्या मुस्लिम इतिहास के धोखे का अन्य उदाहरण नहीं है?

शेरशाह

भारत के कॉलेज तथा हाई स्कूल छात्रों से यह आशा की जाती है कि वे इतिहास की परीक्षाओं में शेरशाह द्वारा किये गये अनेक सुधारों तथा जनता की भलाई के लिए किये गये कृत्यों का लेखा-जोखा दें—उस शेरशाह का, जिसने प्रारम्भ में डाकुओं के समूह का शिष्यत्व ग्रहण किया और जो बाद में स्वयं पूर्ण लुटेरा बनकर हुमायूँ को हिन्दुस्तान से बाहर खदेड़ने तथा जहाँ-वहाँ गया भय तथा आतंक फैलाने में, सफल रहा।

यदि इस तथ्य को महसूस कर लिया जाय कि इस दुष्ट शेरशाह ने जीवनपर्यन्त क्या किया तथा उन छलियों द्वारा, जो अपने को इतिहासकार कहते हैं, उसकी कौी गयी प्रशंसा निरा धोखा है तो इतिहास के सम्पादक उसकी प्रशंसा के पुल बाँधना छोड़ देंगे। वे देखेंगे कि उसने हिन्दुस्तान पर कितने भयानक धाव किये।

दो मुस्लिम इतिहासकार बाकयात-ए-मुश्वकी (पांडु० पृ० १०३) तथा तारीख-ए-दाउदी (पांडु० पृ० २५३) लिखते हैं कि एक बार सारंगपुर तथा उज्जैन के बीच की यात्रा में शेरशाह ने अपने साथ चलते हुए मल्लू खाँ को अपने जीवन की प्रारम्भिक घटनाएँ सुनायी थीं। उसने बताया कि उसने अपनी बचानी में कितना श्रम किया था, किस प्रकार धनुष-बाण लेकर वह पन्द्रह कोस तक शिकार करने चला जाता था। ऐसे ही एक बार वह चौरों तथा लुटेरों के चक्कर में पड़कर उन्हीं के साथ हो लिया और चारों ओर लूटता रहा।

डाकुओं के साथ इस प्रारम्भिक प्रशिक्षण ने उन सात वर्षों तक (१५३८-४१) शेरशाह को घनमानी लूट तथा बलात्कार के योग्य बना दिया जिन वर्षों में उसने मुगल दुराचारी हुमायूँ को बाहर खदेड़ उत्तर भारत पर

शासन किया।

शेरशाह का वास्तविक नाम फरीद था। उसका पिता हसन खाँ नैतिक संयम में तनिक भी विश्वास नहीं रखता था अतः उसके पास इस्लामी रीति द्वारा अनुमोदित चार प्रत्यक्ष पत्नियाँ तथा मुस्लिम परम्परा द्वारा स्वीकृत अनगिनत रखैलें थीं। उसकी सन्तति का तो छोर ही नहीं था। उसकी चार पत्नियों से उत्पन्न आठ पुत्रों के इतिहासानुमोदित नाम मिलते हैं : एक से फरीद खाँ तथा निजाम खाँ, दूसरी से अली और यूसुफ, तीसरी से खुर्रम तथा शादी खाँ तथा चौथी से मुलेमान और अहमद पैदा हुए। शायद और भी अनेक थे पर इतिहासकार मुख्य शरारतियों की ही चर्चा करते हैं क्योंकि उन चार में से प्रत्येक पत्नी से दो और केवल दो पुत्र ही होना एक मुस्लिम तक के लिए आश्चर्यजनक करतब था।

शेरशाह के अपराधपूर्ण जीवन का कारण उसके पूर्ववंश एवं कुल में व्याप्त नितान्त अव्यवस्था तथा कामवासना में खोजा जा सकता है। 'तारीख-ए-शेरशाही' का लेखक अब्बास खाँ लिखता है, "हसन खाँ फरीद तथा निजाम की माँ से न प्यार करता था, न उनकी चिन्ता; उसे तो अपनी दास कन्याओं में अभिरुचि थी।" अनेक बार हसन (पिता) तथा फरीद (उपनाम शेरशाह, पुत्र) के बीच तू-तू मैं-मैं हो जाती।" (पृ० ३१०, भाग V, इलियट एण्ड डाउसन)।

अपने पिता हसन से प्राप्त स्वल्प धन से फरीद को सन्तोष न था। स्पष्ट है कि फरीद ने सबसे पहले अपने घर में ही अपने पिता एवं भाइयों के विरुद्ध मोर्चा जमाया। इसकी तो आशा ही नहीं की जा सकती कि फरीद औरों को बख्श दे। उसने बिहार की परिवार-सम्पदा पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करने की माँग की।

अपने पिता से तंग आकर फरीद खाँ जौनपुर के विदेशी यवन डाकू तथा सरदार के पास गया। वहाँ उसे इस्लामी स्वर्ग प्राप्त करने का एक ही प्रशिक्षण दिया जाता था—हिन्दू मूर्तियों को तोड़ना, मन्दिरों को मस्जिद में परिवर्तित करना, हिन्दू सम्पत्ति लूटना, हिन्दू ललनाओं को भगाना, बच्चों का अपहरण करना, कुरतापूर्वक लोगों का धर्म-परिवर्तन करना।

फरीद की इस बढ़ती गुण्डागर्दी की सूचना उसके पिता को प्राप्त हुई।

नहीं दी गयी क्योंकि वह बुजुर्ग का और समूचे परिवार का शत्रु था। उसके सौतेले भाइयों ने समस्त सम्पदा पर अधिकार कर लिया। शेरशाह का तो अकिसम दिन-रहाड़े इकंती तथा लूट-खसोट में हुमा था, अतः वह चुप नहीं बैठा। कुछ लुटेरों को साथ लेकर उसने बिहार में अपने पिता की सम्पदा पर झपट्टा मारा किन्तु दूसरे यवन लुटेरे द्वारा उसे मुंह की खानी पड़ी; उसका नाम मुहम्मद खाँ था जो शेरशाह के सौतेले भाइयों का मित्र था।

प्रत्येक मुसलमान लुटेरा दूसरे का शत्रु था। ऐसे ही मुहम्मद खाँ और बिहार खाँ थे। शेरशाह बहुत बड़ा दुष्ट था। वह जानता था कि एक-दूसरे को कैसे धिड़ाया जाता है। अतः उसने बिहार खाँ से सुलह कर ली। पानीपत के युद्ध में बाबर द्वारा इब्राहीम लोदी के कत्ल किए जाने के बाद बिहार खाँ ने अपने को बिहार का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। एक बार बिहार खाँ के साथ शिकार खेलते समय कहा जाता है कि उसने एक केर को मार गिराया था, तभी से फरीद शेर खाँ कहा जाने लगा और उसके इस हत्यारे नाम के अनुरूप ही इतिहास में नरभक्षण तथा नारी अपहरण उसका कार्य रहा।

बिहार खाँ ने जब अपना नाम सुलतान मुहम्मद रख लिया और दुष्ट शेरशाह को नीचा दिखाने के लिए अपने पुत्र जलाल खाँ को नायब नियुक्त किया। वह जानकर शेरशाह ने अपना यह नया छोड़दा छोड़कर अपने दोनों परगनों की राह पकड़ी। वह बड़ा बनने के फिराक में था लेकिन भाग्य ने उसे उन दोनों परगनों में भी नहीं घुसने दिया जिन्हें उसके पूर्वजों ने हिन्दुओं को मारकर तथा कत्ल करके हड़प लिया था।

शेरशाह को जब उसके मित्रों ने सलाह दी कि उसे अपने ही भाइयों की लूट-खसोट करना उचित नहीं है तो उसने एक डाकू के समान ही उत्तर दिया भारत रोह से भिन्न है। मुसलमान इसे बिना "बड़े, छोटे या वंश के" ध्यान के लूट सकते हैं। (पृष्ठ ३२७, भाग IV)।

शेरशाह का यह दुर्क इरादा जानकर कि वह अपने भाइयों की तमाम जाम्नाद तथा हरम छीन लेगा उसके भाइयों को इस डाकू को दण्ड देने के प्रतिनिधता कोई बारा ही नहीं रहा। जब वह सहसराम में था, शेरशाह की सेना को बाराणसी के समीप मुंह की खानी पड़ी।

पड़मन्वी शेरशाह ने अब आगरा में सुलतान जुनेद नामक एक दरबारी की सहायता लेकर अपने भाइयों पर आक्रमण कर दिया। उसने अपने पुराने दो परगनों पर ही अधिकार नहीं कर लिया बल्कि नीच तथा उन अनेक परगनों पर भी अधिकार कर लिया जो बादशाह के थे। मदा की भाँति उसने हिन्दुओं को बाहर निकाल दिया तथा विजित भू-खण्डों में अपने विदेशी अफगान सेवकों को बसा दिया। शेरशाह की सफलता ने समूचे भारत में बिखरे हुए विदेशी अफगानों को उसके ही झण्डे तले लाकर डाकुओं के रूप में संगठित किया। अब उसने सुलतान जुनेद को उधार ली हुई सेनाओं को यह कहकर वापिस कर दिया कि वह हिन्दुओं की स्त्रियों तथा धन की लूट कर सकते हैं। जुनेद की सहायता से शेरशाह ने यह जानने के लिए आगरे में बाबर की सेवा की कि मुगल लुटेरे हिन्दुस्तान को किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करते हैं। बाबर को यह समझते देर न लगी कि शेरशाह की चालें सन्देह से भरी हुई हैं तथा उसके कार्य अपराधपूर्ण हैं। बाबर ने शेरशाह को गिरफ्तारी के आदेश दे दिये, किन्तु उसे पहले में ही पता लग गया था अतः वह बिहार भाग गया। ठीक इसी समय बिहार का सुलतान मुहम्मद मर गया। शेरशाह ने अपनी हिन्दू पत्नी को धमकाया कि वह अपने छोटे पुत्र जलाल खाँ को रेजेण्ट स्वीकार कर ले। अब उसने लोहनी मुसलमानों से सुलह कर ली और बंगाल के मुस्लिम शासक पर आक्रमण कर दिया। शेरशाह की विजय हुई। "धन, घोड़े, हाथी इत्यादि, जो उसके हाथ लगे शेरशाह ने लोहनियों को कुछ नहीं दिया और इस प्रकार वह बहुत धनवान हो गया।" (पृष्ठ ३३३, भाग IV) इससे स्पष्ट है कि वह कठोरता तथा प्रवंचना, क्रूरता तथा डाकूपन का मिश्रण था और फिर भी इस कमीने, पाशाविक पाजी शेरशाह को भारतीय इतिहास में सिंह का रूप दे दिया गया है। शेरशाह के लोभ, कामुकता तथा विश्वासघात ने उसके प्रति इतनी घृणा जागृत कर दी थी कि एक बार शेरशाह जब स्वर्गीय सुलतान की हरम की निस्सहाय स्त्रियों को भ्रष्ट करने जा रहा था तो लोहनियों ने उसे मार डालने की योजना बनायी। किन्तु शेरशाह को न जाने कैसे समय पर सूचना मिल गयी और उसने यवन सूचकों को बिहार की हिन्दू भूमि प्रदान कर दी।

शेरशाह ने स्वयं जलाल खाँ को दी गयी एक रिपोर्ट में विदेशी मुसल-

मानों की परम्परागत कुरता तथा पात-प्रतिपात को अनुमोदित किया है। वह लिखता है, "तुम जानते हो कि लोहानी लोग सूरों से अधिक बलवान तथा शक्तिशाली हैं और अफगानों की यह नीति है कि यदि कोई भी व्यक्ति दूसरे से बार भाई अधिक रखता है तो उसे अपने पड़ोसी का अपमान करने तथा जान से मारने में तनिक भी नहीं सोचना पड़ता।" (पृष्ठ ३३५, भाग IV)।

बृहत् जलाल खाँ स्वयं एक लोहानी होने के नाते इस दुष्ट शेरशाह का कल्प करना चाहता था। अपने को शेरशाह की शक्ति के समान न पाकर जलाल खाँ ने बंगाल के मुस्लिम बादशाह से संधि कर ली। इससे शेरशाह तथा बंगाल और बिहार की मुस्लिम सेनाएँ आमने-सामने आ गयीं। शेरशाह को घेरने वाली बंगाल की सेना तथा रक्षक शेरशाह के बीच बहुत दिनों तक संघर्ष होता रहा किन्तु बंगाली मुसलमानों की हार हुई और शेरशाह बिहार का मालिक बन गया। जलाल खाँ की सम्पत्ति तथा स्त्रियाँ उसके अधिकार में आ गये।

ठीक इसी समय चुनार दुर्ग के मुस्लिम सेनापति तेज खाँ तथा अनेक अपहृत स्त्रियों द्वारा उत्पन्न इसके पुत्रों में मतमुटाव हो गया। तेज खाँ अपने पुत्रों द्वारा ही मारा गया। उनमें से कुछ ने शेरशाह का अनुमोदन चाहा। उन्होंने डाकू शेरशाह तथा उसके ४०,००० चोरों को घुस आने दिया। एक बार प्रवेश पा जाने पर शेरशाह ने तेज खाँ की पटरानी लाड़ ललका तथा अपनी की खींचकर अपने हरम में डाल लिया, समूची सम्पत्ति जप्त कर ली तथा दुर्ग का मालिक बन बैठा। एक और गद्दार कुसैन नामक दुलियारी बिचका दी, जिसका पति नासिर खाँ मर चुका था। शेर खाँ ने उसके महल पर आक्रमण किया तथा उसे अपने हरम में डालकर उसके पति के हिन्दू घरों से जिस ६० मन मोने को लूटा था, उस पर अधिकार कर लिया।

उत्तर गिरगदर लोदी का पुत्र मुहम्मद, जो मुस्लिम गुण्डों को साथ ले देशी की ओर घूम रहा था, १५२७ ई० में बिहार में घुसा। बिना किसी प्रतिरोध के शेरशाह ने समर्पण कर दिया। शेरशाह को यह आदेश देकर कि वह उसके मित्र मुहम्मद जौनपुर की ओर चला। शेरशाह ने अनपेक्षित उत्तर दिया। मुहम्मद जब घूम पड़ा और उसने डाकू शेरशाह

के छिपने की जगह, सहसराम, की ओर कूच किया। अब उसके पास अपनी सेना समेत मुहम्मद का साथ देने के सिवाय कोई विकल्प ही नहीं रहा। सम्मिलित सेना ने जौनपुर पर घावा बोला। मुगल दुर्गरक्षक भाग खड़े हुए। तब तक भारत के द्वितीय मुगल शासक के रूप में हुमायूँ बाबर का उत्तराधिकारी बन चुका था। वह अपनी सेना लेकर आक्रामकों का मुकाबला करने चला। लखनऊ के समीप हुए युद्ध में शेरशाह घोंके से युद्ध विरत हो गया ताकि हुमायूँ तथा मुहम्मद की सेनाएँ आपस में नड़कर समाप्त हो लें। मुहम्मद की हार हुई। उसने अपने शेष समय का बहुलांश पटना में विषय-वासना की तृप्ति में तथा डाकू शेरशाह के विश्वासघात पर विचार करते हुए बिताया।

हुमायूँ ने शेरशाह के किले चुनार का घेरा डाला। शेरशाह ने लम्बी बातचीत चलाकर समय प्राप्त करने के लिए युद्ध रोके रखा। इसी बीच अनुशासनहीन शत्रुओं के यवन गुण्डों द्वारा हुमायूँ की अपनी राजधानी, दिल्ली खतरे में पड़ गयी। ज्योंही हुमायूँ लौटा, अपने सभी शत्रुओं की हत्या करते हुए शेरशाह ने बिहार पर घावा बोला। उसकी घोषणा थी कि वह शेरशाह के व्यक्तिगत मुहम्मद तथा धर्मोन्मादी इस्लामिक उत्साह के साथ हिन्दू सम्पत्ति लूटने के लिए "सपाही बनने से इनकार करने वाले प्रत्येक अफगान को जान से मार देगा।"

शेरशाह ने फतह मलिका नामक एक अन्य निस्सहाय यवन विधवा को भी अपने हरम में डाल लिया तथा उस "तीन सौ मन चमचमाते स्वर्ण" को भी हथिया लिया, जिसे उसके लुटेरे पिता तथा पति ने हिन्दू घरों से लूटा था।

मालवा सुलतान तथा अन्य विद्रोहियों के खतारों को दूर कर हुमायूँ शेरशाह को परास्त करने चला। चुनार दुर्ग का घेरा फिर डाला गया। हुमायूँ से सीधा संघर्ष का साहस न कर शेरशाह ने अपना पुराना विश्वासघात प्रयुक्त किया तथा सौदेबाजी में एक हिन्दू राज्य को विनष्ट कर दिया। पास ही एक हिन्दू सरदार का रोहतास नामक दुर्ग था। शेरशाह ने सर्व-प्रथम अपनी अगणित पत्नियों, रखैलों तथा बच्चों के लिए उससे शरण माँगी। भावुक हिन्दू मूख बन गये और प्रवंचित हिन्दू बजीर ने उन्हें शरण दे दी। उनके साथ उनके बच्चे आये, फिर लौकर आये और बाद में

राजा हरिकृष्णराय अपने मन्त्री से चतुर था। उसने शेरशाह की आज्ञा मान ली थी किन्तु मन्त्री अपने 'वचन' को मान रखने के लिए दस्ता बकाह गया। तारोख-ए-खान-जहान सोदी में वर्णन है कि किस प्रकार अपने सभी यवन पूर्वजों की भाँति कृतघ्न शेरशाह ने हिन्दू आतिथ्य का दुष्प्रयोग किया। उसने यवन स्त्रियों को बिठाकर कुछ पालकियाँ भेजीं। हिन्दू राजाओं ने उन्हें देखा-भाला और जाने की आज्ञा दे दी। फिर मक्कार मेरवाह से कहा कि उसे यह बख्शा नहीं लगता कि उसकी सभी स्त्रियों को हमारा देखा-भाला, अतः जो पालकियों को बिना जाँच किए ही घुसने दिया जाय। उनके पन्धर सफ़गान अफ़गान विश्वासघाती थे। जब सभी पालकियाँ पन्धर पहुँच गईं, कुर्तुबारी अफ़गान सैनिकों ने चुपके से रात में तिकनकर हिन्दू द्वार-रक्षक को यज्ञ में करके समीप ही तैयार खड़ी शेरशाह की सेना के लिए द्वार खोल दिया। विश्वासघाती यवन सेना ने हिन्दू सेना काट डाली, समस्त हिन्दू लजनाथों तथा सम्पत्ति को हथिया लिया। अब जीतार के सभी मन्दिर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिये। इसी बीच कुमार प्रमल मल्लिकार्जुन...

दूसरी बीज बच्चा पुनः प्रसन्न होकर हमारे हाथ से चला गया। जब

हुमायूँ के लिए विनाशकारी निर्णायक युद्ध १५३८ ई० के भूसा (चौसा) तथा बक्सर के बीच शातप गाँव में हुआ। दोनों ही शिविर गंगा के एक ही ओर थे। उन्हें विलग करने वाला एक जल स्रोत मात्र था। शेरशाह के आक्रमण के समक्ष मुगल न टिक सके। हुमायूँ सकेला ही आगरे की ओर भागा तथा उसका सम्पूर्ण हरम शेरशाह के हाथ लग गया। अफगानों के हाथ जो हरम लगा उसमें से अपनी वासना शान्ति के लिए स्त्रियों को अवश्य लिया। इस भय से कि कहीं उसके सैनिक उन ४,००० स्त्रियों के साथ बलात्कार में ही समाप्त न हो जाएँ, शेरशाह ने आज्ञा दी कि रात होने तक बन्दी स्त्रियों को शेरशाह के शिविर को लौटा दिया जाय।

इस विजय के पश्चात्, उस डाकू तथा स्त्रियों को छुष्ट करने वाले से जिसे बेर खाँ उपनाम दिया गया था, अपने को बादशाह शेरशाह घोषित कर दिया। एक सप्ताह तक मनाये जाने वाले उत्सव का अर्थ सभी मुसलमानों द्वारा लूटपाट, मशपान तथा भोग-विनाश था।

इसके पश्चात् तो कार्य उत्पन्न गये। शेरशाह हुमायूँ का पीछा करने लगा। शेरशाह ने अपनी सैनिक टुकड़ियाँ हुमायूँ के शेष सैनिकों पर अधिकार करने भेजी। इन दिनों उज्जैन, मांडू तथा सारंगपुर भल्लू खाँ उपनाम का शेरशाह के नियंत्रण में थे। रायसेन तथा चंदेरी पर पूरनमल का अधिकार था। महेश्वर भोपाल का राजा था।

कुत्त की धत्ता करने के स्थान पर शेरशाह ने दिल्ली तथा आगरे को उखाड़ देने का आदेश दिया (पृ० ३७८, भाग VI)। उसने आज्ञा दी कि खानखानाह को, जिसे बन्दी बनाने के समय से ही प्रतिदिन आधे सेर बिना जिंसे जौ पर मुँगर में रखा गया था, कत्ल कर दिया जाय। लूटमार करने के लिए शेरशाह ने अपने पुत्र कुतुब खाँ को भेजा। पर चौधा नामक स्थान पर मुगल सेना ने कुतुब खाँ की हत्या कर दी।

महान् हिन्दू सरदार महारथी, जिसने बिहार में मुस्लिम लूट-खसोट, जंगल तथा विनाश के होते हुए भी हिन्दू देशभक्ति के ध्वज को ऊँचा रखा, उन लोगों पर लगातार आक्रमण करता रहा, जिसे शेरशाह ने हिन्दुओं से हरा लिया था। इससे शेरशाह का जीवन दुःख हो गया था। अन्त में, महारथी हिन्दुत्व की रक्षा करते हुए खवास खाँ (शेरशाह का नायब) से युद्ध करते हुए स्वर्गवासी हुए।

निहायन अधिकार में रखने के अपने अन्तिम प्रयत्न में हुमायूँ ने कन्नौज के पड़ोस में अपनी सेना भेजी। शेरशाह ने समीप ही शिविर डाल दिया और अपने आवा करने वाले सैनिकों को मुगल सेना के लिए जाने वाली रण्ड पकड़ लेने के लिए लगा दिया। १५४० ई० में होने वाले इस युद्ध में हुमायूँ पुनः पराजित हो आगरे की ओर भाग गया। वहाँ भी शेरशाह की सेना के आ पहुँचने पर वह लाहौर की ओर चला गया। शेरशाह हुमायूँ को पकड़कर उसके प्राण लेना चाहता था, अतः उसने अपने सैनिकों को हुमायूँ को बन्दी बनाने में असफल रहने पर बहुत डाँटा। हर स्थान पर पीछा किए जाने पर हुमायूँ अन्त में हिन्दुस्तान से बाहर चला गया।

सिन्ध के मरहटल में होकर भागने पर उसे बहुत कठिनाइयाँ भेलनी पड़ी। अब शेरशाह ने हिन्दुस्तान के सिंहासन पर उसके स्थान पर महान् लुटेरे के रूप में अधिकार कर लिया तथा जिन भूखण्डों को जीता था वहाँ से हिन्दुओं को निष्कासित कर यवनों को बसाने लगा।

शेरशाह की सेनाएँ अब रामगंगा के तट पर बसे सम्भल के पूर्व में स्थित एक छोटे से नगर कलमोर, गंगा-सिन्धु के मैदान, मालवा, उज्जैन तथा ग्वालियर के निवासियों को पीड़ित करने लगी। शेरशाह ने इन समस्त भूखण्डों को अपने भूत्यों में बाँट दिया था। "रोह से आने वाले अपने अनेक खानदानियों को उसने उनकी आशा से कहीं अधिक धन दिया।"

मुस्लिम इतिहासकारों ने अपने इतिहास ग्रंथों में जो बातें गढ़ी हैं उनका एक जबलन्त उदाहरण तारीख-ए-शेरशाही में अख्वास खाँ की यह घोषणा है कि "रोहतास का चयन कर उसने वहाँ एक दुर्ग बनवाया जो आज भी खड़ा है।" हम ऊपर लिख चुके हैं कि शेरशाह ने मूल हिन्दुओं की भावुकता का लाभ उठाकर किस प्रकार रोहतास पर अधिकार कर लिया था। फिर भी एक बेहया मुसलमान इतिहासकार यह लिखने का साहस करता है कि रोहतास दुर्ग शेरशाह द्वारा निर्मित हुआ। मुसलमानों की इस कपटपूर्ण आदत ने भारतीयों को यह सोचने के लिए गुमराह कर दिया है कि दिल्ली तथा आगरे के लालकिले, फतहपुर सीकरी तथा अन्य इमारतें एवं नगर, यद्यपि सभी प्राचीन हिन्दू मूल के हैं, विदेशी यवन आक्रमणकारियों द्वारा पुनर्निर्मित हुए।

शेरशाह ने गकखरों के भूभाग को बुरी तरह लूटा। इतना ही नहीं, हिन्दू गकखर बादशाह सारंग की युवा कन्या का अपहरण कर खवास खाँ को बलात्कार के लिए सौंप दिया गया।

बंगाल पहुँचकर शेरशाह ने मुस्लिम शासक बेरक को बन्दी बनाकर पीड़ित करने की आज्ञा दी। उसका दोष यह था कि उसने सुलतान महमूद की कन्या से विवाह कर लिया था। इससे प्रकट होता है कि उसे विधवा बनाकर उसने उसे अपने हरम में डाल लिया।

तत्पश्चात् शेरशाह मांडू की ओर चला ताकि "बदला ले सके कि कुतुब खाँ (शेरशाह का नायब) को, कुछ वर्ष पूर्व हुमायूँ की सेना ने युद्ध में मार दिया था, सहायता देने में वहाँ का शासक पीछे कैसे रहा।" मांडू जाते

समय शेरशाह की उरगाती सेना शानिबर पहुँची। उसकी कूरताओं के प्रभु में मुगल रक्षकों ने बुरबाय दुर्ग का समर्पण कर दिया।

जब सेनाओं ने रायसेन के हिन्दू राजा पूरनमल की प्रजा पर अभूत-पूर्व घन्थाकार करके उसे मजबूर कर दिया कि वह जंगली तथा डाकू शेरशाह की अधीनता स्वीकार करे। अपने पति की सुरक्षा के प्रति चिंतित उसकी एकनिष्ठ, स्वाभिमत, सुन्दर पत्नी रत्नावली अपने प्रिय हिन्दू पति की बापसी तक दुर्ग के बुर्ज पर बँडे रहने का निश्चय कर उठी। उसे सभी बाधन जाने दिया जब उसने शेरशाह की सेवा के लिए ६,००० पान्न देने तथा अपने प्रपुत्र बनुभुज को प्रतिभू के रूप में छोड़ने की सह-मति दी।

उज्जैन में शेरशाह कानियदेह महल नामक सुन्दर हिन्दू दुर्ग में ठहरा। मल्लू खाँ के राज्य में घातक भचाकर तथा भूठे बायदे करके शेरशाह ने माँदू के शानक को अपने शिविर में प्रलोभित कर लिया। जाने पर मल्लू खाँ पर पूरी निगाह रखी गयी और बन्दी के रूप में कालपी से जाने के लिए आदेनित किया। शेरशाह की इच्छा थी कि इसकी सभी सम्पत्ति तथा स्त्रियों पर अधिकार कर लिया जाय। जब ऊँटों तथा गाड़ियों का कार्फिला जो उसे बन्दी रूप में ले जाने के लिए उसके शिविर पर पहुँचा, मल्लू खाँ ने "उन्हें बड़ी शक्तिशाली शराब दी जिससे वे नशे में चूर हो बहाना हो गये।" सभी मल्लू अपना परिवार तथा धन लेकर गुजरात भाग गया ताकि शेरशाह के पंजे में सुरक्षित रहे। इस अवसर पर शेरशाह ने माह, धार, उज्जैन की जो लूटपाट की तथा मन्दिरों को मस्जिदों में परिवर्तित करते समय विनाश का जो ताण्डव नृत्य किया उसकी उपमा नहीं।

प्रहमर घाटमार नामक एक मुसलमान इतिहासकार लिखता है कि इन अवसर के बीच चंदेरी के राजा के बिकट चढ़ाई करने के लिए बली दाद खाँ के घासीन सेना भेजी गयी। राजा के भतीजे को अपनी ओर मिला लिया गया और उनकी देशदोहिता के कारण राज्य जीत लिया गया। शेरशाह की पीठ के हाथ उसके हाथी, घोड़े तथा अन्य सम्पत्ति लगी। राजा की सुन्दर दुहिता के साथ शेरशाह ने बलात्कार किया।

माह तक अपना भय तथा घातक जमाकर शेरशाह आगरा लौटा

होने पर शेरशाह ने अपना इरादा ही बदल दिया। बहुत दिनों से रायसेन के हिन्दू सम्राट् पूरनमल की मुगूहणी रत्नावली का सतीत्व भ्रष्ट करना चाहता था। शेरशाह ने रायसेन को घेर लिया। पूरनमल की बीर हिन्दू सेना ने उन घिराव करने वाले अफगान लुटेरों को इस सफलतापूर्वक काट डाला कि वे (अफगान) उससे बहुत डर गये। दुर्ग पर अधिकार करने तथा हिन्दू दुर्ग-रक्षकों को पराजित न कर सकने पर शेरशाह ने वही पुरानी म्लेच्छ युक्तियाँ अपनायी—हिन्दू जनता को कष्ट देना, उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार करना, उनकी फसल तथा घरों को जला देना एवं उनके बच्चों को बहुत कष्ट देना। इन रोंगटे खड़े कर देने वाले अत्याचारों से द्रवित हो पूरनमल ने दुर्ग खाली कर देने का वचन दिया। इस शर्त पर कि उसके परिवार तथा दुर्ग-रक्षकों को सुरक्षापूर्वक चले जाने दिया जायेगा, शेरशाह ने अपने भृत्य कुतुब खाँ को आदेश दिया कि वह पूरनमल के परिवार एवं कौष को बिना छुए चले जाने देने के लिए कुरान की शपथ खा ले। उन्हें एक विशेष शिविर में ठहरा दिया गया। परस्वाभाविक विश्वासघात के अनुसार "रात में इसा खाँ हबीब को आदेश दिया गया कि एक निश्चित स्थान पर हाथियों सहित वह अपनी सेना एकत्र करे। हसोब खाँ को उसने चुपके से आदेश दिया कि वह पूरनमल पर निगाह रखे कि वह भागने न पाये और किसी भी व्यक्ति से इस विषय में बात न करे।" (पृ० ४०२, भाग IV)। पूरनमल ने यह जानकर कि सदा की मीति मुसलमानों ने कुरान की शपथ तक में रखकर लोगों को जान से मारने तथा हिन्दू स्त्रियों को भ्रष्ट करने की छान ली है "अपनी प्राणप्रिय पत्नी रत्नावली के शिविर में जा, जो हिन्दी भजनों को अत्यन्त माधुर्य के साथ गाती थी, उसका सिर काट दिया। (अपने अनुयायियों के समक्ष दृष्टान्त प्रस्तुत करने के लिए) तथा बाहर आकर अपने साथियों से कहा, मैंने यह किया है, क्या आप भी अपनी पत्नियों एवं परिवारों का यही करेंगे? जबकि हिन्दू लोग अपनी स्त्रियों एवं पारिवारिक सदस्यों को समाप्त करने में लगे थे (मुसलमानों के हाथों बलात्कार एवं अप्राकृतिक मधुन से बचने के लिए) चारों ओर अफगान हिन्दुओं के प्राण ले रहे थे। पूरनमल एवं उसके साथी महान् वीरता एवं शौर्य प्रदर्शित कर (विश्वासघात के कारण मुट्ठी भर संख्या में थे) सब-के-सब मारे गये। उनकी कुछ बची हुई पत्नियाँ एवं

पारिवारिक सदस्य एकत्र लिये गये। पुरनमस की एक कन्या एवं उसके पञ्च के तीन पुत्र जीवित एकत्र लिये गये। शेर को मार डाला गया। शेरशाह ने पुरनमस की कन्या को कुछ धूमकड़ (यवन) भाटों को दे दिया ताकि वे उसे बाजारों में नचावें तथा बन्धों को नपुंसक बना देने का आदेश दे दिया गया ताकि पत्याधारियों (यानी हिन्दुओं) की वंश-वृद्धि न हो पाये। रायसेन के दुर्ग को उसने मुंजी शाहबाज खाँ को दे दिया।" (अब्बास खाँ की तारीख-ए-शेरशाही, पृ० ४०२-४०३, भाग IV, इतिपट व डाउसन)। इस प्रकार एक घोर गौरवशाली हिन्दू राज्य विदेशी म्लेच्छ द्वारा विनष्ट कर दिया गया। शेरशाह को सबसे बड़ा क्लेश उस बात से हुआ कि उसकी रत्नावली का सतीत्व विनष्ट करने की इच्छा पूर्ण नहीं हुई।

राजपूत सरदार बानुदेव तथा राजकुंवर राजपूत जाति के विरुद्ध भी शेरशाह ने ऐसे ही घोर क्रूर कृत्य किये। शेरशाह के कुछ दरबारियों ने उसे दक्षिण भारत पर आक्रमण करने की सलाह दी। किन्तु शेरशाह दक्षिण जाने के पूर्व उत्तर भारत से हिन्दू धर्म समूल विनष्ट करना चाहता था। उसने उससे कहा, "तुमने बिल्कुल उचित सलाह दी है किन्तु मेरे विचार में तो यह साधा है कि सुलतान इब्राहीम (लोदी) के समय से इन मूर्ति-पूजकों (यानी हिन्दू) जमींदारों ने इस्लाम के देश (अर्थात् हिन्दुस्तान) को काफिरों (अर्थात् हिन्दुओं) से भर दिया है तथा मसजिदों एवं हमारी (अर्थात् विदेशी, शरारती, बलात्कारी मुसलमान) इमारतों को ढहा कर (अर्थात् मन्दिरों पर अधिकार कर) उनमें मूर्तियाँ रख दी हैं (अर्थात् मन्दिरो में परिवर्तित अपने मन्दिरों पर पुनः दावा किया है) तथा दिल्ली एवं गालवा प्रान्त पर अधिकार कर लिया है। इन काफिरों से जब तक मैं देश को साफ नहीं कर देता (अर्थात् हिन्दू धर्म का विनाश), मैं अन्य किसी और नहीं जाऊँगा।" सर्वप्रथम मैं इस पतित (यवन इतिहासों में हिन्दुओं के लिए प्रयुक्त श्रिय विमेषण) मालदेव (जोधपुर का हिन्दू शासक जो यवन विनाशिता एवं कूरता के समझ नहीं भुका) को निर्मूल करूँगा।" (पृ० ४०३-४०४)।

शेरशाह के म्लेच्छ लुटेरे, इतने अधिक "कि खेष्ट गणक भी अपनी समस्त वस्त्रा, विचार एवं चिन्तन के बावजूद भी, उन्हें गिनने में अक्षम हैं" नागौर, अजमेर तथा जोधपुर को विनष्ट करने आगरे से चले।

उसने फतहपुर सीकरी में पड़ाव डाला। पाठकों को फतहपुर सीकरी (१५४३-४४ ई०) के इस उल्लेख पर ध्यान देना चाहिए, जिसका उम्र तिथि से ३० वर्ष पूर्व जिक्र हो रहा है, जिस तिथि को भूडे ही पकवर द्वारा इमारतों के निर्माण का प्रारम्भकर्ता कहा जाता है। शेरशाह प्रब राजपूत प्रदेश में था। यवन आक्रमणकर्ता से फतहपुर सीकरी, प्राचीन राजपूत नगर, को तो बचाना ही था। जयचन्देल तथा गौहा नामक दो और राजपूत सरदार "बाहर आये, जिन्होंने अभूतपूर्व शौर्य का प्रदर्शन कर शेरशाह पर आक्रमण किया। हिन्दू सेना द्वारा यवन सेना का कुछ भाग समाप्त हो गया।" यद्यपि हिन्दू बहुत कम तथा शेरशाह के सैनिक ३,००,००० से भी अधिक थे। इससे पूर्व कि मुसलमान बलात्कार एवं विनाश द्वारा आतंक फैलाकर हिन्दुओं को निराश एवं दुःखी कर पाएँ, उनपर आक्रमण कर दिया गया। अफगानों की कायरता एकदम स्पष्ट हो गयी। उनमें से एक "शेरशाह के समीप आकर उसे अपनी बोली में गालियाँ देकर कहने लगा, 'चलिए, काफिर (अर्थात् हिन्दू) तुम्हारी सेना समाप्त किए दे रहे हैं।' शीघ्र ही समाचार फैल गया कि दोनों हिन्दू वीर घेर लिये गये, पराजित कर दिये गये तथा कत्ल कर दिये गये। अपने भाग्य की सराहना करते हुए शेरशाह ने कहा, "एक बाजरे के दाने के लिए मैंने दिल्ली की सत्तनत खो दी होती।" भयभीत शेरशाह शीघ्र ही आगरा लौट गया जबकि उसका अनुचर खवास खाँ जोधपुर तथा मारवाड़ के निकट कहर डाने लगा। जहाँ कहीं मुसलमान कहते हों कि उन्होंने 'नींव डाली' वहाँ उसका यही अर्थ लेना चाहिए कि उन्होंने हिन्दू नगर के नाम को मुस्लिम नाम में परिवर्तित कर दिया।

अब्बास खाँ की वह मनगढ़न्त कहानी, जिसे तारीख-ए-शेरशाही कहते हैं, का दावा है कि शेरशाह चित्तौड़, कछवाहा तथा रणथम्भोर की ओर बढ़ा तथा इन सभी ने उसे (विना लड़े) आत्मसमर्पण कर दिया। यह सफेद भूठ है क्योंकि इसके बाद मुसलमानों के आतंक एवं कूरताओं का मर्मभेदी वर्णन नहीं है।

शेरशाह के दक्षिण भारत पर आक्रमण न करने का मुख्य कारण उत्तर में अनेक हिन्दू-मुस्लिम सरदारों का उसके शत्रु होना था जो उसे फिर दक्षिण से न आने देते और उसके राज्य पर अधिकार कर लेते।

उत्तर में कालिंजर हिन्दुओं का बहुत बड़ा गढ़ था। इसका बीर हिन्दू राजा कीरतसिंह था। सरहिन्द के एक अन्य बहादुर हिन्दू शासक भगवन्त ने एक यवन लुटेरे घालम खाँ पर चढ़ाई कर मार डाला। शेरशाह ने कालिंजर नगर का घेरा डाल दिया। घेरा डालने वाले अफगानों ने खोदी हुई मिट्टी का टीला बना लिया और उसपर चढ़कर कालिंजर के घेरों तथा सड़कों पर हिन्दुओं पर बाणों तथा बन्दूकों से हमला किया। शेरशाह का लक्ष्य तो विनाशिता था। अब्बास खाँ की तारीख-ए-शेरशाही में लिखा है: "कीरतसिंह की स्थियों में एक पातर बालिका थी। शेरशाह ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा सुनी थी; वह उसे प्राप्त करने की ही सोचता रहा क्योंकि उसे भय था कि 'ऐसा न हो कि वह जीहर कर ले'।"

हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का सभी म्लेच्छों का उद्देश्य हिन्दुत्व को समाप्त करना तथा हिन्दुस्तान को एक यवन देश में परिवर्तित कर देना था, जिसमें उन्हें कम सफलता नहीं मिली, यह कालिंजर के बाहर शिविर में नास्ता करते समय शेरशाह के श्रेष्ठ निजाम के एक कथन से स्पष्ट है: "इन काफ़िरों के खिलाफ़ जिहाद छेड़ने के समान और कुछ नहीं है (अर्थात् यवनों द्वारा हिन्दू लोगों का शस्त्र एवं हिन्दू महिलाओं का अपहरण)। यदि आप मर जाते हैं तो ग़र्हीद कहलाएंगे, यदि जीवित रहते हैं तो गाजी।" (पृ० ४०८)। इससे स्पष्ट है कि भारत में मुसलमानों द्वारा किये गये अपहरण उनके अथाक्षाधिक सन्तों, काजियों, उलेमाओं एवं मुल्लाओं द्वारा उकसाये गये थे।

जंग के कष्टों में उत्तेजित हो शेरशाह ने उठकर दरया खाँ को गोले लाने के लिए आदेश दिया तथा टीले के ऊपर चढ़कर स्वयं अनेक बाण छोड़ते हुए चिल्लाया: "दरया खाँ आता नहीं; वह बहुत देर लगा रहा है।" जब वे ले आये गये, शेरशाह टीले से नीचे उतरकर गोलों के समीप ही खड़ा हो गया। जब उसके लोग उन्हें चला रहे थे नगर द्वार से आये एक गोले ने शेरशाह के समीप ही एक ढेर में आग लगा दी, जिससे उनमें विस्फोट हो गया। गोलों का वह ढेर एकदम फट गया तथा घड़ाके के साथ उनके शरीर की वाकद वेग से बाहर निकली। अपने हाथों से अपने विकराल चेहरा की दबावे हुए बुरी तरह जला हुआ गंग-थड़ंगा शेरशाह बाजार वाले हुए अपने शिविर की ओर लड़खड़ाते हुए भागा। वह निर्दयी

डाकू शेरशाह, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन विश्वासघातों एवं धमिकारों में व्यतीत किया, जीवित ही भुन गया। उसका चेहरा प्रत्यंत विकृत हो गया था। वह ऐंठने और बुरी तरह चिल्लाने लगा। पर उस दर्द में भी उसकी इच्छा थी कि हिन्दुओं को मार डाला जाय। कहा जाता है कि उसके अनुयायी नगर पर टिड्डी दल की भाँति टूट पड़े और सभी हिन्दुओं को तलवार के घाट उतार दिया। अपने ७० शूरवीर हिन्दू योद्धाओं के साथ अन्त तक लड़ता हुआ राजा कीरतसिंह दूसरी सुबह उत्तेजित किया गया और पकड़ लिया गया। इससे पूर्व मई, १५४५ की भारी दोपहरी में गोलों के विस्फोट के तुरंत पश्चात् शेरशाह का शरीर भुनकर समाप्त हो गया था। इस प्रकार अफगान लुटेरे तथा डाकू शेरशाह, जो अपने कुकृत्यों के कारण मानवता पर बहुत बड़ा कलंक है, जीवन का समुचित अन्त हुआ।

पाठकों ने ध्यान दिया होगा कि शेरशाह के इस सप्तवर्षीय राज्य में लोगों के प्राण लिये, भवनों को नष्ट किया, जंगलों को काट डाला तथा महिलाओं के साथ बलात्कार किया। और मजा यह है कि इतने पर भी प्रवंचक यवन इतिहासकार शेरशाह के काल्पनिक न्याय एवं औदार्य विषयक झूठों का उल्लेख करते हैं। कुछ उदाहरण देखिए। अब्बास खाँ नामक झूठे अपने तारीख-ए-शेरशाही (पृ० ४१७, भाग IV) में लिखता है: "उसने सर्वत्र न्यायालय खोले तथा अपने ही जीवन तक के लिए नहीं, अपनी मृत्यु के पश्चात् तक के लिए अनेक धार्मिक संस्थाओं की स्थापना की। हर मार्ग पर यात्रियों की सुविधा के लिए हर दो कोस पर उसने एक सराय बनायी" तथा एक सड़क तो उसने पंजाब से बंगाल तक बनायी।" शेरशाह द्वारा बनवायी गयी ग्रैंड ट्रंक रोड के विषय में यह इतना बड़ा झूठ है कि कोई इस निराधार दावे की सत्यता जानने की चिन्ता ही नहीं करता। एक अन्य मार्ग उसने आगरे से बुरहानपुर तक बनाया। एक सड़क उसने आगरे से जोधपुर तथा चित्तौड़ तक (भी) बनायी तथा दूसरी सरायों समेत लाहौर से मुल्तान तक। समग्रतः उसने विभिन्न मार्गों पर १७०० सरायों का निर्माण किया तथा प्रत्येक सराय में हिन्दुओं तथा मुसलमानों—दोनों के लिए अलग-अलग निवास-स्थल बनाये। प्रत्येक सराय में हिन्दुओं का सत्कार करने, उन्हें शीतल-उष्ण जल प्रदान करने तथा भोजन-बिस्तरे देने के लिए उसने ब्राह्मण रख छोड़े थे। शेरशाह ने

हिस्ती को नष्ट करके फिर से बनाया। कनौज को भी इसने इसी प्रकार नये रूप में बनाया। उसने बौहन कुण्डत तथा शेर दुर्ग भी बनाये।"

जह पंचवर्षीय योजना (क्योंकि हुमायूँ ने भारत १५४० में छोड़ा और तभी से शेरशाह अपनी मृत्यु (१५४५) पर्यन्त भारत में सबसे बड़ा लुटेरा रहा) भारत सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं को पीछे छोड़ देती है तथा इन्की के अभियानों को लज्जित करती है।

एक और नीच भूठा, वाक्यात-ए मुस्तकी का लेखक कहता है : "जिस किसी को भोजन की इच्छा होती शेरशाह की रसोई में जाता और प्राप्त करता। उसके शासनकाल में देश में इतनी सुरक्षा थी कि चोरी-डकैती तथा लूटपाट का तो नाम भी नहीं था। गौड़ देश से लेकर अपनी राज्यासीमा तक, प्रत्येक दिशा में, हर कोस पर उसने सरायें तथा कयाम-गाह बनवाये। गौड़ प्रदेश से अवध प्रान्त तक एक सड़क का निर्माण किया गया जिसके किनारे सरायें, बगीचे तथा छायायुक्त फलदार वृक्ष थे। बगीचों तथा सरायों समेत दूसरी सड़क उसने बनारस से बुरहानपुर तक तथा अन्य बगीचों-सरायों समेत आगरा से जोधपुर तक बनाई। एक अन्य सड़क बयाना से जतौपुर एवं अजमेर तक बनाई। कुल मिलाकर १७०० सरायें थीं और प्रत्येक सराय पर सश्वयुग्म तैयार रहता था। फलतः एक दिन में ३०० कोस तक समाचार पहुँच जाता (कौन से समाचार-पत्र थे जो इसे छापते थे)। हर दिशा से प्रार्थना-पत्र आते तथा उसके उत्तर भेज दिये जाते।" (पृष्ठ ५४६-५५१, भाग IV)।

अपने को इतिहासकार कहने वाले नीचों द्वारा ऐसी अगणित भूठें बिली गई हैं। हमारे विद्वानों को इस चाल में न फँसकर शेरशाह के विषय में अपने प्रभावपूर्ण विद्यार्थियों द्वारा इन अधम भूठों की आवृत्ति कराकर उनकी प्रज्ञा का अपमान नहीं करना चाहिये। सत्य की माँग है कि शेरशाह को नर-संहारक महिला-भतीत्वहर्ता, लुटेरा तथा डाकू, उचकता तथा गिरौहवाज, धूर्त, एवं देशद्रोही तथा अधिक से अधिक धृष्य एवं पातकिक धमरापी से न्यूनाधिक कुछ न समझना चाहिये।

शेरशाह सहसराय के उस हिन्दु भवन में दफनाया पड़ा है, जिसे इहसबत वह रहा करता था। इतिहासकारों की यह समझना बहुत बड़ी भूल है कि यह उसकी मृत्यु के पश्चात् निमित्त हुआ था।

: ५ :

अकबर

प्रचलित भारतीय इतिहास की पुस्तकों में, छठी पीढ़ी में उत्पन्न मुगल बादशाह औरंगजेब को क्रूरता, घोखेबाजी, धूर्तता और धर्मान्धता का साक्षात् मूर्त रूप प्रस्तुत किया गया है। किन्तु, औरंगजेब का प्रपितामह अकबर इससे भी बदतर था। चाटुकारों द्वारा लिखे इतिहास-ग्रन्थों ने अकबर के कुकृत्यों को रूप परिवर्तित कर देने, तमाम प्रमाणों को तितर-बितर कर देने और उन बिखरे पड़े प्रमाणों को भी अकबर के शाही शयनागारीय कालीन के नीचे कुशलतापूर्वक छिपा देने का यत्न किया है। इस प्रकरण में पाठकों के समक्ष उसी साक्ष्य का नमूना प्रस्तुत करने की इच्छा है, यद्यपि वह साक्ष्य मात्रा में इतना विपुल है कि एक पृथक् पुस्तक ही उसके लिए उपयुक्त होगी। उत्कृष्ट व्यक्ति होना तो दूर, भारत के इतिहास में उसका स्थान भी छोड़िये, अकबर को तो विश्व-इतिहास के निष्कृष्टतम अत्याचारियों में से एक गिना जाना चाहिये और अकबर को तो अशोक जैसे पुण्यात्मा, परम हितैषी और मनस्तापपूर्ण व्यक्ति के सम-कक्ष रखना शैक्षिक बुद्धिहीनता की पराकाष्ठा है।

'महान मुगल—अकबर' शीर्षक वाली, अकबर के शासन का आडम्बर-पूर्ण तथा पक्षपातपूर्ण वर्णन करने वाली पुस्तक में भी पृष्ठ ३२ पर विन्सेंट स्मिथ यह उल्लेख किये बिना नहीं रह सका कि "कलिंग विजय पर हुई दीनावस्था के कारण अशोक को जो मनस्ताप अनुभव हुआ था, उसपर अकबर खुलकर हँसा होगा, और उसने अपने पूर्ववर्ती के निर्णय की पूर्ण भर्त्सना की होगी कि अतिक्रमण के लिए की जाने वाली भावी लड़ाइयों से दूर रहा जाय।"

स्मिथ इस विचार को बिल्कुल 'भावुकतापूर्ण निरर्थकता' कहकर

विरस्तृत कर देता है कि अकबर द्वारा विभिन्न बड़ाईयाँ छोटे-छोटे राज्यों को मिलकर विज्ञान शास्त्राध्य स्थापित करने के महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर की गई थीं।

समकालीन व्यक्तियों; यथा अबुल फजल, निजामुद्दीन और वदयूनी तथा विन्सेंट स्मिथ जैसे पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत अकबर के शासन के वर्णनों का परीक्षण पाठक को इस बात के लिए प्रतीति कराने को प्रोत्साहित है कि अकबर के शासनार्थी होकर दासता अपने अधमम रूपों में चरमोत्कर्ष पर थी, और उसका शासनकाल इस प्रकार की नृशंसता, विविधता, दमन और निर्बलतापूर्ण बड़ाईयों से परिपूर्ण है, जिनका दूसरा रूप इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है।

अकबर के व्यक्तित्व का सही आकलन कर पाने के लिए यही उचित होता कि उस परिवार की परम्पराओं तथा व्यवहार के स्तर का परिवेक्षण किया जाय जिससे कि अकबर का वंशानुक्रम है।

अपनी पुस्तक के ७वें पृष्ठ पर विन्सेंट स्मिथ ने उल्लेख किया है कि "अकबर भारत में एक विदेशी था। उसकी रीतों में भारतीय रक्त की एक बूँद भी नहीं थी।" यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार भारतीय विद्या-धियों को पीढ़ियों को तोते की-सी रट लगवाकर तथा अपनी उत्तर-पुस्तिकाओं में यह लिखाकर सदैव धोखे में रखा गया है कि अकबर एक भारतीय था, तथा उनमें भी प्रमुखों में से एक प्रमुखतम व्यक्ति था। भ्रान्ति के उस दूसरे पक्ष का जहाँ तक सम्बन्ध है कि वह एक महान् व्यक्ति तथा शासनकर्ता था, हम इस लेख में सिद्ध करना चाहते हैं कि वह तो अपने समस्त सम्बन्धियों तथा भारतीयों द्वारा सर्वाधिक धृष्टित व्यक्तियों में से एक था, और इसीलिए भारतीय इतिहास-ग्रन्थों में उसकी गणना ऐसे ही और धृष्टित व्यक्तियों में की जानी चाहिये।

ऊपर कहे हुए शब्दों को जारी रखते हुए विन्सेंट स्मिथ कहता है कि अकबर अपने निरुपद्रव में तैमूरलंग से सीधी आतवी पीढ़ी में था और मातृ-पक्ष में बिलकुल भी नहीं था। इस प्रकार, अकबर, इतिहास में ज्ञात उन दो नृशंसतम विप्लवकारी शक्तियों में उत्पन्न था जिनके जीवन-काल में पृथ्वी का सबसे बुराई थी। किन्तु भारतीय इतिहास-ग्रन्थ हमको यह विश्वास दिलाता चाहते हैं कि अकबर पर्सिया के सेंट फॉसिस और अब्दुल एडम

की सन्त-परम्परा से सम्बन्ध रखता था।

विन्सेंट स्मिथ की पुस्तक के २६४वें पृष्ठ पर कहा गया है कि "तैमूरलंग के राजपरिवार के लिए मद्यपान उसी प्रकार जन्मपाप था, जिस प्रकार यह अन्य मुस्लिम राजपरिवारों की नैतिक दुर्बलता थी। बाबर गहरे पियक्कड़ स्वभाव का व्यक्ति था... हुमायूँ स्वयं को अफीम में घुत रखकर जड़बुद्धि बन चुका था... अकबर ने अपने आपमें दोनों अवगुणों का समावेश होने दिया... अकबर के दो छोटे लड़के पुरानी मद्यपानता के कारण मर गये थे और उनका बड़ा भाई अपनी दृढ़ शारीरिक संरचना के कारण बच गया था, न कि किसी गुण के कारण।"

स्मिथ कहता है कि "अकबर के चाचा कामरान ने स्वभावतः अपने शत्रुओं को क्रूरतम यातनाएँ देकर अपना मुँह काला कर लिया था... उसने बच्चों और महिलाओं तक को नृशंसतम अत्याचार का शिकार बनाया..." (पृष्ठ १५)।

जैसा कि भारत के समस्त मुस्लिम शासकों के साथ सामान्य बात रही थी वैसा ही हुमायूँ भी अपने सम्पूर्ण जीवन में अपने ही भाइयों के साथ समासान युद्ध में व्यस्त रहा। जहाँ तक अत्याचारों का सम्बन्ध रहा, वह कामरान का प्रतिस्पर्धी था। पकड़ लिये जाने पर कामराज को घोर यातनाएँ दी गईं। स्मिथ ने (२०वें पृष्ठ पर) लिखा है "अपने भाई के कष्टों से हुमायूँ को कोई दुःख नहीं हुआ... कामरान को उसके आवास से धसीटकर बाहर लाया गया, लिटाया गया, और जब उसके घुटनों पर एक आदमी बैठ गया, तब दो धार वाला तेज नोकदार नश्वर कामरान की आँखों में घुसेड़ दिया गया। थोड़ा-सा नीबू का रस और नमक उसकी आँखों में रगड़ा गया, और उसके तुरन्त बाद पहरेदारों के साथ चलने के लिए उसको घोड़े की पीठ पर बैठा दिया गया।" अपने पिता और चाचा तक चली आई ऐसी परम्परा, य स्वयं अकबर के सब सम्भव अवगुणों के प्रति असीमित रूप में व्यसनी स्वभाव के होते हुए भी यह बात करना, जैसा कि आज के हमारे इतिहास-ग्रन्थ कहते हैं, केवल मात्र परले दर्जे की प्रगल्भता है, कि अकबर बिरले सद्बृत्ति वाले लोगों में से एक था।

(पृष्ठ २४२ पर) विन्सेंट स्मिथ द्वारा दी गई अकबर की शारीरिक विशिष्टताओं से स्पष्ट है कि अकबर का व्यक्तित्व कुरूप तथा भद्दा था,

जैसा होना नृबल-विज्ञान के विलुप्त अनु रूप है क्योंकि उसका सम्बन्ध एक अत्यन्त दुर्गुणी परिवार से था। स्मिथ कहता है, "(जीवन के मध्यकाल में) अकबर चौदह इंच के टोल-टोल का था, ऊँचाई में लगभग ५ फुट ७ इंच, चौड़ी छाती, पतली कमर और लम्बे बाजू। उसके पैर भीतर की ओर झुके हुए थे। चलते समय वह अपने बायें पैर को कुछ घसीटता-सा था, झुके हुए थे। चलते समय वह अपने बायें पैर को कुछ झुका हुआ था। मानो लड़का हो। उसका सिर दायें कंधे की ओर कुछ झुका हुआ था। नाक कुछ छोटी थी, बीच की हड्डी कुछ उभरी हुई थी, नथुने ऐसे लगते थे मानो जोष से फूले हों। घटर के आधे दाने के आकार का एक मस्सा उसके ऊपरी होठ को नथुने से जोड़ता था—उसका रंग श्यामल था।" इस प्रकार की भद्दी आकृति होते हुए भी, समकालीन व्यक्तियों द्वारा 'निरलंज चाटुकार' संज्ञा दिया गया आत्म-निर्दिष्ट, मिथ्याचारी, परान्धधोबी, अकबर के शासन का वृत्तकार अबुल फजल उसको "धरती पर सुन्दरतम व्यक्ति" कहते नहीं सकते।

वेद नशीली वस्तुओं तथा मदान्ध करने वाली जड़ी-बूटियों का अकबर घोर व्यसनी था, इस तथ्य के असंख्य उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। वह नशीली पेय तथा खाद्य-वस्तुओं से निर्मित होने वाली भयंकर नशे वाली वस्तुओं का भी सेवन कर लेता था। अकबर का बेटा जहाँगीर स्वयं कहता है: "मेरा पिता चाहे, शराब पिये हो, चाहे स्थिर चित्त हो, मुझे सर्वत्र 'मेरा बाबू' कहकर पुकारता था।" इसका अन्तर्निहित अर्थ स्पष्ट है कि अकबर प्रायः शराब के नशे में रहता था। (पृष्ठ ८२वें पर) स्मिथ ने उल्लेख किया है कि "यद्यपि अकबर के चाटुकार भांडों ने उसकी सविश्रामावस्था का कोई वर्णन नहीं किया है, तथापि यह निश्चित है कि उसने पारिवारिक परम्परा बनाए रखी, और वह प्रायः आवश्यकता से अधिक शराब पीता रहा।"

अकबर के दरबार का ईसाई पादरी अक्वावीवा कहता है कि "अकबर अपनी अधिकांश शराब पीने लगा था कि वह प्रायः (प्रागन्तुकों से बातें करते-करते ही) सो जाया करता था। इसका कारण यही था कि वह कई बार तो ताड़ी पीता था। वह अत्यन्त मादक ताड़ की शराब होती थी और, कई बार पीन की शराब पीता था, जो उसी प्रकार अफीम में अनेक अम्लगुं मिलाकर बनाई जाती थी।" मदिरा-पान के दुर्गुण के उसके बुरे

उदाहरण का पूर्ण निष्ठापूर्वक पालन उसके तीनों बेटों ने युवावस्था प्राप्त होने पर किया। (२४४ वें पृष्ठ पर) उल्लेख है कि जब अकबर सीमा के अधिक पी लेता था, तब पागलों जैसी विभिन्न हरकतें किया करता था। उसको एक अति नशीली ताड़ से निकली शराब विशेष रूप से प्रिय थी। उसके बदले में वह अत्यन्त चटपटी अफीम का अवमिश्रण लिया करता था। अनेक पीढ़ियों से चली आयी अत्यन्त नशीले पेय पदार्थों तथा अफीम की विभिन्न रूपों में सेवन करने की पारिवारिक परम्परा को उसने बुरा निभाया, अनेक बार तो अतिपान करके निभाया। ऐसे दृष्टान्तों के मन-चाहे उदाहरण दिए जा सकते हैं, किन्तु अकबर की अत्यन्त दुर्गुणी प्रकृति थी—ऐसा विश्वास पाठक के हृदय में जमाने के लिए, ये उदाहरण पर्याप्त होने चाहिये। इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं कि दुर्गुणी आत्मा जो निरन्तर वर्धमान पापोन्मुखी हो, वही मादकता में संरक्षण चाहती है।

सभी इतिहासकारों ने सर्वसम्मत स्वर में पुष्टि की है कि अकबर निपट निरक्षर था। उसके बेटे जहाँगीर ने उल्लेख किया है कि अकबर न तो लिख सकता था और न ही पढ़ सकता था, किन्तु वह प्रदर्शित ऐसा करता था जैसे अत्यन्त शिक्षित व्यक्ति हो। अकबर का स्वयं ऐसा भाव प्रदर्शित करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना अन्य लोगों का उसके सम्मुख यह अभिव्यंजित करना कि जो कुछ अकबर के मुख से निकलता था, वह अत्यन्त बुद्धिमत्ता-सम्पन्न होता था। क्रूर और सिद्धान्त-शून्य सर्वशक्तिमान राजा के सम्मुख उपस्थित होने पर वे और कर भी न्याय सकते थे—

अकबर का जीवन उस संस्कृत उक्ति का अच्छा उदाहरण है, जिसमें कहा गया है।

"यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।

एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥"

२१वें पृष्ठ पर स्मिथ कहता है: "अबुल फजल यह दुहराते हुए कभी नहीं सकते कि अपने प्रारम्भ के वर्षों में अकबर 'पर्दे के पीछे' रहा। अबुल फजल का आशय यही है कि अकबर अपना अधिकतम समय अपने हरम में ही बिताया करता था।" ८२वें पृष्ठ पर स्मिथ हमें सूचित करता है कि "पुनीत ईसाई-धर्म-प्रचारक अक्वावीवा ने अकबर को, स्त्रियों से

पाँच हजार से अधिक मित्रों का निर्वाचित हरम तथा राज्य की उन सभी समृद्ध वस्तुओं के होते हुए भी, जिनका कोमायें अबुल फजल के अनुसार अकबर की पुर्ण इच्छा पर सुरक्षित सम्भव था, जिसको कोई

अकबर की स्त्रियों-विषयक और दुर्बलता का उल्लेख करता हुआ स्मिथ पृष्ठ ४७ पर कहता है : "जनवरी सन् १५६४ के प्रारम्भ में अकबर दिल्ली की ओर गया। जब वह एक सड़क से गुजर रहा था, तब सड़क के किनारे बनी इमारत के एक छज्जे से एक पुरुष ने एक तीर मारा, जिससे अकबर का एक कन्धा घायल हो गया।" प्रतीत होता है, अकबर ने हत्यारे के पापसहायों का पता लगाने के प्रयत्नों को निरुत्साहित किया था। अकबर

उस समय दिल्ली-परिवारों की महिलाओं से विवाह करने की योजना में लगा हुआ था, तथा उसने एक जेरु को अपनी पत्नी अकबर को समर्पित करने के लिए दाय्य किया था। अकबर की हत्या का प्रयत्न सम्भवतः अकबर द्वारा परिवारों के सम्मान के हरण के विरुद्ध रोष का प्रतिफल था। पत्नियों और दूतों के मामलों में अकबर ने स्वयं को पर्याप्त छूट दे रखी थी।

इस कृतित्त वर्णन से यह स्पष्ट मालूम होता है कि चूंकि अकबर की शासक बंरम खाँ की पत्नी पर लग गई थी और उसने बंरम खाँ की हत्या के बाद उसको पत्नी से छान्नी कर ली थी, अपने पूर्वकालीन संरक्षक की नृसंहार और दुःखान्त समाप्ति भी अकबर ने ही करवाई होगी।

१५वें पृष्ठ पर स्मिथ ने वर्णन किया है कि किस प्रकार अकबर के सेनापति फारम खाँ ने मोंटबगढ़ के शासक बाजबहादुर को पराजित करने के पश्चात् अपने लिए महिलाओं तथा लूट-खसोट की अन्य वस्तुओं को सुरक्षित रखते हुए, अकबर के पास 'केवल हाथियों के कुछ नहीं भेजा।' अकबर ने फारम से २७ अप्रैल, सन् १५६१ को प्रस्थान किया और बाजबहादुर के हरम में प्रविष्ट करने के लिए विशाल बलशाली सेनाओं से बाजबहादुर को घेर दबाया। इस प्रकार अकबर का हरम सैकड़ों महिलाओं से निरन्तर बर्धमान होता रहा था। उन महिलाओं की दशा का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। कल्पना की जा सकती है की उनका जीवन भी पशुओं की तरह उत्तम नहीं रहा होगा। वे तो केवल पशु-समूहों की भाँति रहो होंगी और इसलिए अबुलफजल का बलपूर्वक उच्च स्वर से यह घोषित करना, कि उन महिलाओं के निवास के लिए पृथक्-पृथक् प्रावास दिये गये, मुस्लिम-आद्वारिता का सामान्य भ्रम प्रतीत होता है।

विन्सेट स्मिथ पृष्ठ १६३ पर अन्य एक घटना का उल्लेख करता है जो कि अकबर की संभोगिच्छा को घोर संकेत करती है। राजा भगवान-दास का सम्बन्धी शयन एक अत्यन्तकालिक यात्रा पर भेजा गया था। उन भयानक दिनों में जीवित रहने की कामना न रखने के कारण उसकी विधवा पत्नी ने अपने पति के शव के साथ, अग्नि की भेंट चढ़ जाने की तैयारी की। अकबर ने उस विधवा के साथ जाने वालों का पीछा करने एवं उनकी पकड़ने के पश्चात् बन्दी बनाने के कार्य में कोई देर न की। थोड़े-से भी

अन्वेषण द्वारा यह दाँया जाना सम्भव हो सकता है कि जगमग को जान-बूझकर मार डाला गया हो, और उसको विधवा पत्नी को अकबर के हरम में ठूस दिया गया हो।

१८५वें पृष्ठ पर स्मिथ का कहना है कि, "अग्नि का वह कथन कि अकबर एकनिष्ठ पति रहा तथा उसने रखैलों की अन्य दरबारियों में वितरित कर दिया था, अन्य स्रोतों से पुष्ट नहीं होता।" अकबर की कामुकता में यह एक नया अध्याय जुड़ जाता है क्योंकि वह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार अकबर और दरबारियों के मध्य महिलाएँ केवल बल-सम्पत्ति के समान ही उन लोगों की कामवासना तृप्ति के लिए इधर-उधर विनिमय की जाने वाली व्यभिचार की सामग्री मात्र समझी जाती थीं। उन दयनीयों की स्थिति मांसवाजार में स्थित उन मेमनों की-सी रही थी जिनको व्यावसायिक-समझौते के निर्णय तक विक्रेता और ग्राहक के मध्य बार-बार इधर-से-उधर घसीटा जाता है।

इसके साथ ही मीना बाजार नाम की कुख्यात प्रथा थी जिसके अनुसार नव वर्ष के दिन सब घरों की महिलाओं को अकबर की रुचि के अनुसार चयन किये जाने के लिए उसके सामने से समूह में निकाला जाता था।

अकबर के शासन के वर्णनों में से कामुकता के सभी सम्भव रूपों की ऐसी दुःखदायी अवम कथाएँ जितनी संख्या में चाहें उपलब्ध की जा सकती हैं।

क्रूरता में अकबर की गणना, इतिहास के घोरतम क्रूर-संभोगियों में की जानी चाहिये।

पृष्ठ २० पर विन्सेट स्मिथ कहता है कि "ग्वालियर में सन् १५६५ में कामरान के पुत्र (अर्थात् अकबर के अपने भाई) को निजी रूप में मार डालने के अकबर के कार्य ने अत्यन्त घृणित उदाहरण प्रस्तुत किया, जिसकी तकल उसके अनुवर्ती शाहजहाँ और औरंगजेब ने खूब की।" इस प्रकार शाहजहाँ और औरंगजेब द्वारा किये गए अत्याचार उनकी नवीन कल्पनाएँ न होकर उनके यशस्वी(?) पूर्वज अकबर द्वारा भली-भाँति रचित परम्परा में उनको विरासत में सिखाए गये थे। यह साधारण-सा सत्य भी भारतीय इतिहास के तथाकथित विद्वानों द्वारा उपेक्षित कर दिया जाता है, तभी तो वे अकबर की महानता के भ्रमजाल को स्थिर बनाए हुए हैं।

पानीपत के युद्ध के पश्चात् ६ नवम्बर, १५५६ के दिन जब अकबर के सम्मुख कायल तथा घबरे-बेतलावस्था में हेमू को लाया गया तब "अकबर ने अपनी टेंही तलवार से उसकी गर्दन पर प्रहार किया"—स्मिथ का कथन है। अकबर उस समय केवल १४ वर्ष का था। उस छोटी आयु से ही उसने कायरों की भीति अपने पराभूत तथा असहाय शत्रुओं की हत्या करने का दम प्रकट किया था। इस प्रकार का उसका लालन-पालन था।

पानीपत की लड़ाई के बाद अकबर की विजयी सेनाएँ "सीधी दिल्ली की ओर कूच कर गईं। जहाँ उनके लिए द्वार खोल दिए गये। अकबर की राज्य में जा घुसा। आगरा भी उसके अधीन आ गया। उस काल की वैशाख-प्रसा के अनुसार कल किए गये व्यक्तियों के सिरों पर एक स्तंभ बनाया गया। हेमू के परिवार के साथ ही विपुल कोष भी ले लिया गया था। हेमू का बुद्धिमान मोत के घाट उतार दिया गया।" (स्मिथ की पुस्तक का पृष्ठ ३०)।

खान जमान के बिटोह को दवाने के अवसर पर उसके विश्वासपात्र मोहम्मद मिरक को वधस्त्र पर पाँच दिन तक निरन्तर यातनाएँ दी गईं। प्रत्येक दिन एक लकड़ी के कटघरे में उसकी मुश्कें बाँधकर उसकी हाथी के सामने लाया जाता था। हाथी उसे मुँह से पकड़ता था, झकझोरता था और एक ओर से दूसरी ओर उछालता था—प्रबुलफजल ने इस लोमहर्षक बर्बरता का उल्लेख, भर्त्सना का एक भी शब्द कहे बिना किया है। (पृष्ठ ४८)।

पृष्ठ ६४ पर स्मिथ का कहना है कि चित्तौड़ के अधिग्रहण के पश्चात् अपनी सेनाओं के सतत प्रतिरोध किये जाने से कुपित होकर अकबर ने दुर्ग-रक्षक सेना तथा जनता के साथ क्रूरतम निर्भयता का व्यवहार किया—शाहशाह ने कलिंगान का सार्वजनिक प्रादेश दे दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप ३०,००० लोग मारे गये। बहुत-से लोग बन्दी बनाए गए।

अकबर के ऊपर सबसे बड़ा साधन, कदाचित् महान् इतिहासकार कर्नेल टाड के इन शब्दों में प्रस्तुत है कि "चित्तौड़ में शाहशाह की गति-विधियाँ सर्वोधिक निर्भय निषट प्रत्याचारों से भरी पड़ी हैं।"

सन् १५७२ के नवम्बर मास में जब अकबर अहमदाबाद के शासक मुल्कशहाह की हत्याकर बन्दी बना चुका था, तब उसने आज्ञा दी थी

कि विरोधियों को हाथियों के पैरों तले रौंदकर मार डाला जाय।

सन् १५७३ में सूरत का घेरा डालने वाली अकबर की सेनाओं के सेना-नायक हमजबान को उसकी जबान काटकर घोर बर्बरतापूर्ण दण्ड दिया गया।

"अकबर के निकट सम्बन्धी मसूद हुसैन मिर्जा की आँखों को सूई से सी दिया गया था जबकि वह उसके विरुद्ध बगावत करने के बाद पकड़ा गया था। उसके अन्य ३०० सहायकों के चेहरों पर गधों, भेड़ों और कुत्तों की खालें चढ़ाकर अकबर के सम्मुख घसीटकर लाया गया था। उनमें से कुछ को अत्यन्त घृणित क्रूर-कर्मों सहित मार डाला गया। अकबर को अपने तातारी पूर्वजों से पैतृक-रूप में अहीत ऐसी बर्बरताओं की अनुमति देते हुए देखकर अत्यन्त घृणावश जी ऊब जाता है"—स्मिथ ने कहा है।

पृष्ठ ८६ के अनुसार, जब अहमदाबाद के युद्ध में २ सितम्बर, सन् १५७३ को मिर्जा पराजित कर दिया गया था, तब विद्रोहियों के २००० से अधिक सिरों से एक स्तूप बनाया गया था।

बंगाल का शासक दाऊद खाँ जब पराजित कर दिया गया, तब उस समय के बर्बरतापूर्ण रिवाजों का अनुसरण करते हुए (अकबर के सेनानायक मुनीर खाँ ने) बन्दी लोगों को मोत के घाट उतार दिया। उन लोगों के कटे हुए सिरों की संख्या आकाश को छूने वाले घाठ ऊँचे-ऊँचे मीनारों को बनाने के लिए पर्याप्त थी (देखिए, अकबरनामा ३, पृष्ठ १८०)। प्यास से व्याकुल होने पर जब दाऊद खाँ ने पीने के लिए पानी माँगा, तब उन लोगों ने उसकी जूतियों में पानी भरकर उसके सामने पेश कर दिया।

ये उदाहरण पाठकों को इस बात का विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त होने चाहिये कि अकबर का शासन ऐसी निर्भय क्रूरताओं की कभी समाप्त न होने वाली कथा है।

स्मिथ द्वारा वर्णित अकबर के शासन में अकबर की घोबेबाजी के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ५७ वें पृष्ठ पर वह लिखता है: "दिल्ली के उत्तर में हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थस्थान धानेश्वर में घटी असाधारण घटना, जबकि शाही खेमा वहाँ लगा हुआ था, अकबर के चरित्र पर अत्यन्त असुखद प्रकाश डालती है।"

"पवित्र कुण्ड पर एकत्र संन्यासी कुंठ एवं पुरी वाले दो भागों में बंटे

हुए थे। पुरी वालों ने बादशाह से तिकायत की कि चूंकि कुरु वालों ने, प्रथम रूप में, पुरी वालों का बंठने का स्थान हथिया लिया था, इसलिए वे तो जनता से दान ग्रहण करने से वंचित रह गये थे। उन लोगों से (बादशाह द्वारा) कहा गया कि आपस में युद्ध करके निर्णय कर लो। दोनों ओर के लोगों को कत्वाचों से तैयार करके लड़ाया गया। इस लड़ाई में दोनों पक्षों ने जलवारों, तौर-कमानों का खूबकर प्रयोग किया। "यह देखते हुए कि पुरी वालों का पतन भारी था, अकबर ने अपने और भी खूंखार जंगली नेबकों को आदेश दिया कि वे निर्बल पक्ष की ओर मिल जाएँ।" यह तो रोटी के टुकड़े पर झगड़ने वाली दो बिलियों तथा उनका हिस्सा बराबर-बराबर बाँटने को साए बन्दर वाली ईसप की कथा से भी बदतर है। हिन्दू-बराबर बाँटने को साए बन्दर वाली ईसप की कथा से भी बदतर है। हिन्दू-सन्तानों-जनों के मध्य हुए इस झगड़े में अकबर यही कार्य करता रहा कि पृष्ठ में दोनों ही बगों के लोग अकबर के बर्बर सैनिकों द्वारा पूर्णतः समाप्त कर दिये गए। स्मिथ ने उल्लेख किया है कि : "अकबर के वृत्तलेखक ने चिकनी-नुपड़ी बातें बनाकर लिखा है कि इस खेल से अकबर को अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता हुई थी।"

हत्दीपादी के युद्ध में, जब समरांगण में राणा प्रताप की विशाल सेना के विरुद्ध अकबर की सेना भी सन्नद्ध खड़ी थी, तब यह वास्तव में राजपूत के विरुद्ध राजपूत का ही युद्ध था, क्योंकि अकबर ने अपने आतंकित करने वाले आदेशों से अनेक राजपूत-प्रमुखों को अपने सम्मुख समर्पण करने के लिए बाध्य कर दिया था, तथा अब उन्हीं के द्वारा उनमें सर्वाधिक स्वाभिमानी महाराणा प्रताप का मस्तक नीचा करना चाहता था। एक अवसर पर जबकि दोनों पक्ष समानानु युद्ध में लगे हुए थे, और यह पहचानना कठिन था कि कौन-सा राजपूत अकबर की सेना का है, और कौन-सा राणा प्रताप का, अकबर की ओर से लड़ रहे बदायूनी ने अकबर के सेनापति से पूछा कि वह कहीं गोली चलाए, जिससे केवल शत्रु ही मर जाए। सेनापति ने उत्तर दिया कि इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह राजपूत शत्रु पर जहाँ भी गोली चलाएगा, तथा जो भी कोई मरेगा, इस्लाम का ही लाभ होगा। बदायूनी का कहना है कि यह आश्वासन मिल जाने पर, वह विश्वास मन में जम जाने पर कि कोई सावधानी आवश्यक नहीं है, मैंने प्रसन्न होकर अन्धाधुन गोलियों की बौछार करनी शुरू कर

दी।

कनैल टाड का कहना है कि चित्तौड़ का अधिग्रहण कर लेने के पश्चात् "पहले विजेताओं द्वारा जितने स्मारक बच पाए थे, अकबर ने उनमें से प्रत्येक को अपरूप किया। बहुत समय तक अकबर की गणना गहाबुद्दीन, अलाउद्दीन और अन्य मूर्ति-भजकों के साथ की जाती रही, तथा प्रत्येक न्याय-दावे के साथ तथा इन्हीं के समान, उसने (राजपूतों के पैतृक उपास्य-देव) 'एकलिंग' की देव-मूर्ति को तोड़कर मस्जिद में कुरान पढ़ने के लिए आसन (मिम्बार) बनवाया।" यह तथ्य उस भरसक प्रयत्नपूर्वक प्रचारित धारणा को झूठा सिद्ध करता है, जिसमें कहा जाता है कि अकबर हिन्दुओं के प्रति अत्यन्त सहिष्णु था एवं उनके देवी-देवताओं का सम्मान करता था।

लगभग १६०३ में या उसके आसपास, एक दिन अकबर, जो दोपहर के समय विश्राम के लिए अपने कमरे में जाने का अभ्यासी था, घनपेक्षित रूप में जल्दी उठ बैठा, और तुरन्त किसी भी सेवक को न देख पाया। जब वह तख्त और पलंग के पास आया तो उसने शाही पलंग के निकट ही एक अभाग्य मशालची को नींद में लुढ़का हुआ पाया। इस दृश्य से कुपित होकर अकबर ने आदेश दिया कि उस मशालची को मोनार से नीचे जमीन पर पटक दिया जाय। उसकी देह के टुकड़े-टुकड़े हो गये।

पृष्ठ १४५ व १४६ पर स्मिथ पर्यवेक्षण करता है : "धूर्तगालियों के प्रति अकबर की नीति अत्यन्त कुटिल एवं धूर्ततापूर्ण थी। मित्रतापूर्वक आमंत्रित किये जाने पर जब धर्म-प्रचारक उसके दरबार में पहुँचने ही वाले थे, तब उसी क्षण के लिए उसने यूरोपियनों के किलों को हस्तगत करने के लिए अपनी एक पूरी फौज का संगठन कर दिया था। अकबर की दोगली नीति के प्रत्येक लक्षण देखकर ईसाई-धर्म प्रचारक अत्यन्त चिन्तित हुए थे—एक ओर तो अकबर मित्रता की इच्छा का डोंग करता था, और दूसरी ओर वास्तव में शत्रुतापूर्ण कार्रवाइयों के आदेश देता था।"

सन् १६०० के अगस्त मास में जब अकबर की फौजों ने असीरगढ़ किले को घेर तो लिया था किन्तु उसको विजित करने की कोई आशा न रही थी, तब, विन्सेण्ट स्मिथ का २०वें पृष्ठ पर कहना है, "अकबर ने अपने दक्ष उपायों—अभिसन्धि तथा धूर्तता—का सहारा लेने का निश्चय

किया। इसलिए उसने (भसीरगढ़ के) राजा मिरान बहादुर को परस्पर बातचीत के लिए आमंत्रित किया तथा स्वयं अपनी ही कसम खाकर विश्वास दिलाया कि घाघन्युक को क्षान्तिपूर्वक अपने घर वापस जाने दिया जायगा। तदनुसार मिरान बहादुर समर्पण का भाव प्रदर्शित करते हुए दुपट्टा मोड़कर बाहर आया—अकबर बुत की भाँति निश्चल बैठा रहा—मिरान बहादुर तीन बार सम्मान प्रदर्शित कर ज्योंही अकबर की ओर बढ़ रहा था कि एक मुगल अधिकारी ने उसको गर्दन से पकड़ लिया और नीचे पटककर भूमि पर साष्टांग प्रणाम करने के लिए विवश कर दिया—वह ऐसी पद्धति थी जिसपर अकबर बहुत बल देता था। उसको बन्दी बना लिया गया और कहा गया कि वह किले के सेनापति को समर्पण करने के लिए लिखित आदेश दे। सेनापति ने समर्पण करना स्वीकार नहीं किया, और राजा की मुक्ति के लिए उसने अपने बेटे को भेज दिया। उस युवक से पूछा गया कि क्या उसका पिता समर्पण के लिए उद्यत था? इस प्रश्न का मुँहताड़ उत्तर देने पर उसके पेट में छुरा भोंक दिया गया। इस के सेनानायक को सूचित कर दिया गया कि उसका पुत्र उस समय मार डाला गया था जबकि वह स्वयं तो संधि एवं समर्पण के लिए तत्पर हो गया था किन्तु दुर्गरक्षकों को भाषण कर रहा था कि आखिरी व्यक्ति के रक्त की अन्तिम बूंद तक युद्ध लड़ा जायगा।" यह उदाहरण सिद्ध करेगा कि अकबर की नीचता में सभी बातें न्याय्य थीं और छल-कपट घृण्य सीमाओं से भी बढ़ सकता था।

अकबर की विजयों का प्रमुख उद्देश्य धन-सम्पत्ति, स्त्री, क्षेत्र तथा सत्ता को लोलुपता थी। रणपन्थोर की सन्धि में हम देख चुके हैं कि पराजित लोग तदा ही अपनी महिलायें अकबर को सौंप देने के लिए बाध्य किये जाते रहे हैं। बाजबहादुर के विरुद्ध अकबर की चढ़ाई में हम पहले ही पर्यवेक्षण कर चुके हैं कि स्त्रियों के प्रति अकबर की इन्द्रिय लोलुपता ने ही उसको प्रागरा से दूर चलकर घाघम खी के विरुद्ध सशस्त्र सेनाएँ भेजकर, घाघम खी द्वारा बाजबहादुर की महिला-वर्ग की महिलाओं के अनुचित रूप से हृदय लेने के कारण उपर्युक्त कार्यवाही के लिए बाध्य किया।

बुंदेलखण्ड की रानी दुर्गावती के विरुद्ध अकबर की चढ़ाई के सम्बन्ध में मिथ ने (पृष्ठ ५०-५१ पर) बिलाप करते हुए कहा है : "इतनी सत्त्वरिख

राजकुमारी के ऊपर अकबर का आक्रमण अतिक्रमण के प्रतिरिक्त और कुर्छन था। यह पूर्णरूपेण अन्यायपूर्ण और विजय तथा लूट-ससोट के प्रति-रिक्त सभी कामनाओं से ही था। पर्याप्त शक्ति से सम्पन्न सामान्य राजोचित महत्वाकांक्षा के परिणामस्वरूप ही अकबर की विजय हुई। रानी दुर्गावती की अत्युत्तम सरकार के ऊपर नैतिक न्याय के अभाव का आक्रमण उन सिद्धान्तों को मानकर हुआ था, जिनके फलस्वरूप काश्मीर, अहमदनगर तथा अन्य राज्यों की विजय की गई। किसी भी युद्ध को प्रारम्भ करने में अकबर को कभी भी कोई संकोच, लज्जा का अनुभव नहीं हुआ, और एक बार भगड़ा आरम्भ कर देने के पश्चात् वह शत्रु पर अत्यन्त निर्दयतापूर्वक प्रहार करता था—उसकी गतिविधियाँ अन्य योग्य, महत्वाकांक्षी तथा निष्ठुर राजाओं की भाँति थीं।"

मेवाड़ के महाराणा प्रताप के विरुद्ध भीषण निरंकुश आक्रमण का वर्णन करते हुए स्मिथ ने पृष्ठ १०७ पर उल्लेख किया है : "राणा पर आक्रमण करने के लिए किसी विशेष घटना को कारण मानना कोई आवश्यक बात नहीं है। सन् १५७६ की लड़ाई राणा का नाश करने के लिए एवं अकबर के साम्राज्य से बाहर स्वाधीनता को कुचल देने के लिए की गई थी। अकबर ने राणा की मृत्यु तथा उसके क्षेत्र को हृदय लेने की कामना की थी।"

राणा प्रताप और अकबर के मध्य परस्पर संघर्ष की सही समझ ही किसी भी विचारवान प्रेक्षक को परम महान् के रूप में माने जाने वाले अकबर की निन्दा करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। चूँकि दोनों ही परस्पर विरोधी कार्य में लगे हुए थे तथा एक-दूसरे के प्राण लेने के लिए संघर्षरत थे, इतिहास का कोई भी विद्वान् उनमें से एक को अन्याय, अत्याचार तथा दमन का प्रतिनिधि मानने का उत्तरदायित्व दूर नहीं कर सकता। चूँकि राणा प्रताप तो अनुत्तेजित आक्रमण के विरुद्ध लड़ाई में संलग्न इस भूमि की सन्तान था, अतः यह निष्कर्ष स्वतः निकलता है कि एक सामन्त-राज्य के पश्चात् दूसरे सामन्त राज्य पर आक्रमण कर निरंकुश-नरसंहार तथा अन्य अपराधों के लिए अकबर पर दोष लगाना ही चाहिए। फिर भी, विचित्रता यह है कि अकबर को देवदूत के रूप में प्रस्तुत करने वाली अनेक स्तुतियों से भारतीय इतिहास बुरी तरह से तदा

पड़ा है।

भारतीय इतिहास में प्रविष्ट अनेक गृहित तथा कल्पित बातों में से एक यह है कि अकबर का देवदूत-स्तरीय गुण इस बात से सिद्ध होता है कि उसने 'दीन-इलाही' नामक एक लौकिक धर्म की स्थापना की थी। यह सत्य का पूर्ण अपभ्रंश है। अकबर की गरम-मिजाजी और बड़प्पन की भावना इस सीमा तक पहुँच चुकी थी कि वह धर्म के नाम पर जनता द्वारा मुत्ताओं और मोलवियों की अवज्ञा सहन नहीं कर सकता था। अकबर इस बात पर स्वयं बल देता था कि वह स्वयं ही देवांग था—सर्वोच्च लौकिक तथा आध्यात्मिक सत्ता था, तथा अन्य किसी भी व्यक्ति के प्रति सम्मान प्रदर्शन किसी भी कारणवश नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा हठ करना तो समस्त धर्मों का अस्वीकरण था, तथा स्त्री-पुरुषों के भाग्यों पर लम्पट और निरंकुश-सत्ता स्वयं में केन्द्रित करने का यत्न-मात्र था।

उस दिशा में उसने लोगों को बाध्य किया कि वह एक-दूसरे से मिलकर 'अल्लाह-ही-अकबर' कहकर सम्बोधन करें, जिसका एक अर्थ यह है कि 'ईश्वर शक्तिमान है', किन्तु अधिक सूक्ष्मतम विचार करने पर ऐसा अर्थ प्राप्त होता है कि "अकबर स्वयं ही अल्लाह है।"

पृष्ठ १२७ पर स्मिथ ने व्याख्या की है : "अनेकार्थक शब्द 'अल्लाह-ही-अकबर' के प्रयोग ने अत्यन्त कटु आलोचनाओं को अवसर दिया। अबुल फजल भी स्वीकार करता है कि इस नये नारे ने उग्र भावनाओं को जन्म दिया। अनेक अवसरों पर वह (अकबर) स्वयं को ऐसा व्यक्ति प्रस्तुत करता था जिसने घन्ट और भनन्त के मध्य की खाई पाट दी हो।"

अपने धर्म-प्रचार की असफलता पर दुःखित हृदय हो पादरी मनसरेट ने (पृष्ठ १४० पर) वर्णन किया है : "यह सन्देह किया जा सकता है कि ईसाई पादरियों को उन्हालूहीन (अकबर) द्वारा किसी उदार-भावना से प्रेरित होकर नहीं, अपितु उत्पुङ्गता-वश अथवा आत्माओं के सर्वनाश के लिए किसी नयी बस्तु का प्रारम्भ करने के लिए बुलाया गया था।"

स्मिथ ने पृष्ठ १२५ पर वर्णन किया है कि पादरियों द्वारा भेंट में दी गई बाइबल किन प्रकार "अकबर ने बहुत दिनों बाद वापिस लौटा दी थी।"

स्मिथ ने पृष्ठ १२३ पर पर्यवेक्षण किया है : "सत्य यह है कि अकबर

के ढोंगी धर्म का अस्तित्व, अणभंगुर तथा आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के तत्त्वों पर अपनी प्रभुसत्ता प्रस्थापित करने में ही है। गुरुशाह अकबर के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने की चार श्रेणियाँ सम्पत्ति, जीवन, सम्मान तथा धर्म का बलिदान करने में समझी जाती थी।" (पृष्ठ १५४)।

"सामान्य सहनशीलता के सुन्दर वाक्यों के होते हुए भी, जोकि अबुल फजल की रचनाओं तथा अकबर के कथनों में अत्यन्त विपुल मात्रा में उपलब्ध होते हैं, (अकबर द्वारा) अत्यन्त असहनशीलता के अनेक क्रूर-कर्म किये गये थे।" (पृष्ठ १५६)।

अकबर के राजनीतिक धर्मालम्बर के सम्बन्ध में स्मिथ ने (पृष्ठ १६० पर) कहा है : "सम्पूर्ण योजना उपहासास्पद मिथ्याभिमान तथा निरंकुश स्वेच्छाचारिता के विकास का परिणाम थी।"

अकबर के दरबार में उपस्थित ईसाई पादरी जेविपर ने अकबर द्वारा स्वचरणों की घोवन (पगों को घोने के पश्चात् अवशिष्ट मैला जल) जन सामान्य को पिलाने के विविध उदाहरण का उल्लेख किया है। स्मिथ ने (पृष्ठ १८६ पर) कहा है कि जेविपर ने लिखा है कि "अकबर अपने आपको पैगम्बर की भाँति प्रस्तुत घोषित करता था। इसके लिए जनता को मान लेना होता था कि उसके चरणों की घोवन (जल) पी लेने से रोगी, अकबर के देवदूत-सदृश चमत्कार से ठीक हो जाते हैं।" उसी पृष्ठ पर लिखी हुई पदटीप में तत्कालीन वृत्त-लेखक बदायूनी के उल्लेखानुसार कहा गया है कि इस विशेष प्रकार का अपमानजनक व्यवहार केवल मात्र हिन्दुओं के लिए ही सुरक्षित था। बदायूनी कहता है—"यदि हिन्दुओं के अतिरिक्त और लोग आते तथा किसी भी मूल्य पर अकबर की भक्ति की इच्छा प्रकट करते, तो अकबर उनको भिड़क देता था।"

पूर्णरूपेण दुरवस्था तथा अत्यन्त दीना-हीना होने पर सर्वस्व अर्पण महिलाएँ यातना-ग्रस्त हो अन्तिम उपाय के रूप में ही अकबर के चरणों में अपने बच्चों को लिटा देती थीं तथा दया की भीख माँगती थीं। जैसा-कि ऊपर पहले ही देखा जा चुका है, अनेक रूपों में दमन की प्रक्रिया नित्य-प्रति की बात होने के कारण, अकबर के दरबार के द्वार पर महिलाओं और बच्चों की अपार भीड़ हुआ करती थी। किन्तु अकबरी दरबार के धूर्त सरदारों ने उन पादरियों को इसकी व्याख्या में ऐसे

समझाया मानो अकबर को महान् फकीर मानकर वे उसका आशीर्वाद लेने के लिए एकत्र हों। आशीर्वाद के लिए तो वे निश्चय ही प्रार्थना करते थे, किन्तु उस भावना से नहीं, जिस भावना के साथ इसका छद्म-पूर्वक सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। उन लोगों के ऊपर बीत रहे उत्पीड़न तथा नारकोस-जातना से मुक्ति के लिए वे महिलाएँ एवं बच्चे कुछ छुटकारा चाहते थे।

अकबर द्वारा अनेक राजपूत महिलाओं से विवाह को बहुधा तोड़-मरोड़ कर उसकी तबाहकामिनी सहयोग और सहनशीलता की भावना के अन्तर्गत उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह जले पर नमक छिड़कना तथा कामुकता (लम्पटता) को प्रोत्साहन देना ही है। यह भली-भाँति ऊपर दिखाया जा चुका है कि अकबर अपने सम्पूर्ण राज्य को बड़ा भारी हरम समझता था, तथा सभी पराभूत नरेशों की महिलाओं को, उन नरेशों पर जोर-जबरदस्तीकर उन्हें बाध्यकर अपने अधीन कर लेता था। अपने शिकार व्यक्तिओं का पूर्ण तिरस्कार करने के लिए यह उसके अनेक उपायों में से एक था। हिन्दू-महिलाओं को बलपूर्वक अपने हरम में ठूस लेना सभी शासक-कारियों की घृण्य प्रथापरम्परा रही है। अनेक कारणों से अकबर को इस घोर विशेष दम्भान थी। अतः इस बात को विशेष गुण बढ़कर प्रस्तुत करना उस अष्टता, मिथ्यावाद और वाक्छल की परा-काष्ठा है, जिससे भारतीय इतिहास बुरी तरह ग्रस्त है।

क्या अकबर ने अपने घर की एक भी (मुगल) महिला कभी किसी हिन्दू को विवाह में दी ?

अकबर के शासन के वर्षानों के सम्बन्ध में जिस सफेद झूठ को बार-बार दुहराया जाता है, वह यह है कि उसने जान-लेवा जिजिया-कर समाप्त करवा दिया था। यह कर भारत के विदेशी-मुस्लिम-शासकों द्वारा यहाँ की बहुसंख्यक हिन्दू-प्रजा पर इस आधार पर लगाया जाता था कि भारत मुस्लिम देश था, तथा चूँकि उदारता एवं सहिष्णुता की भावना से ही शासन ने यहाँ की बहुसंख्या की शासक के धर्म से इतर धर्म को चालू रख सकने की छूट दे रखी थी, इसलिए जनता को उस (शासक) की सहिष्णुता के लिए जैसे भी हो यह कर देना ही चाहिए। इस प्रकार यह धार्मिक-भेद छिपाने के लिए धूस एवं रक्तों के प्रतिरिक्त कुछ नहीं था, जिसे शासक-

वर्ग ने, अपनी असहाय प्रजा पर बलात ठूस दिया था।

जिजिया से मुक्ति दिलाने वाला तो दूर, अकबर तो स्वयं इसकी पूर्ण बदले की भावना से बसूल करता था। रणधम्मोर की सन्धि की एक शर्त में बूंदी के शासक को जिजिया-कर से विशेष छूट देने की व्यवस्था की गई थी। (पृष्ठ १२० पर वर्णित) जैन मुनि हीरविजय गुरि की याका के सम्बन्ध में हम सुनते हैं कि उसने फिर जिजिया-कर से मुक्ति के लिए कहा था। ये बातें सिद्ध करती हैं कि जिजिया-कर से विशेष छूट पाने के लिए प्रार्थना करने को लोग बार-बार बाध्य होते थे। इससे भी बढ़कर बात यह है कि अकबर ने यदा-कदा आए किसी धागन्तुक को कदाचित् यह विश्वास दिलाकर वापस भी भिजवा दिया हो कि उसको जिजिया से विशेष छूट मिल जाएगी, तो भी अब हम अकबर के उन ढंगों को पर्याप्त रूप से जानकर विश्वास करने लगे हैं कि यह वाक्छली धूर्त पजमान द्वारा दिया गया केवल थोथा आश्वासन मात्र था।

भारतीय इतिहास में प्रस्तुत किये जा रहे देवदूत के रूप की तो बात ही क्या, अकबर तो, कदाचित्, विश्व भर में सबसे धृष्ट व्यक्ति था। उसके प्रति रोष इतना अधिक था कि स्वयं उसके अपने सड़के जहाँगीर सहित-असंख्य लोगों ने अकबर की हत्या का प्रयत्न किया था।

स्मिथ ने २२०वें पृष्ठ पर वर्णित किया है : "सन् १६०२ के पूरे वर्ष भर शाहजादा सलीम अपना दरबार इलाहाबाद में लगाता रहा, तथा अपने अधीन किए गए प्रान्तों का स्वयं शाही बादशाह बना रहा। बाद-शाहत पर अपने दावे का बलपूर्वक प्रदर्शन उसने सोने और ताँबे के सिक्के चलाकर किया; और उसने अपनी घृष्टता का प्रकटीकरण भी उन दोनों सिक्कों के नमूने अकबर के पास भेजकर किया। अकबर के साथ सन्धि-समझौते की बात करने के लिए अपने दूत के रूप में उसने अपने सहायक दोस्त मोहम्मद को काबुल भेजा।" २३०वें पृष्ठ पर स्मिथ हमें बताता है, कि यदि जहाँगीर का विद्रोह सफल हो जाता तो उसके पिता की मृत्यु विद्रोह का निश्चित परिणाम थी। अकबर की मृत्यु से सम्बन्धित पृष्ठ २३२ पर भी गई पदटीप में कहा गया है "कि यह निश्चित है कि जहाँगीर ने अत्यन्त उग्रतापूर्वक अपने पिता की मृत्यु की कामना की थी।"

पृष्ठ १६१ पर पदटीप में कहा है : "सन् १५६१ में ही जब अकबर

पेट-बंद एवं मरोड़ से पीड़ित था, तब उसने अपना संदेह स्पष्ट किया था कि हो सकता है उसके बड़े लड़के ने जहर दे दिया हो। ताज की इन्तजारी करते रहने से अब उसके लड़के ने तहत के लिए अकबर के विरुद्ध की जाने वाली लड़ाई में पुर्वताली सहायता उपलब्ध करने की कामना की थी।"

स्मिथ पृष्ठ २३६ पर पाठकों को बताता है : "अकबर के सम्मुख प्रायः एक न एक विद्रोह उपस्थित रहता ही था। फौजदारों द्वारा संक्षेप में वर्णित तथा प्रांतों में व्यवस्था फैलाने के अलिखित अवसर अवश्य ही असंख्य रहे होंगे।"

अकबर ने अपने समर्थकों में, जिन्होंने एक-एक कर उसके विरुद्ध विद्रोह किया, बरमखा, खान जमन, घासफ खाँ (उसका वित्त मंत्री), शाह मसूर तथा सभी मिर्जा लोग थे—वे मिर्जा लोग जिनका शाही-परिवार से रक्त-सम्बन्ध था।

२५०वें पृष्ठ पर स्मिथ ने इतिहासकार ह्वीलर के इस कथन का उल्लेख किया है कि अकबर ने सवेतन एक कर्मचारी रखा हुआ था, जिसका कर्तव्य अकबर से अति अप्रसन्न व्यक्ति को जहर खिला देना भर था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार अकबर की मृत्यु जहर की उन गोलियों की मूल से स्वयं खा लेने से हुई थी, जो उसने मानसिंह के लिए रखी हुई थी।

२४१वें पृष्ठ पर स्मिथ ने उन लोगों की सूची दी है जिनको अकबर ने छप रूप में फाँसी प्रथवा विष द्वारा मौत के घाट उतार दिया था।

(१) सन् १५६५ में खालिबर में कामरान के बेटे का वध।

(२) मक्का से वापस आए हुए मल्हूम-मुल्क और शेख अब्दुरनबी की घतवन्त संदिग्ध-वस्था से मृत्यु। इकबालनामा में स्पष्टोक्ति है कि शेख अब्दुरनबी को अकबर के आदेशों के पालन-हेतु अबुल फजल द्वारा मार डाला गया था।

(३) उसी समान रूप में मामूम फरगुदी की सन्देहास्पद मृत्यु।

(४) और मृदङ्गल-मुल्क तथा एक और व्यक्ति की नाव दलदल में फँस जाने के पक्षस्थ मृत्यु।

(५) एक के बाद एक उन सभी मुखियाओं को अकबर ने मौत के

पास भेज दिया जिनपर उसे शक था (बदायूनी, भाग २, पृष्ठ २८५)।

(६) रणथम्भोर दुर्ग में हाजी इब्राहिम की रहस्यमय मृत्यु।

ऊपर दी गई सूची में, मैं बरमखा और जयमल की मृत्यु भी सम्मिलित करना चाहूँगा क्योंकि जयमल की पत्नी की ओर घातक हुए अकबर के इशारे पर ही यह मृत्यु-कांड घटा होगा, क्योंकि दोनों की मृत्यु के समय की परिस्थितियों से ऐसा ही प्रतीत होता है।

अकबर द्वारा दिए गए दण्डों का स्मिथ ने २५०वें पृष्ठ पर 'घतवन्त भयावह' प्रकार का वर्णन किया है। मृत्यु-दण्ड के साधनों में सम्मिलित प्रकारों में थे—सूली पर चढ़ाना, हाथियों के पैरों तले रौदवाना, गद्देन उड़ाना, सूनी पर लटकाना तथा अन्य प्रकार के मृत्यु-दण्ड। दण्ड के छोटें रूपों में अंगच्छेदन तथा भयानक कोड़ों की मार का आदेश सामान्य रूप में दिया जाता था। नागरिक अथवा अपराधी कारंवाइयों के कोई अभिलेख नहीं लिखे जाते थे। न्यायाधीशों का कार्य संपन्न करने वाले व्यक्ति कुरान के नियमों का पालन करना पर्याप्त समझते थे। पुराने ढंग से निरपराधिता का निर्णय करने को अकबर ने प्रोत्साहित किया। दक्षिण केनसिंगटन में अकबरनामा के समकालीन उदाहरणों में से एक में बधस्थल की भयानकता का वास्तविक मूल रूप चित्रित किया गया है।

अकबर का समकालीन मनसरेंट कहता है, "अकबर पर्याप्त कृपण तथा धन को बचाए रखने वाला था।" पृष्ठ २४३ पर स्मिथ कहता है : "बादशाह स्वयं को सारी प्रजा के उत्तराधिकारी के रूप में समझता था, तथा मृतक की सम्पूर्ण सम्पत्ति को निष्ठुरतापूर्वक ग्रहण कर लेता था। बादशाह की कृपा पर मृतक के परिवार को फिर से काम-धंधा चालू करना पड़ता था (पृष्ठ २५२)। अकबर व्यापार का क्रियाशील व्यक्ति था, न कि भावुक जनसेवक—तथा उसकी सम्पूर्ण नीतियाँ सत्ता और वैभव के अधिग्रहण के प्रयोजन से निर्दिष्ट होती थीं। जागीर, अश्वपालन आदि की सभी व्यवस्थाएँ इसी प्रयोजन से की जाती थीं—अर्थात् ताज की शक्ति, वश तथा वैभव की अभिवृद्धि।"

यद्यपि अकबर की माता अकबर से केवल वर्ष भर पूर्व ही मरी थी—अर्थात् अकबर जब विजय कर चुका था तथा बहुत अधिक सौन्दर्यी और दमन-चक्र से विपुल धनराशि संग्रहीत कर चुका था, तब भी वह

उसकी मृत्यु-समय की इच्छा का प्रवर्तन करने एवं उसकी समस्त सम्पत्ति हथ पर जाने का लोभ संवरण न कर सका। इसका वर्णन करते हुए स्त्रिय ने पृष्ठ २३० पर कहा है : "मृता अपने घर में एक बड़ा भारी कोष एवं बसीयतनामा छोड़ गई थी जिसमें आदेश था कि वह कोष उसके पुरुष वंशजों में बाँट दिया जाय। उसकी सम्पत्ति को अधिग्रहण करने की अकबर की इच्छा इतनी तीव्र थी कि वह उसकी सम्पत्ति का लोभ संवरण न कर सका, और अपनी मृता माँ की बसीयत की शर्तों का ध्यान किए बिना ही उसने सारी सम्पत्ति स्वयं अधिग्रहीत कर ली।"

मुस्लिम-पूर्व भारतीय जासकों के वर्णनों से यहीत यज्ञ-गाथाओं से भारत के अन्य देशी जासकों को विभूषित करने के लिए भारत के अप-भ्रंश इतिहास में प्रारम्भ से ही भरसक प्रयत्न किया गया है। ऐसे ही अपभ्रंश कथा का एक उल्लेखनीय उदाहरण अकबर के राज्य के वर्णनों में मिलता है। महाराजा विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है, उसी की तर्ज करते हुए भारत के मध्यकालीन इतिहास में जोड़ दिया गया एक भ्रामक तत्त्व यह है कि अकबर के पास भी ऐसे ही विशेष प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों का समूह था, जिनको अकबर के दरबार में 'नवरत्न' कहते थे। अकबर उनको मूर्खों के समूह से अधिक कुछ नहीं समझता था। यह अकबर द्वारा उल्लेख किए गये उस विनिष्ट संदर्भ से स्पष्ट है जिसमें वह (पृष्ठ २५८) पर कहता है : "यह भगवान् की अनुमति ही थी कि मुझे कोई योग्य मन्त्री न मिला था, अन्यथा शायद यही सम्भूते कि मेरे उपाय उन लोगों के द्वारा ही निर्धारित थे।"

इतना ही नहीं, इतने अधिक प्रचारित व्यक्ति भी किसी योग्य न थे। दोहराने की वृत्ति से धन-वसूल करने की उस प्रणाली के निर्माण में लगा हुआ था, जिससे उनसे धन-वसूली के लिये उनको कोड़े लगाए जाते थे अथवा उन्हें अपनी पत्नी तथा बच्चे बेचते पड़ते थे। अबुल फजल 'निलसज बाग़लुस' का काला टीका माथे में लगा चुका था और स्वयं काहुलाहा मल्लोस द्वारा मरवा डाला गया था। अकाल-मृत्यु प्राप्त फैजी नामुली-का कवि था जिसको एक ऐसे दरबार में इकट्ठा दिया गया था

जहाँ परले दरजे की परान्तभोजी चापलूसी प्रचलित थी। उसके सम्बन्ध में स्त्रिय ने पृष्ठ १३०-१३२ पर कहा है : "ब्लोचमन ने कहा है कि दिल्ली के अमीर खुसरो के पश्चात् मुहम्मदी भारत में फैजी से बढ़कर कोई अन्य कवि नहीं हुआ है।" ब्लोचमन के निर्णय की न्याय्यता को स्वीकार करते हुए मैं केवल यही कहता हूँ कि मुहम्मदी भारत के अन्य कवियों का स्तर अवश्य ही बहुत निम्न रहा होगा।" वीरबल पुद् में हल हुआ। विचार किया जाता है कि उसे एक जागीर दी गई थी, जिसका मुताबिक उमें कभी प्राप्त नहीं हुआ। उसके नाम पर सुप्रसिद्ध बुद्धि-नातुर्य, हास्य-व्यंग्य एवं हाजिर-जवाबी की कथाएँ वास्तव में किसी अज्ञात व्यक्ति का कला-कौशल है जो वीरबल के नाम एवं दरबार-संगति के नाम का लाभ उठाता था। तथाकथित वित्तमन्त्री शाह मंसूर का वध तो स्वयं अबुल-फजल ने अकबर के ही आदेश पर किया था। इस प्रकार प्रारम्भ से पल तक यह एक ऐसी दुःखान्त कथा है कि ये सुप्रचारित नवरत्न ऐसे असहाय व्यक्ति सिद्ध होते हैं जो एक भ्रष्ट एवं दमनकारी प्रशासन के नारकीय यन्त्र में अस्त थे।

अपनी महिलाओं, पुत्रों तथा भाई-भतीजी की प्रमुख संख्या अकबर की सेवा में नियुक्त कर देने के पश्चात् भी बदले में निरक्ष व्यवहार प्राप्त होने से अपनी विपन्न स्थिति से क्लान्त हो राजा भगवानदास ने एक बार स्वयं ही अपना छुरा अपने पेट में भोंक लिया था। जराब के नशे में मस्त अकबर द्वारा एक बार मानसिंह का गला दबाया गया था, और फिर जहर भी खिलाया जाना था, किन्तु भूल से अकबर ही स्वयं वे गोलिएँ खा बैठा। मानसिंह की बहुत मानबाई, पूर्ण सम्भावना यह है कि, मार डाली गयी थी, क्योंकि जहाँगीर-नामा के एक संस्करण में कहा गया है कि उसने तीन दिन तक अन्नग्रहण किया था और मर गई, किन्तु दूसरे संस्करण में लिखा है कि उसने विष खा लिया और मर गई। यह भली-भाँति ज्ञात है कि किसी के मरने के लिए तीन दिन का अन्नग्रहण पर्याप्त नहीं है; इसके साथ ही जहाँगीरनामा स्वयं भी भूठ का पिटारु कुल्पात है। स्वयं जहाँगीर भी अत्यन्त क्रूर तथा कुसन्त्रणाकारी बादशाह माना जाता है जिसने अपने बाप को जहर दिया, नूरजहाँ के प्रथम शोहर जेर अफगन को मरवा डाला तथा जो जीवित व्यक्ति की खाल खिन्नवाने के

दुःख की अव्यक्त इमानतापूर्वक देख सकता था।

अकबर के दरबार के एक निश्चय दसवस्त ने अपनी हत्या छुरा धोकर कर ली थी। हिन्दुओं द्वारा ऐसी समस्त आत्महत्याएँ, तत्कालीन मुस्लिम अभिनेताओं में, पागलपन के दौरों में की गई वर्णित हैं। यह वर्णन इनके मन में अत्यन्त कल्प है। अर्थात् मुगल दरबारों में स्थिति इतनी असह्य थी कि अपने जीवन, सम्मान, महिलाओं, घर की पवित्रता तथा धार्मिक-मान्यताओं के अपहरण से विभुव्य हिन्दू लोग भगनाशा, पागलपन तथा मृत्यु को प्राप्त होते थे। प्रजा की खाल उतार लेने वाली कर-अवस्था को रचना कर टोडरमल ने यद्यपि अपनी आत्मा को अकबर के हाथों देव दिया था, तथापि उसके भी उस पूजास्थल को (अकबर द्वारा) हटवा दिया गया, जिसमें वे मूर्तियाँ भी सम्मिलित थीं जिनकी वह पूजा करता था, और हिन्दू के नाम अत्यन्त श्रद्धा रखता था। उन दिनों के रुढ़िगत हिन्दू को, जबकि स्वयं उसके ही घरेलू लोग भी बिना स्नान किये तथा बिना पवित्र परिधान धारण किये उसकी मूर्तियों का स्पर्श नहीं कर सकते, तब मूर्ति-पूजा के विरोधी मुस्लिमों द्वारा बिना आगा-पीछा सोचे उन मूर्तियों को हटा दिया जाकर मृत्यु समान अपवित्रीकरण ही था। फिर भी, ऐसे कार्य अकबर द्वारा करवाए जाते थे। इनके शिकार होने से टोडरमल खाँस जैसे व्यक्ति भी घबहते न रहे थे, जिन्होंने अकबर की सेवा में अपना सम्पूर्ण जीवन, सम्मान गिरवी रख दिया था, तथा उसको गँवा भी बैठे थे। इसी में विश्वास हो जाने पर टोडरमल ने त्यागपत्र दे दिया था और वह बनारस चला गया था।

एक पृष्ठ पर स्मिथ कहता है : "अकबर तब प्रयाग की ओर गया और वहाँ से बनारस—जिसको उसने पूर्णरूप से ध्वस्त कर दिया क्योंकि लोग इनसे उल्लेखित थे कि उन्होंने अपने द्वार बन्द कर लिये थे।"

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयाग में नदी के घाट तथा पुराने भवन अभी नहीं हैं। आज प्रयाग (इलाहाबाद) में जो कुछ भी है, वह पवित्रताओं के विकृतिरियन बंगले ही हैं। उनके अतिरिक्त, इलाहाबाद नहीं है कि पुरानी पुण्य नगरी होने के कारण, भव्य किले के साथ प्रवाहित होने वाली यमुना और गंगा के दोनों तटों पर सुन्दरतम और ऊँचे-ऊँचे

घाट थे। बनारस में बने घाटों की छटा को निष्प्रभ करने वाले प्रयाग-स्थित भव्य उच्च घाटों को धूलि-धूसरित कर देने का पूर्ण कलंक अकबर के माथे पर ही लगेगा। यह भी हुआ हो कि प्रचलित विश्वास के विपरीत बनारस-स्थित प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ-मन्दिर सबसे पहले अकबर द्वारा ही ध्वस्त किया गया हो, जबकि उसने वहाँ की जनता से भीषण बदला लिया। तथ्य रूप में, बदले का भी कोई प्रश्न नहीं उठता। राज-परिवार के प्रति अनन्य भक्ति के लिए भारतीय लोग परम्परागत रूप से विस्मृत हैं। यदि अकबर की यात्रा अतिशय-शून्य रही होती, तो इसने बनारस निवासियों के हृदयों में गहनतम श्रद्धा के अतिरिक्त अन्य भावनाओं को अवसर ही नहीं दिया होता। किन्तु इसी एक तथ्य से कि अकबर के विरुद्ध उन निवासियों ने अपने-अपने द्वार बन्द कर दिए थे, यह सिद्ध होता है कि बनारस में अकबर का प्रवेश अवश्य लम्पटता तथा सर्वशक्ति के प्रयोजन से हुआ होगा।

हम पहले देख चुके हैं कि अकबर अपने सम्मुख सभी लोगों के पूर्ण पराभव का आग्रही था। अपने पैरों को धोने के बाद उस जल को अन्य लोगों को पीने के लिए उसने जनता को बाध्य किया। गुप्त प्रार्थना के पश्चात् बचा हुआ जल भी उसने अन्य लोगों को पिलाया। तत्कालीन एक अंग्रेज प्रवासी राल्फ फिच ने उल्लेख किया है कि "अकबर के दरबार के अंग्रेजी जौहरी लीड्स को एक मकान और ५ गुलाम दिए गये।" पृष्ठ १४७ पर स्मिथ ने कहा है : "ईसाई पादरी आक्वावीवा को, जबतक वह दरबार की सेवा में रहा, केवल मात्र जीवनाधार खाद्य ही मिला। इसलिए विदा होते समय जो विशेष अनुग्रह उसने अकबर से चाहा, वह था एक रूसी गुलाम-परिवार को अपने साथ ले जाना (जिनमें पिता, माता, दो बच्चे तथा कुछ विशेष व्यक्ति थे जो सदैव मुसलमानों में से ही थे, यद्यपि नाम भर को वे लोग ईसाई होते थे)।"

यह प्रदर्शित करता है कि अकबर ने विभिन्न राष्ट्रियता वाले असंख्य लोग गुलाम बना रखे थे। पृष्ठ १५६ पर, स्मिथ दावे के साथ कहता है कि, "सन् १५८१-८२ के वर्षों में स्पष्ट रूप में नई पद्धति का विरोध करने वाले शेरों और फकीरों की एक भारी संख्या को अधिकतर कांधार की ओर देश निकाला दे दिया गया था, जहाँ वे संभवतः गुलाम बनाकर रखे

गये, और उनके बदन में घोंड़े लरीदे गए थे।" स्मिथ ने यह भी वर्णन किया है कि साही-दल के साथ-साथ चलने वाले हरम की स्त्रियाँ किस प्रकार वर्ण-रोपित पित्रों में बन्द रखी जाती थीं। यह भी सामान्य जनहृत् या कि मुठ के पश्चात् बन्दी बनाये गए सभी लोगों को गुलाम बनाना जाता था।

अकबर द्वारा व्यवहृत तथा जिससे अत्यन्त रोष उत्पन्न हो गया था वह शासता का ऐसा विविध प्रकार का था जिसमें प्रत्येक घोंड़े के साथ पर फूल लगाना पड़ता था। इस प्रकार जिस भी किसी के पास फूल लगा हुआ घोड़ा होता था, वह स्वतः अकबर की आधीनता में आ जाता था। राज्य भर में जहाँ भी कहीं घोंड़े पाए जाते थे वे चिह्नित कर दिए जाते थे। इन प्रकार घोड़ा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख एक और गहरा कुर्पा और दूसरी ओर मोंकर साई थी। यदि वह व्यक्ति अकबर की पराधीनता में मुक्त होना चाहता था, तो उसके सम्मुख एक ही मार्ग था कि वह घोड़े को छोड़ दे। ऐसा करने पर उन आतंकमय दिनों में उसे अपने एकमात्र सहारे और साधन को खो देना पड़ता था। और यदि वह व्यक्ति घोड़ा रखता ही था, तो उसके घोड़े के मस्तक पर लगा निशान उसको सर्वे स्मरण दिलाता रहता था कि अत्यन्त क्रूरतापूर्ण घूर्तता के साथ वह आधुनिक धर्मदासत्व का शिकार ही चुका था।

अकबर के विविधहीन तथा दमनकारी शासन ने अभूतपूर्व अकाल प्रस्तुत किये। "सन् १५५५-५६ में दिल्ली विध्वंस हो गई थी तथा असंख्य मीनें हुई थीं (पृष्ठ २८८)।" वदायूनी ने स्वयं अपनी ही आँखों से देखा था कि आदमी-आदमी को ही मार कर खा रहा था, और दुर्भिक्ष-पीड़ितों की आकृतियाँ इतनी घृण्य हो चुकी थीं कि कठिनाई से ही कोई उनकी ओर देख सकता था... सारा देश उजाड़ मरस्यल बन चुका था, और पृथ्वी को जीने वाले लोग ही नहीं रहे थे... भारत के समृद्धतम प्रान्तों में से एक तथा दुर्भिक्ष की आशंका से सर्वे प्रछूता रहने के लिए प्रशंसित गुजरात में भी सन् १५७३-७४ के छः मास तक दुर्भिक्ष रहा। सदा की भाँति भुख-मरी के पश्चात् महामारी फैली, जिसके कारण धनी और निर्धन, सभी निजाबी प्रदेश छोड़कर भाग गए और इधर-उधर सर्वत्र फैल गये। विशिष्ट घमण्डता के साथ अकबर का उल्लेख करता है कि सन् १५८३ और

१५८४ में वर्ष-भर सूखा पड़ जाने के कारण चूँकि दाम ऊँच थे, इसलिये अनेक लोगों का उदर-पोषण कर पाना समाप्ति पर आ गया। (स्मिथ कहता है, कि) सन् १५६५-६८ की अवधि में हुए महान् विपत्तिकाल का उसके द्वारा हुआ अपरिष्कृत वर्णन यदि हम ठीक से जाँचें, तो हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सन् १५८३-८४ का दुर्भिक्ष भयंकर था। अन्य वृत्त लेखकों द्वारा इसका उल्लेख अथवा संकेत-मात्र भी किया गया प्रतीत नहीं होता।"

"सन् १५६५ से प्रारम्भ होकर सन् १५६६ तक, तीन-चार वर्ष चलने वाला दुर्भिक्ष अपनी भयंकरता में उस दुर्भिक्ष के समान था, जो सिंहासना-रुढ़ होने के वर्ष पड़ा था और अपनी दीर्घावधि के कारण उस दैवदुर्विपाक से भी बदतर था। बाढ़ें और महामारियाँ अकबर के शासन को प्रायः प्रस्त करते थे।" (पृष्ठ २८६)।

स्मिथ ने अवलोकन किया है कि जब अकबर मरा तब केवल आगरा दुर्ग में ही यह अपने पीछे दो करोड़ स्टर्लिंग की नकद राशि छोड़ गया था। इसी प्रकार की जमा-राशि अन्य छः नगरों में भी थी, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्भिक्ष से छुटकारा दिलाने वाले कोई भी पग अकबर ने नहीं उठाए। अबुल फजल द्वारा प्रस्तुत इनके विपरीत वर्णनों को केवल मात्र चापलूसी कहकर रद्द कर दिया जाता है।

यह बिल्कुल झूठी और गलत बात है कि अकबर की राजपूत राज-कुमारियों से शादियाँ साम्प्रदायिक एकता और सौहार्द बनाए रखने के महान् उद्देश्य का फल थीं। इस बेईमानीपूर्ण दावे का खंडन यह प्रश्न कर तुरन्त किया जा सकता है कि क्या अकबर ने भी अपनी किसी पुत्री या निकट सम्बन्धी एक भी कन्या का विवाह किसी हिन्दू से किया था?

दूसरी बात यह है कि यह मानना भी बिल्कुल बेहूदगी है कि अत्यन्त मद्यप, लम्पट और कामुक विदेशी व्यक्तियों के हाथों में अपनी महिलाएँ सौंपने के स्थान पर उनको अग्नि की भेंट चढ़ा देने वाले, जीवित ही जोहर की ज्वालाओं में होम देने वाले वीर राजपूतों को अपनी कन्याएँ अकबर और उसके सम्बन्धी लोगों को भेंट देने में किसी भी प्रकार का गर्व अनुभव होता था।

साइये, हम जयपुर राजघराने का उदाहरण लें, जिस परिवार को

अपनी कन्याएँ मुगल शासकों को सौंप देनी पड़ी थीं। यह पूर्ण विवरण, किस प्रकार बाध्य होकर जयपुर-नरेशों को अपनी कन्याएँ मुगल बादशाहों के हरमों में भेजनी पड़ती थी, डा० श्रीवास्तव की 'अकबर महान्' नामक पुस्तक के भाग १ (एक) के पृष्ठ ६१ से ६३ पर उपलब्ध है।

भारतीय इतिहास-विद्वत्ता की मूल विपत्ति सर्वज्ञात तथ्यों से भी सहो, युक्तिवृत्त निष्कर्ष निकालने में संकोच प्रथवा अयोग्यता रही है। डा० श्रीवास्तव द्वारा वर्णित अकबर का जयपुर की कन्या को अपने अधीन कर लेना एक विनिष्ट उदाहरण है।

उस समय कथा को, कि किस प्रकार अकबर ने जयपुर के राजघराने को अपनी प्रिय पुत्री को मुगलों के दयनीय हरम में बुरका पहिनाकर प्रविष्ट करा देने के लिए सातकित किया, बड़ी सावधानीपूर्वक तोड़-मरोड़ कर अकबर के शयनागार के आही चिखड़ों में संजोकर रखा गया है। इस घोभल कर दी गई कथा के ताने-बाने को हम एकत्र करेंगे।

शर्फुद्दीन अकबर के सेनापतियों में से एक था। उसने आमेर (प्राचीन जयपुर) के तत्कालीन नरेश-राजा भारमल के विरुद्ध अनेक बार आक्रमण किया। बहुत कुछ छीन-भूट लेने के अनिश्चित शर्फुद्दीन ने भारमल के तीन बलों में भी पकड़ लिये। इनके नाम थे—जगन्नाथ, राजसिंह और खंगर। उनको बन्धक के रूप में रखा गया, और सांभर नामक निर्जन स्थान पर क्रूर हत्या कर दिये जाने से उनको डराया-धमकाया गया। डा० श्रीवास्तव ने लिखा है, "ककहरवाहा-प्रमुख भारमल के सम्मुख सर्वनाश उपस्थित था और इसीलिए अत्यन्त घमसाया-वस्था में उसने अकबर द्वारा मध्यस्थता और उसके साथ समझौता चाहा।" यह स्पष्ट प्रदर्शित करता है कि भारमल के तीनों भतीजों की मुक्ति के लिए अकबर ने एक निर्दोष, असहाय राजकुमारी का उसके सम्मुख समर्पण करने की शर्त लगा दी थी।

इसके अनुसार ही, सांभर नामक स्थान पर राजकुमारी अकबर को सौंप दी गयी, और उसके बदले में तीनों राजकुमारों का छुटकारा संभव हो पाया। वे छूट गये। किन्तु इसके साथ-साथ बहुत बड़ी घनराशि फिर भी देनी पड़ी थी। स्पष्ट ही है कि जयपुर राजघराने की ओर से इस अपमानजनक कथा की विवाह के रूप में प्रस्तुत करना पड़ा और दण्डस्वरूप दिये

गये विनाश धन को छद्मरूप में दहेज का नाम दिया गया। किन्तु ऐसा कोई भी कारण नहीं है कि आज के विद्वान् भी उसी भ्रमजाल में फँस रहे।

डा० श्रीवास्तव ने आगे चलकर कहा है, "सांभर में एक दिन लकने के बाद अकबर तेजी से आगरा चला गया।" "रणथम्भोर नामक स्थान पर भारमल के पुत्रों, पौत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों का अकबर से परिचय कराया गया।" इन अस्वाभाविक विवरणों ने समस्त कथा का भंडाफोड़ कर दिया। यह तो सुविदित ही है कि १६वीं शताब्दी में राजघराने का विवाह ऐसा चहल-पहलपूर्ण कार्य था जो महीनों तक चला करता था। और फिर भी अकबर को केवल मात्र एक दिनभर रुकने के और समय ही नहीं मिला कि इस छद्म-विवाह को सुशोभित कर पाता। और यह भी स्पष्ट है कि भारमल का कोई भी सम्बन्धी उस राजकुमारी के सम्मान और कौमार्य-अपहरण के अपमानजनक समर्पण के अवसर पर सम्मिलित नहीं हुआ, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि रणथम्भोर नामक स्थान पर ही भारमल के पुत्रों, पौत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों का अकबर से परिचय कराया गया था।

यही प्रारम्भिक विवाह-विवशता थी, जिससे बाधित होकर जयपुर राजघराने को भविष्य में माँग होने पर भी अपनी कन्याएँ मुगलों को सौंप देनी पड़ी थीं।

ज्यों ही भारमल द्वारा अपनी कन्या अकबर के सुपुर्दे कर दी गयी, त्यों ही अकबर ने अपने सेनापति शर्फुद्दीन को इस प्रकार के दूसरे कार्य अर्थात् मेड़ता की रियासत को धूलि में मिला देने के लिए भेज दिया।

दूसरे रापूजत शासकों के घरानों से विवाह-सम्बन्ध भी इसी प्रकार की समान विवशता का परिणाम थे। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जहाँ अकबर के अनुचर मानसिंह तथा अन्य लोगों ने असहाय तथा संकोची माता-पिता की आँखों के सामने ही उनको असहाय तथा संकोची पुत्रियों को बलात् छीन लिया था। इन अपहरणों और बलात्कारों को इतिहास में चार चाँद लगाकर वर्णन किया गया है कि ये तो शान्ति, सौहार्द और एकता स्थापित करने के महान् उद्देश्य से प्रेरित, अकबर द्वारा अन्तर्जातीय विवाह थे।

६ : जहाँगीर

अपने पिता अकबर की भाँति, जहाँगीर भी दुराचारी शासक था। यह कथन कि अपने शासन के विषय में अपने संस्मरण लिखे, भावी पीढ़ियों को गुमराह करना है। इसपर विशेष बल देते हुए ब्रिटिश इतिहासकार सर एच० एम० इलियट का कथन है कि जहाँगीर के इस दावे के बावजूद—'यह बिना सोचे-समझे स्वीकार कर लिया गया है कि इन संस्मरणों को जहाँगीर ने स्वयं लिखा। वह ऐसा व्यक्ति न था कि इतने बड़े धम करने की कठिनाई उठाता।' (पृष्ठ १५५ भाग VI, इलियट एण्ड हाउसन)।

'संस्मरण' के मेजर प्राइस के संस्करण (जो कई मनगढ़न्त और काल्पनिक पाठों में से एक है) के विषय में विचार करते हुए सर एच० एम० इलियट का कथन है कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी जौहरी द्वारा, न कि किसी बादशाह द्वारा लिखा गया है, और चाँदी, सोने, बहु-मूल्य वस्त्रों आदि के वर्णन में मूल्यों की सूक्ष्मता एवं सत्यता तथा राज्यों के अंकन में धारमस एवं इट के कोषों को भी लज्जित करने वाला अतिरंजित वर्णन इस प्रकार की जालसाजी का अंतः प्रमाण है।

सर एच० एम० इलियट ने कई उदाहरणों के आधार पर जहाँगीर के झूठे दावे का प्रदर्शन किया है। एक स्थान पर जहाँगीर ने कहा है कि उसने राजा मारवाड़ द्वारा निर्मित एक मन्दिर को ध्वस्त कर उसी स्थान पर एक मस्जिद का निर्माण करवाया, जिसमें ५,४०,००,००० रुपये की लागत लगी। एक अन्य पाठ के अनुसार यह राशि ८,००,००० मात्र थी। वास्तविकता यह थी जिसे कि सर एच० एम० इलियट भी देखने में समर्थ रहे, कि जहाँगीर ने एक पैसा भी खर्च नहीं किया। उसने

पुरोहितों की सामूहिक हत्या कर दी, मंदिर की गायों को मार डाला, मूर्ति को बाहर फेंकवा दिया और आदेश दिया कि मन्दिर को मस्जिद के रूप में प्रयोग में लाया जाय। इसी प्रकार का सत्य मध्यकालीन सभी मस्जिदों के साथ जुड़ा हुआ है। व्यय केवल मूर्तियों को उखाड़ने एवं विकृत करने में किया गया, और उसकी भी क्षतिपूर्ति भयभीत हिन्दुओं पर कर लगाकर की गई थी।

जहाँगीर के इस दावे का कि सोने की जंजीर लटकती रहती थी, जिसको खींचकर प्रार्थी न्याय प्राप्त कर सकता था, खण्डन करते हुए सर इलियट ने लिखा है, "व्यर्थ की न्याय की जंजीर जिसके विषय में बादशाह ने लिखा है कि यमुना तट पर आगरे में एक पाषाण स्तम्भ में लटकी रहती थी कभी भी नहीं खींची गयी और सम्भवतः दिखावे के प्रतिरिक्त उसका अन्य कोई उद्देश्य नहीं था। यह प्रथा दिल्ली के राजा अकबर का अनुकरण मात्र थी।" (पृष्ठ २६२)। इससे प्रतीत होता है कि मुगलों ने अपने दुराचारों पर पर्दा डालने के लिए श्रेष्ठ राजपूतों की प्रथा को लिया और राजपूत वैभव का अनुचित प्रयोग किया।

इस प्रकार विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न अंग्रेज इतिहासकार ने जो जहाँगीर के निर्लज्जतापूर्ण लेखों तथा इतिहासकारों का भण्डा-फोड़ किया है, जिन्होंने इन दुःखदायी दुर्व्यवहारों एवं हत्याओं से पूर्ण इस राज्यकाल के विषय में आने वाली पीढ़ी को गुमराह करने का प्रयत्न किया है।

राजकुमार सलीम जो अकबर की मृत्यु के पश्चात् बादशाह जहाँगीर के नाम से जाना जाता है, फतहपुर सीकरी में ३० अगस्त, १५५६ को पैदा हुआ। उसका जन्म फतहपुर सीकरी में हुआ, वही इस बात का प्रमाण है कि इसे अकबर ने बाद में नहीं बनवाया। इसमें पहले से ही शाही भवन थे, जिसमें अकबर की बेगमों अन्तःवास कर सकती थी और शाही सुविधायें उपलब्ध थीं। यह उस व्यक्ति का जन्मस्थल था, जो कि शराबी एवं स्त्रीरत हुआ।

सर एच० एम० इलियट ने बताया है कि जहाँगीर के 'संस्मरण' के एक अन्य पाठ के अनुसार कोई इस प्रकार का वर्णन हो जिससे उसका शराबी होना लग सके और अपने भाई दीनदयाल की इस अभद्र यादत (शराब पीना) का उल्लेख करते हुए धर्म की दुहाई भी दी गई है, जबकि

वास्तविक 'संस्मरण' से पता लगता है कि जहाँगीर अपने पितामह बाबर की ही भाँति बराबरी था। इसे स्वीकार करने में संभवतः वह लज्जित हो गया। पृष्ठ २६०, इससे पता लगता है कि बाबर एक असाधारण पियत्रकड़ था और जहाँगीर ने तो अपने पितामह को भी मात कर दिया था।

जहाँगीर बचपन से ही हत्यारा था। उसके पिता अकबर का एक प्रसिद्ध व्यक्ति होना इस बात से प्रमाणित होता है कि उसके निकट सम्बन्धी (निर्जा परिवार), संभवतः उसके सभी सेनापति तथा उसका अपना पुत्र जहाँगीर बार-बार उसके विरुद्ध विद्रोह करते रहे। जहाँगीर अकबर से इतनी घृणा करता था कि १५८१ में जबकि 'वह' मात्र २२ वर्ष का था उसने अकबर को विष दे दिया। अकबर अत्यन्त दर्द से तड़प रहा था और पागलपन की स्थिति में कहा, "ओ, शेकू बाबा, आपने मुझे विष क्यों दिया? अगर आपको राजगद्दी चाहिए थी तो मुझसे कहते।"

नूकबार, १२ अगस्त, १६०२ को सलीम उर्फ जहाँगीर ने अकबर के दरबार के तयामुहल्लत रत्न अब्दुलफजल की हत्या कर दी। इस हत्या के प्रसंग में जहाँगीर ने कहा है, "जैसे अब्दुलफजल ने अपने को स्वामिभक्ति के रत्न से बाह्य रूप से सज्जित कर रखा था, जिसे वह मेरे पिता के हाथ जैसी कीमत पर बेचता था। उसको दक्खन से बुलाया गया; और चूँकि भावनाओं मेरे प्रति दुर्भावनापूर्ण थीं अतः यह आवश्यक हो गया कि उसे दरबार तक पहुँचने से रोका जाय। रास्ते में वीरसिंह देव का राज्य पड़ता था अतः उनको मैंने एक संदेश में कहा कि अच्छा होगा कि वह उसको रोक कर उसकी हत्या कर दे और पुरस्कार के रूप में मैं उन पर हर प्रकार से मेहरबान रहूँगा। भगवान की कृपा से जब अब्दुलफजल राजा वीरसिंह देव के राज्य से होकर जा रहा था, राजा ने उसका रास्ता रोक दिया और बहुत मोदी लड़ाई के पश्चात् उसके आदमियों को मार भगाया और उसको मार डाला। उसके सिर को मेरे पास इलाहाबाद भेज दिया। मैंने इसे असीम प्रसन्नता से स्वीकार किया और हर प्रकार से लज्जाजनक सम्मान किया।" (क्रिस्टेन डन इण्डिया, एस० एम० शर्मा, पृ० ३८३)।

एक या दो वर्ष बाद जहाँगीर ने एक अन्य हत्या की। इस हत्या की शिकार एक हिन्दू स्त्री मानबाई थी, जो मानसिंह की बहन और जयपुर शाही परिवार की कन्या थी। 'जहाँगीरनामा' के एक पाठ में कहा गया

है कि वह तीन दिन के अन्नशन के उपरान्त मर गयी। यह उक्त है कि कोई स्त्री या पुरुष तीन दिन के अन्नशन से नहीं मर सकता है। एक अन्य पाठ के अनुसार उसने विष लाकर आत्महत्या कर ली। समकालीन इतिवृत्त में इसको विविध रूप से बताया गया है और उसकी मृत्यु राजमहल की एक सहेली से अथवा जहाँगीर स्वयं से भगड़े ही के परिणामस्वरूप हुई। जहाँगीर से भगड़े की बात अधिक विश्वसनीय है क्योंकि वह अपने पिता की भाँति दिन दहाड़े बलात्कार पूर्ण हत्याएँ किया करता था। यदि मानबाई की हत्या न की गयी होती तो उसकी मृत्यु की जाँच-पड़ताल भी संभव की जाती। किन्तु न अकबर और न ही जहाँगीर ने इस प्रकार का प्रयत्न किया, जिससे पता लगता है कि मानबाई की मृत्यु अकबर और जहाँगीर के संयुक्त षड्यंत्र के परिणामस्वरूप हुई अथवा जहाँगीर ने प्रत्येक ही यह कार्य किया। इसी हत्या का परिणाम था कि अकबर की मृत्यु के एक वर्ष पूर्व मानसिंह ने अपने बहनोई का पक्ष न लेकर शाहजादे सुसरी (जहाँगीर का मानबाई से पुत्र) को गद्दी पर बिठाने का यत्न किया।

गुप्तरूप से अकबर को विष देकर मारने और तानाशाही दुर्व्यवहारों के हेतु राजसत्ता हथियाने में असफल होकर जहाँगीर ने अकबर का सुलतम-खुल्ला विद्रोह किया। १५९८ के प्रारम्भ में अकबर ने उसे टांसीक्सियाना पर चढ़ाई के लिए कहा परन्तु जहाँगीर ने जाने से इंकार कर दिया। कुछ ही समय पश्चात् जहाँगीर को दक्खन में शाही दरबार का कार्य भार सँभालने का आदेश हुआ किन्तु प्रस्थान के समय वह अनुपस्थित रहा और अपनी नियुक्ति कराने में सफल रहा।

डा० श्रीवास्तव लिखते हैं, "मई, १५८६-१५८८ के बीच अकबर शाहजादे सलीम से दूर रहा और विद्रोह के बीज शाहजादे के मस्तिष्क में उगने लगे। आयु में बड़ा होने के साथ-साथ वह भोगप्रियता, मदिरा तथा सुबावस्था सम्बन्धी अन्य बुराइयों में पड़ने लगा। अद्यपि उसका हरम बहुत बड़ा था फिर भी वह १५८६ में जैनखान कीका की लड़की पर बुरी तरह आसक्त हो गया। ऐसा सम्भव है कि शाहजादे की मेहरान्निशा (भावी नूरजहाँ) और अतारकली सम्बन्धी कहानियाँ बे सिर-पैर की नहीं थीं। कुसंगति, मदिरापान तथा आत्मश्लाघा से बचाने के लिए उसे मेवाड़ के राणा पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया तो उसने सपना बहुत समय

अकबर में बित्ताया। अकबर की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर सलीम ने सुल्तानसुल्ता बिद्रोह का निश्चय किया। उसने शीघ्र ही अजमेर से आगरे की ओर कूच किया और एक करोड़ की नकद समस्त सम्पत्ति जव्त कर ली।" (पृ० ४६२, अकबर, हि. ग्रेट)।

प्रो० एस० एच० रॉय लिखते हैं, "१६०० में उस्मान खान नामक एक अफगान सरदार ने बंगाल में बगावत कर दी और सलीम को पूर्वी प्रान्तों की ओर जाने को कहा गया पर उसने इलाहाबाद में रहना अधिक पसंद किया और बिहार को बहुत अधिक भूमिकर की राशि (जोकि ३० लाख से कम नहीं थी) इधर-उधर कर दी तथा अपने कुछ समर्थकों को जागीरें दे दीं। सलीम के इस दुर्नियोजन के परिणामस्वरूप अकबर को अर्धरंगद की विजय के अभियान को समाप्त कर शीघ्र उत्तर की ओर बढ़ना पड़ा। अकबर सई, १६०१ में आगरे पहुँचा, और सलीम के तीस हजार घोड़ों के साथ दरबार में आने का समाचार सुना और वास्तव में वह राजधानी से केवल ७३ मील दूर इटावा तक पहुँच आया था। इसपर अकबर ने उसे इलाहाबाद लौटने का आदेश दिया, और बंगाल और उड़ीसा का शासक बना दिया। सलीम इलाहाबाद में ही रहता रहा, अपने नाम के गिके चलाये और उनके नमूने अकबर के पास भेजने की भी वृष्टता की।" (पृ० ३२२, क्लिफ्ट इन इण्डिया)।

डॉ० शोबान्त का कहना है, "इलाहाबाद लौटने पर सलीम फिर अपनी आरामगृहा तथा मदिरा-पान जैसी पुरानी प्रिय आदतों में लगे गया। प्रयोग्य सार्वभौम से चिरे होने के कारण वह अत्यधिक चाटुकारिक भी हो गया था। वह वर्षों तक इन वुरादों से परिचित रहा था। किन्तु अब वह लोभा ने अधिक बढ़ गया। वह शराब का इतना आदी हो गया कि उससे उसे नशा नहीं होता था, अतः उसने शराब के साथ अफीम का भी सेवन प्रारम्भ कर दिया। उसने १२ वर्ष की अवस्था से मदिरापान प्रारम्भ किया और इन समय तक वह मदिरा के बीस प्याले पी लेता था। अफीम और शराब के दोहरे नशे में वह कभी-कभी साधारण अपराधों के लिए भी आशङ्कित हो जाता था। एक दिन शराब के नशे में अपने सामने एक समाचार लेखक को बिन्दा ही आग में फिकवा दिया। उसने एक मृत्यु का अनुपकीर्ण करवा दिया और एक बरेलू नौकर को डण्डे से

पिटवाकर हत्या कर दी।"

अप्रैल, १६०३ के आसपास अकबर ने सलीम को मनाने का प्रयत्न किया। अकबर ने अपनी पगड़ी उतारकर शाहजादे सलीम के मिर पर रख दी जिसका सांकेतिक अर्थ सलीम को भावी बादशाह स्वीकार करना था, किन्तु इसका भी कोई लाभ नहीं हुआ। जब उसे राणा प्रताप के पुत्र अमरसिंह के विरुद्ध जाने का आदेश दिया गया तो वह बिलाम एवं भांग-प्रिय जीवन व्यतीत करने के लिए इलाहाबाद चला गया और अकबर के विरुद्ध बिद्रोह करता रहा। दोनों एक-दूसरे के दरबार में अपने-अपने राजदूत रखते थे। अपने बिद्रोही पुत्र को शान्त करने के लिए अकबर १६०४ में आगरे से इलाहाबाद के लिए रवाना हुआ पर माँ की मृत्यु का समाचार पाकर उसे आधे रास्ते से ही लौटना पड़ा। अपनी दादी की मृत्यु के शोक को प्रकट करने के लिए सलीम आगरे आया। जब सलीम ने अभिवादन करने से आनाकानी की तो तब अकबर ने उसे एक कमरे में ले जाकर उसकी क्रूरता, बिद्रोह एवं अवज्ञा के लिए पितृदण्ड के रूप में कई चाँटे लगाये, जिनकी प्रतिध्वनि भी सुनाई पड़ी।

अकबर अब स्वयं बीमार रहने लगा। यह भी हो सकता है कि जहाँगीर ने उसे फिर विष दिला दिया हो, किन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि अकबर स्वयं एक घातक विष देने वाला था और उसने कुछ विषैली गोलियाँ मानसिंह को मारने के लिए तैयार करायी थीं पर भूल से मानसिंह की विषैली गोलियों को वह स्वयं खा गया और अपने लिए तैयार की गई विषहीन गोलियों को मानसिंह को दे दिया।

मानसिंह तथा कुछ अन्य सरदारों ने जहाँगीर को बन्दी बनाने की योजना बनायी, जिससे वह राजगद्दी पर बैठ न सके। इसके अतिरिक्त वे जहाँगीर के पुत्र खुसरो को बादशाह बनाना चाहते थे। खुसरो और जहाँगीर एक-दूसरे के प्रति गाली-गलौज भी करते रहते थे। इससे प्रतीत होता है कि जहाँगीर से उसके पिता तथा पुत्र कितनी घृणा करते थे। अपने अपहरण की योजना के विषय में अपने समर्थकों से सूचना पाकर जहाँगीर अपने पिता से उसकी मृत्यु के समय भी दूर रहा।

आगरा से ६ मील दूर सिकन्दरा में एक हड़पे गये हिन्दू महल में अक्टूबर, १६०५ में उसका देहान्त हो गया और वहीं इसे दफना दिया

गया। इसका अन्तिम संस्कार गुप्त रूप एवं निरुत्साह से किया गया, ऐसा था। इसका अर्थ है कि अकबर उसी महल में, शां. बी० स्विट्स का मल है। इसका अर्थ है कि अकबर उसी महल में, जहाँ उसकी मृत्यु बर्खा थी, दफनाया गया। इस तथ्य को छिपाने के लिए मुस्लिम इतिहास ने कहा कि अकबर ने अपनी मृत्यु का पूर्वानुमान करके अपनी कब्र बनवाई थी, जबकि जहाँगीर ने झूठा दावा किया है कि उसने अपने पिता की कब्र बनवायी। दोनों के बीच स्पष्ट विरोधाभास इन बातों का प्रतीक है कि अकबर भी अन्य मुसलमान शासकों की तरह हड़पे हुए हिन्दू महल में दफनाया गया।

जहाँगीर ३६ वर्ष की आयु में बृहस्पतिवार, २४ अक्टूबर १६०५ को अपने के प्राचीन हिन्दू-मालिकों में गद्दी पर बैठा। यह तिथि लगभग ही है क्योंकि मुस्लिम इतिहास में सम्भवतः ही कोई तिथि हो जो विवादास्पद न हो। चूंकि मुस्लिम इतिहास अधिकतर युद्धप्रिय, कट्टरपंथी एवं प्रशंसन-योग्य वर्तनों से पूर्ण है अतः इनमें उल्लिखित कथन एवं तिथियाँ विश्वसनीय नहीं हो सकती।

जहाँगीर के विषय में अनेक झूठी बातें कही जाती हैं कि वह अपने पिता की स्मृति से बड़ा स्नेह रखता था, सन्तों का सम्मान करता था, प्रणालय के उच्च सिद्धान्तों को ध्यान में रखता था, मद्यपान से बहुत घणा करता था, आदि-आदि।

मर एच० एम० इलियट इसे गलत बताते हैं कि जहाँगीर का शासन किसी उच्च सिद्धान्तों पर आधारित था। इलियट जहाँगीर के इस दावे का, कि किताबें बालिक इग के वह किसी की कोई वस्तु नहीं लेता था, खण्डन करते हुए कहते हैं कि जब शाहजादे परवेज को निवास-स्थान की आवश्यकता नहीं तो महाबत खाँ, जो काबुल में जहाँगीर के साम्राज्य की रक्षा कर रहा था, के साथ-जन्मी को घर से बाहर निकाल दिया। इस विशेष अपमान के लिए महाबत खाँ को इशजिए चुना गया था कि वह कुछ दिन पूर्व हिन्दू था। वह सत्ता प्रताप का भतीजा था। जहाँगीर भी मध्यकालीन यवन वर्तनों से किसी प्रकार कम नहीं था जो अर्थपरिवर्तनकारी हिन्दुओं को ही अपमान और अपमान एवं वस्तुओं के हड़पने के लिए चुनता था।

लाहौर मुगल परम्परानुसार जहाँगीर का अपना पुत्र खुसरू उसके प्रति ठीक उसी प्रकार बिद्रोह कर उठा, जिस प्रकार उसने अकबर के विरुद्ध

किया था। सबसे बड़ा पुत्र खुसरू हिन्दू माँ (जयपुर की राजकुमारी राज-बाई जिसकी जहाँगीर ने हत्या कर दी थी) का पुत्र था। शाही बादशाहों की यह बहुत बड़ी धोखेबाजी है कि वह निश्चित तथ्य सुसंस्कृत था। शां. वेनी प्रसाद उसे "कोधी स्वभाव तथा दुर्बल निर्णय का अपरिपक्व युवक" बताते हैं। वह सबके सामने जहाँगीर को गालियाँ देता। अतः बादशाह हो जाने पर जहाँगीर ने खुसरू को दास बना दिया। अप्रैल, १६, १६०६ को वह अकबर का मकबरा देखने के बहाने भाग गया।

इस प्रकार अपने शासन के प्रथम वर्ष में ही उसका सबसे बड़ा शत्रु राज्य का उत्तराधिकारी युवराज खुसरू बन गया। जहाँगीर ने उसे बड़ी गालियाँ दीं, जो प्रत्येक यवन शासक अपने हठी पुत्रों को देता था। वह कहता है कि खुसरू "यौवन के संगी भ्रमंड एवं दुविनीता तथा दुष्ट साथियों की प्रेरणा से कुछ गलत ढंग से सोचता था। यह सोचकर मुझे दुःख होता कि मेरा पुत्र मेरा शत्रु बन गया है और यदि मैं उसे न पकड़ूँ तो असन्तुष्ट तथा शैतान लोग उस का समर्थन करेंगे और इस प्रकार मेरा सिंहासन अपमानित होगा।"

खुसरू पंजाब भाग गया। कुछ मुस्लिम सेनापति उसके साथ हो लिये। लाहौर के शासक ने उसके नगर-प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया। तीन सप्ताह के भीतर (अप्रैल २७, १६०६ को) वह पकड़ा गया। उसे जंजीरों से बांधकर जहाँगीर के समक्ष लाया गया। बीर हिन्दू शिष्य सेना, शिष्यों (जिन्हें आज गलती से सिकल कहकर हिन्दुओं से अलग किया जाता है) के नेता गुरु अर्जुनदेव इस वहाने से पकड़ लिये गये कि उन्होंने ५,००० रुपये देकर खुसरू के विद्रोह को उभारा है। गुरु की सम्पत्ति तथा कुटीर छीनकर उन पर २,००,००० रुपये जुर्माना कर दिया गया। उन्हें आदेश दिया गया कि पवित्र ग्रन्थ से, जिसमें अनेक हिन्दू सन्तों के श्लोक हैं, कुछ भजनों को निकाल दें। हिन्दुत्व की रक्षार्थ वचन-बद्ध गुरु अर्जुनदेव ने जुर्माना देने अथवा ग्रन्थ साहब में तनिक भी परिवर्तन करने से इंकार कर दिया। जून, १६०६ में बीर गुरु अर्जुनदेव पर लाहौर में रावों के तट पर क्रूरतापूर्वक भरी दोपहरी में तेज रेत तथा उबलता पानी डालकर उनकी हत्या कर दी गयी।

ये क्रूरताएँ थीं जिन्हें 'महान् एवं श्रेष्ठ अकबर' के उत्तरे ही 'श्रेष्ठ'

पुत्र जहाँगीर ने हिन्दुस्तान पर हाया। खुसरू की सहायता करने के सन्देश पर माय में कितनी को निर्देशपूर्वक दण्ड दिया। इस सम्बन्ध में जहाँगीर लिखता है, "(साहोब दुर्ग के) मण्डप में बैठकर, रावी के तल में मैंने कुश्मिनी सुविधा गाढ़ने की यात्रा देकर ७०० दौड़ियों को, जिन्होंने मेरे विरुद्ध खुसरू का साथ दिया था, उनपर जीवित ही चढ़वा दिया। इससे अधिक वज्रपादायक दण्ड और कुछ नहीं हो सकता क्योंकि इससे पूर्व कि मुझे इन्हें जान दे, वे दण्ड बहुधा बहुत काल तक इस दुःखद यंत्रणा में छटपटाते रहते थे, यह भयानक दृश्य हमों को रोकने के लिए उचित उदाहरण का कार्य करता था।" (पृष्ठ २७३, भाग VI) जहाँगीर जो यंत्रणाओं के कार्यों के लिए कुसपात है, मुस्लिम कहानियों में भावुकतापूर्ण मण्डो द्वारा वर्णित है कि वह इतना न्यायप्रिय था कि किसी छोटे से दोष के लिए उसने अपनी महबूबा नूरजहाँ तक को दण्डित किया। सहस्र-वर्षीय-चरित्र जैसी प्रचलित कहानियों द्वारा भारत के यवन शासन के रक्तपूर्ण इतिहास को वास्तविक ढंग से प्रस्तुत न कर भारतीयों को धोखे में रखा गया है।

खुसरू को एक तार द्वारा खन्ना बनाकर बन्दी बना दिया गया। "जब उनको घाँवों में तार घुसते समय उसे इतना कष्ट हुआ कि किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सकता।" (इन्तखाब-ए-जहाँगीरशाही, पृष्ठ १००, भाग VI) इसके साथ एक और राज-विद्रोह हुआ। कहानी यही गई कि कबूल में जब जहाँगीर शिकार कर रहा था, उसकी हत्या कर दी जाये और सिंहासन पर खुसरू को बिठा दिया जाय।

जहाँगीर ने भी हिन्दू राज्यों पर चढ़ाई करने की यवन परम्परा जारी रखी। "सिंहासन पर बैठने पर जहाँगीर ने शाहजादे परवेज तथा जफरबेग की मजानता में मेवाड़ के विरुद्ध सेना भेजी। देवली के स्थान पर युद्ध हुआ, जिसमें मुस्लिम सेना बहुत बुरी तरह से हार गयी और लज्जापूर्वक बन्दुत खुसरू के विद्रोह के कारण, वापिस बुला ली गयी।"

दो बड़े पञ्चाब् (१६०० में) राजपूत से हुए मुस्लिम महावत खाँ की पराजय में राजपूतों को राजपूत से भिड़ाने के लिए सेना भेजी गयी। मेवाड़ की दूर सेना ने इसे भी बुरी तरह हरा दिया। १६०६ में महावत खाँ का स्थान परवेज ही कूर मुगलमान अब्दुल्ला खाँ को दे दिया गया।

उसने राणाप्रताप के पुत्र अमरसिंह पर भीषण धावा बोला, जिसमें अमरसिंह बाल-बाल बचे। हिन्दू प्रतिरोध की रीढ़ मेवाड़ को अब्दुल्ला भी नहीं तोड़ पाया। तब एक हिन्दू राजा बसु को यवन सेना की वागदोर सौंपी गयी ताकि वह मेवाड़ शासक को किसी प्रकार फुसलाकर या धोखा देकर वश में कर ले। पर उसने स्वयं को क्षमा कर लिया। १६१३ में जहाँगीर ने आजम कोका को मेवाड़ भ्रष्ट करने का आदेश दिया। जहाँगीर उसे "इस राज्य का पाखण्डी तथा पुराना भेड़िया" कहता था। जब जहाँगीर स्वयं कोका को भेड़िया बताता है तो यह सहज ही कल्पनीय है कि उसने हिन्दू मेवाड़ में कितनी क्रूरताएँ की होंगी। पर आजम कोका ही सेनानायक नहीं था। शाहजादा खुर्रम (भाबी दुष्ट तथा क्रूर शाहजहाँ) भी सेना के साथ था। दोनों में अनबन हो गयी तथा आजम कोका को अप्रैल, १६१४ में बन्दी बनाकर ग्वालियर दुर्ग भेज दिया गया। खुर्रम उपनाम शाहजहाँ बहुत बड़ा हिन्दू-घाती तथा हिन्दुओं से घृणा करने वाला था अतः उसने पूर्ण शक्ति एवं क्रूरता के साथ युद्ध लड़ा। श्री शर्मा लिखते हैं, "प्रदेश को उजाड़कर उसने राणा को संकट में डाल दिया। अमरसिंह वस्तुतः उसी दयनीय अवस्था में हो गये, जिस अवस्था में १५७६-८० में उनके पिता थे।" (पृष्ठ ४५२, किसेण्ट इन इण्डिया)।

जहाँगीर का दावा है, "निस्सहाय हो उसने झुकने तथा राजभक्ति का इरादा कर लिया। उसने अपने मामा शुभकर्ण तथा एक अत्यन्त ही विश्वस्त एवं मेधावी सेवक हरदास भाला को भेजा।" अपने न झुकने वाले गौर पिता राणा प्रताप की ही भाँति अमरसिंह ने मुगल दरबार में जाने से साफ इंकार कर दिया। जहाँगीर ने चित्तौड़ को राणाओं को यह कहकर वापिस कर दिया कि इसकी न तो मरम्मत करनी है, न किलेबन्दी।

मेवाड़ की स्वतन्त्रता न बनाए रखने पर अमरसिंह ने अपने सबसे बड़े पुत्र कर्णसिंह के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। औरंगजेब के कूर शासन में राणा राजसिंह ने मुगल संरक्षण को हिलाकर रख दिया।

जहाँगीर ने राणाओं की समस्त सम्पत्तियाँ छिनवा ली थीं, उसके संस्मरणों में विस्तार के साथ, पर भूठा, वर्णन है कि उसने सम्पत्ति राणाओं को दी। इतिहासकारों के लिए यह अच्छा है कि वे जहाँगीर के अधिकांश कथनों के विरुद्ध दावों को सत्य मानें। महान् इतिहासकार

सर एव० एन० इतिवृत्त ने अनेक बार कहा है कि जहाँगीर के अधिकांश इतिवृत्त झूठ से भरे हुए हैं।

दक्षिण अभियान के समय मुगल बादशाहों की सेनाओं का बुरहान-पुर प्रयाण कार्यक्रम रहता था जहाँ मुगल शाहजादों तथा यवन सेना-पक्षियों के बीच सहमन्त्र चलते रहते थे। वहाँ शाहजादा परवेज अपना साधारण दरबार लगाता था पर १६०८ से १६१० तक सच्ची शक्ति शासनात्मक के हाथ में थी। अगामी दो वर्षों तक खान जमान मानसिंह तथा खानखाना (मिर्जा का सहायक) की सहायता से खान जहाँ लोदी के हाथ नाचकर रहा। १६१२ में प्रभुत्व पुनः खानखाना के हाथ चला गया। १६१६ में शाहजादे खुर्रम उर्फ शाहजहाँ से उसका स्थान लेने को कहा गया।

अक्तूबर, १६१६ के अन्त में खुर्रम ने अजमेर छोड़ दक्षिण को प्रयाण किया। उसके आधिपत्य में मुगल सेना माँझ और माच, १६१७ में बुरहान-पुर पहुँची। इन समस्त वर्षों में अहमदनगर के मुस्लिम शासन के साथ वह मुद प्रतिपक्षित रूप से खिचता चला गया। अहमदनगर राज्य के जो भूखण्ड अकबर की ओर चले गये थे उन्हें अहमदनगर का एबीसीनिया का राजनीतिज्ञ मलिक अमेर पुनः प्राप्त करने के प्रयत्न में था। उसने इंडी सम्पत्ति के साथ असंगठित तथा भगड़ते हुए मुगलों को दूर ही रखा।

यह देखकर कि शक्तिशाली तथा भयानक मुगल सेना उसके राज्य को लूट कर देगी मलिक अमेर ने मुगलों के साथ सन्धि कर ली। उसने लगे होते हुए बालाघाट भू-प्रदेश को छोड़ दिया। दक्षिण में अब्दुर रहीम खानखाना को शासक तथा बालाघाट में उसके पुत्र शाहनवाज को आयुध-लाभक बना दिया। ज्यों ही शाहजहाँ की पीठ फिरी, मलिक अमेर ने १६२० तक मुगलों को दिए हुए समस्त भू-भाग को जीत लिया। शाहजहाँ को उसके विरुद्ध एक बार पुनः भेजा गया। वैसे ही सन्धि फिर हुई। १६२३ में दक्षिण के बीजापुर तथा अहमदनगर दो मुस्लिम राज्यों ने एक-दूसरे के विरुद्ध मुगलों की सहायता माँगी। १६२६ में ८० वर्ष की अवस्था में मलिक अमेर मर गया फिर भी दक्षिण के राज्य प्रविजित रहे।

हिन्दुओं का वह अनायास राज्य काँगड़ा, जहाँ मुसलमानों ने प्रत्येक पीढ़ी में अवसरीय जीदाये दी थी और फिर भी उसने अपना गौरवपूर्ण हिन्दू

मस्तक ऊँचा रखा, एक बार पुनः खुर्रम उर्फ शाहजहाँ की सेना द्वारा आक्रमित हुआ। जहाँगीर के अनुसार, "उसकी प्रथम योजना इस दुर्ग पर आधिपत्य करना था।" इसके विरुद्ध पंजाब के शासक मुतजा खाँ को भेजा पर काँगड़ा पर अधिकार कर सकने से पूर्व ही वह चल बसा। राजा वगु के पुत्र चौपदमल को काँगड़ा के विरुद्ध भेजा गया पर देश-भक्त हिन्दू होने के नाते उसने इस पवित्र नगर पर आक्रमण करने में इंकार कर दिया। इसके स्थान पर देश-भक्त हिन्दू शक्तियों के साथ मिल उसने विदेशी मुगलों को चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया। निदान वह पकड़ा गया और यन्त्र-णायें देकर मार दिया गया। फिर खुर्रम को भेजा गया। वह अपनी क्रूरताओं के लिए कुख्यात था। उसकी क्रूरता ने धिरे हुए हिन्दुओं को "चार मास तक सूखे चारे पर" जीवित रहने पर बाध्य कर दिया। निदान यवन सेनायें नवम्बर १६, १६२० को रक्षा करने वाले हिन्दुओं की लाश पर पैर धर काँगड़ा में घसे।

अफगानों के कन्धार पर पारसियों तथा मुगलों दोनों की लोलुप दृष्टि थी। १५२२ में इसे बाबर ने जीता था, जो उसके पुत्रों हुमायूँ, तथा कामरान के साथ रहा। १५५८ में यह मुगलों के हाथ से निकल गया पर अकबर ने १५६४ में फिर हथिया लिया। जब खुसरू ने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया, पारसियों ने पड़ोसी सरदारों को कन्धार पर आक्रमण करने के लिए उकसाया पर कन्धार मुगलों के हाथ ही रहा। पारसीक बादशाह शाह अब्बास ने दिखावटी मैत्री जारी रखी तथा जहाँगीर के दरबार में दूतों के हाथ अनेक भेंटें १६११, १६१५, १६१६ तथा १६२० में भेजीं। जहाँगीर को भेजे गये अपने चाटुकारितापूर्ण पत्रों में पारसी शासक ने उसे शानि के समान महान् बताया। हिन्दुस्तान के इन सभी शासकों में शानि के चिह्न पाये जाते रहे हैं।

१६२१ में पारसियों ने कन्धार को घेर लिया और दूसरे वर्ष ही ले लिया। इस हानि से क्रोधित हो जहाँगीर ने योजना बनाई कि संघर्ष पारसियों की राजधानी के द्वार तक किया जाये, पर सन्तति-विद्रोह की मुस्लिम परम्परा के कारण उसकी योजनायें अपूर्ण ही रह गयीं। अपनी शक्ति से परिचित मक्कार शाहजादे खुर्रम उर्फ शाहजहाँ ने मुगल सिंहासन के लिए अपने ही पिता जहाँगीर को चुनौती दे दी।

१६१० में शाहजादे कुतुबुद्दीन के नाम से एक मुस्लिम युवक कुतुबुद्दीन ने एक बिरोह का संगठन किया। वह पकड़ा गया और घातनाएँ देकर मार डाला गया।

बंगाल में खाने हुए अफगानों ने जहाँगीर के विरुद्ध अपना सिर उठाया। वर्ष १६१२ को मुड़ हुमा पर अपने एक पक्षीय दावों के संबंध में अधिकृत जहाँगीर को सन्धि करनी पड़ी तथा कुछ अफगानों को अपने दरबार तथा सेना में उच्च स्थान देने पड़े।

१६११ में जहाँगीर की सेनाओं ने प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर जगन्नाथपुरी पर पराक्रम किया। विदेशी दुष्टों की क्रूरताओं से बाध्य हो राजा पुरुषोत्तम इस की समर्पण करना पड़ा। समूचे देश को बलात्कार से बचाने के लिए हिन्दू राजा ने अपनी कन्या को जहाँगीर के हरम में दे देने के लिए स्वीकृति दे दी। होइसमल का पुत्र राजा कल्याण ऐसे ही टूट पड़ा, जैसे उसके पिता तथा मामासिंह अकबर के लिए टूट पड़े थे, पुनः वह असहाय दुःखी राजकुमारों की मुस्लिम हरम में ले आया।

१६१२ में बिहार में खोजरा इसके हिन्दू शासक दुर्जनसाल से हथिया लिया गया। मनुद्ध हिन्दू राज्य होने के अतिरिक्त हीरों की खानें यहाँ का अतिरिक्त धातुजन्य था। अपना राज्य छिन जाने तथा कन्या के अपहृत हो जाने के कारण अपमान अनुभव करता हुआ जगन्नाथपुरी का शासक पुर्णोत्तमदास १६१० ई० में मुगल शक्ति की अवज्ञा कर उठा। फलस्वरूप उसका प्रदेश मिला लिया गया, जब मुगलों की दक्षिण-पूर्व की सीमा गोलकुण्डा के राज्य की छूने लगी।

जहाँगीर के पश्चिम हिन्दू राजा विक्रमाजीत ने उसकी सेनाओं का कुछ से संचालन कर जान तथा भार नामक गुजराती सरदारों को अपने वश में कर लिया।

१६०० में मुन्नादु फलो तथा केजर के लिए प्रसिद्ध, कश्मीर के दक्षिण में स्थित विश्वनाथ नामक हिन्दू राज्य पर आक्रमण कर अधिकार में कर लिया गया। दो वर्ष पश्चात् राजा ने मुगलों के इस जुए को उतार फेंकने के लिए पुनः प्रयास किया किन्तु वह शक्तिहीन था।

जहाँगीर में अन्धक सदी के उद्गम पर ही स्थित बेरीनाग के प्राचीन हिन्दू मन्दिर की जहाँगीर तथा अकबर ने नष्ट कर डाला। वहाँ इस मन्दिर

के ध्वंशावशेष अब भी देखे जा सकते हैं। घाव पर तमक खिड़कने के लिए एक घोखा देने वाले पत्थर को वहाँ और लगा दिया गया है, जिसपर उर्दू में लिखा है कि इस इमारत का मुगलों ने निर्माण किया। अतः मध्यकालीन इतिहास में जहाँ कहीं भी किसी प्राचीन इमारत के साथ किसी यवन शासक का नाम संलग्न हो वहाँ उसका अर्थ उसे उन इमारतों का निर्माता न मान अष्टकर्ता मानना चाहिये। इस सामान्य नियम को भारतीय इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी तथा पंडित को ध्यान में रखना चाहिये अन्यथा मुस्लिम इतिहासों के झूठे दावों से वह धोखा खा जायेगा।

बहुधा जहाँगीर तथा नूरजहाँ के महान् रोमांस की बात कही जाती है। यह सिवाय इस भयानक कथा के, कि जहाँगीर ने अपनी समस्त शाही शक्ति से अपने एक दरबारी को कुत्ते की भाँति पीछा करके तथा मारकर, उसकी सुन्दर पत्नी का अपहरण कर अपने हरम में डाल दिया, और कुछ नहीं। मुहम्मद खाँ के इकबालनामा-ए-जहाँगीरी तथा अन्य अनेक इतिहासों में इस क्रूर घटना का उल्लेख है। मुस्लिम शासन-काल में हिन्दुस्तान पश्चिमी एशिया के सभी विदेशियों के लिए चरागाह बन गया था। मिर्जा गयास बेग फतहपुर सीकरी में अकबर से मिला और सेवा में ले लिया गया। बीरे-बीरे वह शाही परिवार का अधीक्षक हो गया। उसकी सबसे छोटी लड़की, जो बाद में नूरजहाँ नाम से विख्यात हुई, युवक ईराकी आव्रजक, अकबर के नौकर, अली कुली बेग इस्ताइलू से ब्याही थी। जब शाहजादा या तभी से जहाँगीर की कामुक दृष्टि ईराकी से ब्याही इस सुन्दरी पर लगी हुई थी। जहाँगीर ज्योंही सिंहासन पर आया अली कुली बेग इस्ताइलू की हत्या करने तथा उसकी पत्नी को हड़पकर अपने हरम में डालने की योजना बनाने लगा। इस्ताइलू को भुलावे में डालने के लिए शेर अफगन की उपाधि दे मुद्दर बंगाल भेज दिया गया।

१६०६ ई० में अर्थात् जहाँगीर के सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही महीनों पश्चात् कुतुबुद्दीन खाँ नामक शाही भृत्य को शेर अफगन को परेशान करने तथा झगड़ने के लिए उद्दीप्त करने बंगाल भेजा गया। शाही हत्यारा शेर अफगन के पीछे दूर बर्दवान तक चला गया। कुतुबुद्दीन द्वारा जान-बूझकर किये गये अपमानों एवं अवज्ञाओं से दुःखी हो शेर अफगन ने उसे मार डाला। यह जान-बूझकर किया गया झगड़ा था जबकि दूरस्थ शेर अफगन

के समीप कोई सहायता करने वाला भी नहीं था। दूसरा भूतप पीर का कच्चीरी शेर अफगन की घोर डोहा पर उसे भी काट दिया गया। शाही हत्यारी-सेना के अन्य सदस्य घागे बड़े जिन्होंने शेर अफगन को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। इसके पश्चात् ही बस शेर अफगन की रोती-बिलबिलती सुन्दर पत्नी मेहरुन्निसा को उठाकर घागरा ले जाया गया। कुत्ते के समान अपने पति की हत्या की भयानक स्मृतियों के कारण उसके हरम में रहते हुए भी उसने पाँच वर्षों तक जहाँगीर के कामुकतापूर्ण निवेदनो तथा अशक्तियों की कोई परवाह नहीं की। अन्त में, उसे जहाँगीर की काम-बुभुक्षा के समस्त अपने वैधव्य की पवित्रता को समर्पित करना पड़ा तथा १६११ से बड़ी हिचकिचाहट के साथ दूसरे पति, बादशाह जहाँगीर, की पत्नि बनना पड़ा। यह बड़ी व्यंग्यपूर्ण घटना थी कि वह पीछा किये गये तथा मारे गये दरबारी के पसंग से स्वयं शाही हत्यारे के पसंग पर पहुँच गयी।

क्योंकि जहाँगीर की मेहरुन्निसा यानी नूरजहाँ के प्रति बड़ी ललक थी, और वह बड़ी भूत थी, अतः वह अपना प्रभाव एवं शक्ति प्रदर्शित करने लगी। उसने अपने भाइयों तथा पिता को शक्ति के झोहड़ों पर पहुँचा दिया। उसकी भतीजी अर्जुमन्द बानो बेगम का विवाह शाहजहाँ से हो गया। कहा जाता है कि उसका पिता एतमाद-उद्-दौला आगरे में हड़पे गये एक सुन्दर हिन्दू भवन में दफनाया पड़ा है, जिसे प्रवर्चित दर्शक को उसका मकबरा बता दिया जाता है। मुस्लिम इतिहासों के झूठे जाल में फँसने से पूर्व हम सामान्य दर्शक, इतिहास पंडित तथा पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों से यह सोचने के लिए कहते हैं कि जब जीवित एतमाद-उद्-दौला की रहने तक को जगह नहीं थी, मृतक एतमाद-उद्-दौला के लिए यह भव्य भवन कहाँ से आ गया! हमारे अनुसार वह उसी इमारत में ठहरा करता था, जिसे आज उसका मकबरा बताया जाता है। प्रत्येक मध्यकालीन मुसलमान हमने गये उसी हिन्दू महल में दफनाया पड़ा है, जिसमें उसने अपना जीवन व्यतीत किया।

कुछ वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् ही जहाँगीर असाध्य एवं अन्वर्त मरण हो गया। वह लिखता है: "मैंने मद्यपान प्रारम्भ किया तथा दिन-र-दिन और भी अधिक पीता गया, फिर तो अंगूरी मदिरा का मुझ पर कोई प्रभाव ही न होता, फिर मैंने स्प्रिट पीना प्रारम्भ कर दिया। नौ वर्षों

के काल में मैं स्प्रिट के २० प्याले पी लिया करता था। १४ दिन में तथा दोष ६ रात में। इनका भार ६ सेर था। किसी को मुझसे कुछ भी कहने का साहस न होता और मामला यहाँ तक बढ़ गया कि मदिरामत्त होने पर कांपने के कारण मैं अपना प्याला भी नहीं संभाल सकता था। दूसरे मेरा प्याला पकड़े रहते, तब मैं पीता।" जहाँगीर के दरबार में आये पश्चिमी यात्रियों ने लिखा है कि जहाँगीर सबके सामने बेहोश होकर गिर पड़ता और कभी-कभी तो बड़ी दयनीय अवस्था में रो पड़ता तथा उसके मुँह के किनारों से लोट गिरने लगती। जहाँगीर बताता है कि 'हकीमों की सम्मति के कारण जब उसे शराब का परिमाण कम करना पड़ा उसने 'भलुआ' की मात्रा बढ़ा दी, "मैंने आदेश दिया कि मेरी स्प्रिट में अंगूर की शराब मिला दी जाये, दो भाग शराब तथा एक भाग स्प्रिट।"

असाधारण मद्यपान से जहाँगीर का स्वास्थ्य गिर गया। अब वास्तविक शक्ति नूरजहाँ के हाथ में थी। जहाँगीर को निबंल या खुरंम उपनाम शाहजहाँ ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह की तैयारी कर दी। १६२१ में उसने अफगानों के विरुद्ध चढ़ाई करने से इन्कार कर दिया। दक्षिण जाते समय अपने साथ उसने अपने बड़े भाई अंधे खुसरू को साथ ले जाने की हठ की तथा सिंहासन के उस भावी दावेदार की हत्या कर दी।

शाहजहाँ का विवाह यद्यपि नूरजहाँ के भाई की पुत्री से हुआ था फिर भी वह उसे राज्य-प्राप्ति के खेल में सबसे सबल शत्रु समझता था। शाहजहाँ की क्रूर आकांक्षा से सतर्क हो नूरजहाँ शाहजादे शहरयार की, जिसे शेर अफगन से उत्पन्न उसकी सगी पुत्री ब्याही थी, रक्षिका बन गयी। उसने अन्य शाहजादे परवेज को भी बिहार से अपने पास बुला लिया। समाचार फैल गया कि शाहजहाँ ने उसकी तथा शहरयार की सम्पदाएँ अधिकार में ले ली हैं। उसने शहंशाह जहाँगीर को बड़े धृष्ट पत्र लिखे तथा उसके लौटने सम्बन्धी आदेशों की अवज्ञा करता रहा।

शाहजहाँ की बढ़ती शक्ति, आकांक्षाओं तथा धृष्टता से भयभीत हो जहाँगीर ने उसे प्रदत्त भूमि-सम्पदा से ही सन्तुष्ट रहने तथा अधिकांश सैनिकों को अफगान युद्ध के लिए भेजने के आदेश दिये। जहाँगीर लिखता है: "खुरंम अपने कुटिल मार्ग पर दृढ़ रहा। मैं उसे दण्ड देने चला। मैंने

आदेश दिये कि अबसे आगे उसे 'नरायण' कहा जाया करे।" शाहजहाँ जल्दी से आगरे पर अधिकार करने बड़ा पर अपनी विजय में विश्वस्त न हो, फतहपुर सीकरी में डेरा डाला। ७० वर्षीय खानखाना भी उससे वहाँ जा मिला। अनेक दरबारियों की सम्पत्ति पर शाहजहाँ ने अधिकार कर लिया था। शाहजहाँ के समर्थक दिल्ली के समीप अलीपुर में हार गये और वह मानवा तथा वहाँ से दक्षिण चला गया। वहाँ से आन्ध्र तथा बंगाल होते हुए उसने बिहार में रोहतास दुर्ग पर अधिकार कर लिया पर इलाहाबाद में उसे मृत्यु की खानी पड़ी। शाहजहाँ के समूचे विद्रोही जीवन में उसका गिरोह हिन्दू-भूमि को गिद्ध की भाँति खाता रहा तथा हिन्दुओं की सम्पत्ति लूटता तथा अग्नि की भेंट करता रहा। मन्दिरों को मस्जिद बना दिया गया। अनेक मध्ययुगीन मन्दिर तथा भवन जो आज मकबरों तथा मस्जिदों के रूप में खड़े हैं, ये अपने सम्राट पिता के विरुद्ध तलवार तथा मशाल लेकर खड़े होने वाले शाहजादे खुर्रम उर्फ शाहजहाँ के दानवी नृत्य का परिणाम हैं।

विशेष कुछ हाथ न लगने पर शाहजहाँ ने सन्धि की बात चलाई। उसे रोहतास दुर्ग देना पड़ा। अपने पुत्रों द्वारा तथा औरंगजेब को अपने पिता के अन्धे व्यवहारों के लिए अपने ही बाबा के यहाँ घरोहर के रूप में जाना पड़ा। इस प्रकार तीन वर्ष की खून-खराबी तथा भयानक गड़बड़ के उपरान्त शाहजहाँ को उदासीन बना दिया गया। पर इस भिड़न्त में महावत खाँ तथा परवेज अकिशाली हो गये। उनकी ओर से भय देख नूरजहाँ महावत खाँ को नाट पवाने चल दी। उसने महावत खाँ को आज्ञा दी कि शाहजादे परवेज को अजिहाँ के संरक्षण में दक्षिण में ही छोड़ वहाँ से बंगाल चला जाय। राजकुमार ने अपने विषमस्त महावत खाँ से सलग होना अस्वीकार कर दिया। महावत ने भी आज्ञा का पालन करने से इन्कार कर दिया। तब उसे दरबार में बुलाया गया। ४,००० जुने हुए राजपूतों को ले वह राजधानी आया। जिन नूरजहाँ को अपने शराबी तथा कामुक द्वितीय पति जहाँगीर के साथ मुस्लिम समझौते इतिहासों में बड़ा भारी न्यायप्रिय कहा गया है, उस मककार नूरजहाँ ने महावत खाँ के विरुद्ध अनेक बनावटी दोष आरोपित किये।

जिराफ़ महावत खाँ ने १६२६ में बादशाह के काश्मीर से काबुल

लौटने पर जहाँगीर को घेरकर बन्दी बना लिया। बादशाह से बिछुड़कर नूरजहाँ ने अपने भाई एवं अन्य दरबारियों को महावत खाँ को दवाने के लिए प्रेरित किया। आक्रमण का पर्यावसान महान् विपत्ति में हुआ। शाही सेनायें मुस्लिम बने राजपूत, महावत खाँ, के समक्ष न ठहर सकीं। राजपूत सेनाओं ने तो अटक दुर्ग तक पर अधिकार कर लिया। शाही दरबार के लगभग सभी महत्वपूर्ण व्यक्ति अब महावत खाँ के घेरे में थे।

वह बड़ी सरलता से जहाँगीर तथा उसके दरबारियों को उनके नर-संहार तथा नारी-दुर्व्यवहार के फलस्वरूप मृत्युदण्ड दे सकता था पर उस की प्रच्छन्न हिन्दू कोमलता तथा मूर्खता ने उससे उन बन्दियों के प्रति विनम्रता का व्यवहार करवाया। इस प्रकार वह एक ही वीर शस्त्र उठाकर हिन्दुस्तान को म्लेच्छ शासन से मुक्त कर अपने वास्तविक धर्म की ओर लौट सकता था। पर यह मूर्ख महावत खाँ विजय के तट पर पहुँच नेत्र निमीलन करता रहा। एस० आर० शर्मा के अनुसार, "वह बादशाह को देश से निकालने तथा अपना राज्य स्थापित करने वाला दूसरा शेर (खाँ) शाह नहीं था। अपने युद्ध-कौशल द्वारा सम्राट को प्रभावित करने वाला वह सच्चा स्वामि-भक्त था।" मध्यकाल में ईश्वर से डरने वाला हिन्दू एवं विदेशी राक्षस मुसलमान में यही अन्तर था।

इसी बीच इस गृहयुद्ध का लाभ उठाने के लिए शाहजादा शाहजहाँ सिन्ध के थड़ा तथा वहाँ से ईरान जाने के इरादे से बड़ा ताकि ईरानी सहायता से वह अपने पिता-बादशाह की हत्या कर सके। पर बीमारी एवं अन्य कारणवश वह दक्षिण लौट आया। परवेज अक्टूबर २५, १६२६ को मर गया। गोदावरी के मुहाने पर स्थित प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर अम्बक पर शाहजहाँ जा पहुँचा। इसके समीप के अनेक मस्जिद तथा मकबरे शाहजहाँ द्वारा हड़पे हुए हिन्दू मन्दिर हैं। बाद के अनेक आक्रमणों में और भी अनेक हिन्दू मन्दिरों का अस्तित्व समाप्त कर दिया गया।

महावत खाँ को विदेशी कुशासक में मूर्खतापूर्ण राज्यभक्ति प्रदर्शित करते देख जहाँगीर तथा नूरजहाँ ने उसे विद्रोही शाहजहाँ के विरुद्ध बन्ने के लिए कहा। यह पग महावत खाँ की क्रूर उपस्थिति से छुटकारा पाने के लिए भी था।

उनकी मिली-जुली शक्ति से भयभीत होकर जहाँगीर के बीमार हो

जाने पर, इसके प्रतिरोध करने की योजना बनायी। कश्मीर में ही इससे थोड़े पर नहीं बंठा जाता था, फलतः पालकी में ले जाया जा रहा था। अक्टूबर २८, १६२७ को उसकी भूख मारी गयी तथा जिस अफीम को वह ४० वर्षों से आसामाधारण रुचि से लेता आ रहा था, अब खाने से मना कर दिया। कुछ प्याले शंगरी शराब के प्रतिरिक्त वह कुछ नहीं खाता था। ताहौर के मार्ग में उसके सूखे गले ने अपनी रुचिपूर्ण मदिरा के लिए पुनः पुकारा। जब उसे उसके होंठों तक ले जाया जा रहा था, वे हिले तक नहीं और उसकी पुतलियाँ भी अल्लाह की मूर्खतापूर्ण खोज में एक बिन्दु पर ही जम गयी। इस प्रकार अत्यन्त मद्य एवं बलात्कार बादशाह के जीवन का अन्त हुआ। वह एक प्राचीन हिन्दू भवन में जो अब पाकिस्तान में है, दफन पड़ा है।

अकबर और उसका पुत्र दोनों ही महिलाओं का अपहरण करने वाले थे। वे निरक्षर अमण्डी राजपूत महिलाओं के अनिष्ट एवं पावन सौन्दर्य को निचल जाना चाहते थे। उधर राजपूत लोग भारतीय ललना के पवित्र सौन्दर्य एवं सम्मान की किसी भी प्रकार रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे। विदेशियों द्वारा अपहरण कर सर्तीत्व लूटे जाने की अपेक्षा वे अपनी स्त्रियों को शक्ति को समर्पित कर देना थोड़ा समझते थे। फिर भी अनेक बार उन्होंने अपनी महिलाओं को इन दुष्ट पशुओं द्वारा ले जाते देखा। जहाँगीर ने जिन हिन्दू राजकुमारियों का अपहरण किया उनमें रायसिंह की कन्या भी थी। जहाँगीर का विवाह यद्यपि मानसिंह की बहन से हुआ था फिर भी उसने मानसिंह के पुत्र जगतसिंह अपनी कन्या को शाही हरम में पहुँचाने के लिए वाध्य कर दिया। अपनी कामुकता में वह इतना अन्धा था कि मानसिंह एवं उसकी नातिन दोनों से विवाह करने में उसे कोई अनौचित्य नहीं दिखाई दिया। विदेशी मुगलों की इस बेजगती तथा अपमान करने हुए हिन्दू ललनाओं के अपहरण का ही परिणाम था कि राजा भगवान दास ने आत्महत्या कर ली, प्रतिवाद करने वाले मानसिंह को अकबर द्वारा बिध दे दिया गया तथा मानसिंह के पुत्र जगतसिंह ने इतना मद्यपान किया कि मर ही गया।

: ७ :

शाहजहाँ

सहस्रों वर्षों से विदेशी राजदण्ड से भयभीत होकर तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के भूत से प्रस्त हो भारतीय इतिहास का अध्यापक-लेखक अज्ञान-वश इतिहास के वास्तविक तथ्यों को दबाकर निरी मनगढ़न्त बातें लिखने के जाल में फँस गया है। इतिहास की ऐसी जालसाजियों की भारत में शाही विदेशी परम्परा है।

भारत में मुगल सिंहासन का पाँचवाँ उत्तराधिकारी शाहजहाँ स्वयं बहुत बड़ा जालसाज था। उसे कामगार खाँ के रूप में अपने पिता के सम्पूर्ण इतिहास को मनमाने ढंग से लिखने के लिए एक चारण मिल गया था, जिसका कार्य वास्तविक जहाँगीरनामा के स्थान पर दूसरा लिखना था क्योंकि उसने (जहाँगीर ने) शाहजहाँ का दुष्ट, नराधम, द्रोही तथा विश्वासघाती के रूप में वर्णन किया था। दूसरी विख्यात जालसाजी, 'तारीख-ए-ताजमहल' नामक एक अभिलेख है जो आगरे के विख्यात ताजमहल के मकबরों के रखवालों को इस नाम का दिया हुआ दस्तावेज कहा जाता है। अंग्रेज विद्वान् कीन (Keene) इस अभिलेख को निरी जालसाजी मानता है।

यद्यपि इस बात पर बल दिये जाने के पीछे सच्चा उद्देश्य ही था कि सभी पाठ्य-विषयों में अकेले इतिहास में ही सत्य को मायावी हिन्दू-मुस्लिम ऐवज के आधोन कर दिया जाए पर इससे वाक्छल को ही बढ़ावा मिला।

स्वतन्त्र भारत में भारतीय इतिहास लेखक को यह कहने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिए कि वह सम्प्रदायवादी एवं राजनीतिज्ञ से भारतीय इतिहास से दूर रहने को कह सके। राजनीतिज्ञ वस्तुतः भारतीय इतिहास से वे तथ्य निकाल सकता है, जिससे साम्प्रदायिक मैत्री में सहायता मिले पर

यदि वह ऐतिहासिक घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है तो इससे मृत्यु एवं ज्ञान की देवियों की कुसेवा ही होती है।

इस दृष्टि से हमें देखना चाहिए कि शाहजहाँ का शासन कथनानुसार स्वर्ण युग का प्रथम ऐसा था, जिसमें उसने अपनी प्रजा को अधिकतम श्रेष्ठ एवं सन्तुष्ट किया तथा दण्डस्वरूप उनका सम्पूर्ण अर्थ छीन लिया।

शाहजहाँ (शाहजादा खुर्रम) का जन्म लाहौर में जनवरी ५, १५९२ को हुआ। उसकी माँ १५८६ में बतपूर्वक छीनकर मुगल हरम में डाल ली गयी एक हिन्दू राजकुमारी थी। वह मेवाड़ के राजा उदयसिंह की कन्या जीषाबाई उपनाम भानमती थी।

स्वभाव से ही घातपाती होने के उसके इस स्वभाव को सुधारने के लिए समय-समय पर नियुक्त किये गये घनेकानेक शिक्षकों से उसने कुछ भी सीखने से साफ इन्कार कर दिया। अपने बादशाह पिता जहाँगीर के जीवन काल में ही बिद्रोह स्वरूप उसने समूचे भारत में डकैतियों तथा लूटखसोट के कुकर्म करने प्रारम्भ कर दिये थे, जिसके फलस्वरूप उसके पिता ने अतीव निराश एवं दुःखी हो उसका लेखा नीच एवं नराधम के रूप में किया है। इतिहासकार का कैसे साहस हुआ है कि उसके विषय में उसके पिता की सम्मति पर ध्यान न देकर उस ग़रारती के शासन को भारतीय इतिहास में स्वर्णकाल कहा है।

अनेक इतिहासकार कीन निश्चिता है कि शाहजहाँ प्रथम मुगल बादशाह था, जिसने अपने सभी विरोधियों का प्राणान्त कर दिया था। उसने अपने अन्धे किए अश्व खुर्रम को आधी रात के समय भार डाला। उस समय खुर्रम शाहजहाँ का संरक्षित बन्दी था। उसने तीन वर्ष तक अपने ही पिता जहाँगीर के बिद्रोह बुढ़ किया और यदि वह उसके हाथ लग जाता तो वह उसे भी मार देता।

दो वर्ष की अवस्था में शाहजहाँ को बेचक हो गयी थी जिससे उसके चेहरे पर बेचक के दाग हो गये थे। १६०७ में उसकी अर्जुमन्द बानू बेगम से सगाई हुई, जिसके विषय में कहा जाता है वह आगरे के ताजमहल में दफनायी गयी थी। दो वर्ष पश्चात् उसकी ईरान की राजकुमारी से सगाई हुई। क्योंकि अर्जुमन्द बानू बेगम सामान्या थी, अतः ईरान की राजकुमारी से सगाई बाद में हुई पर उसका विवाह शाहजहाँ से १६१० में

हो गया था जबकि अर्जुमन्द बानू से १६१२ में हुआ। शाहजहाँ ने बहाम-सा की नातिन से भी विवाह किया। इसके अतिरिक्त उसके हरम में हजारों स्त्रियाँ थीं।

इतिहास में उल्लिखित उसकी संतान अर्जुमन्द बानू से थी। वे थे १६१४ में अजमेर में उत्पन्न जहाँनारा, अगले वर्ष उसी नगर में उत्पन्न पुत्र दाराशिकोह, १६१६ में हुआ अजमेर में ही शाहजुजा पैदा; १६१७ में बुरहानपुर में उत्पन्न दूसरी कन्या, रोजनारा बेगम; अक्टूबर २४, १६१८ में दोहद में उत्पन्न औरंगजेब, १६२५ में रोहतास में उत्पन्न मुराद वक्कस तथा १६३० या १६३१ में उत्पन्न गौहरा बेगम नामक कन्या; अन्तिम संतानोत्पत्ति के समय बेचारी अर्जुमन्द बानू, जिसने वर्ष के विवाहित जीवन में १५ बच्चों को जन्म दिया, चल बसी। यह नहीं पता चलता कि वह १६३० में मरी या १६३१ में। इसी प्रकार यह भी निश्चित नहीं कि उसे बुरहानपुर में दफनाया गया या आगरे में। यह भी निश्चित नहीं कि वह ताजमहल के गुम्बद के नीचे दफनायी गयी। फिर भी इतिहास में निलंजितापूर्वक स्वीकार किया जाता है कि निर्दय शाहजहाँ ने अपनी हजारों पत्नियों में से एक के लिए इस विशाल स्वर्णिल महल का निर्माण किया।

किसी भी इतिहासकार ने ताज के निर्माता के रूप में प्रसिद्ध शाहजहाँ के इस निरर्थक कथन की जाँच करने की आवश्यकता नहीं समझी कि शाहजहाँ ने जीवित मुमताज के लिए ही कितने महल बनवाये जो उसके शव के लिए बनवाया; सिंहासन प्राप्त किए उसे दो ही वर्ष हुए थे कि उसने ताजमहल जैसा विशाल एवं महान् भवन का निर्माण कराया, इस विषय में किसी भी इतिहासकार की अन्तरात्मा को सन्देह नहीं हुआ। यदि यह जिरह पहले ही हो लेती, तो हमारे द्वारा "ताजमहल हिन्दू मन्दिर है" पुस्तक में शाहजहाँ द्वारा निमित्त ताजमहल का उखाड़ा गया मिथक बहुत पहले ही पकड़ में आ जाता तथा इस गप्प की कलई बहुत पहले ही खुल जाती कि शाहजहाँ का शासन काल स्वर्ण युग था।

शाहजहाँ इतना दुष्ट स्त्री-लोलुप था कि अनेक इतिहासकारों ने यह आरोप लगाया है कि अपनी ही कुमारी कन्या जहाँनारा से उसने मंथुन किया। इस कुकृत्य के सम्बन्ध में उसकी निलंज दलील थी कि माजी को

अपने हाथ लगाये गये बाग का फल स्वयं खाना चाहिए। सुन्दरी कुमारियों के साथ वह संपुन स्वयं शाहजहाँ के लिए तो स्वर्ण अवश्य था किन्तु उसकी इसी वजह के लिए तनिक भी नहीं।

शाहजहाँ जब कुमार सुरेंद्र या तब उसकी कूर चालों ने परमात्मा से डरने वाले हिन्दू शासकों पर बहुत विजय प्राप्त करा दी।

शाहजहाँ का मुगल सिंहासन पर आरोहण हिंसा के नाटक द्वारा ही हुआ। जहाँगीर के मरण-काल के समय वह राजधानी से दूर था। उसके सन्तुष्ट धर्मपत्नी ने देवर वंश (सुरेंद्र के पुत्र तथा शाहजहाँ के भतीजे) को एबड के रूप में बादशाह घोषित कर दिया। लाहौर में महत्वा-कांक्षियों नरजहाँ ने अपने हितैषी महारथार को बादशाह घोषित कर दिया। इन दो विरोधी दावेदारों की सेनाएँ लाहौर से छह मील सामने-सामने हुईं। पराजित महारथार को भरे हरम से खींचकर तीन दिन बाद अन्धा बना दिया गया। राजकुमार दानियान के दो युवक पुत्र ताहिमुरस तथा होबान को भी कन्दोगह में डाल दिया गया। शाहजहाँ ने अपने समुद्र को आज्ञा दी कि एबडो देवर वंश समेत सभी विरोधियों का कत्ल कर दिया जाय। इन वधों के पश्चात् शाहजहाँ प्रागरे में फरवरी ६, १६२८ को अबू-ए-मुज्जर शाहजहाँ मोहम्मद साहिब किरन-ए सानी पदवी धारण कर रक्तारजित शाही मुगल सिंहासन पर आसीन हुआ।

जैसे उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे, उसके तीस वर्षीय शासन काल में भी ४८ लड़ाइयों के दाग हैं पर्यात् प्रतिवर्ष उसने डेढ़ लड़ाई से भी अधिक लड़ी। जिस शासनकाल में अनवरत युद्ध होते रहे उसे किसी भी प्रकार मान्य अथवा स्वर्णिम युग तो नहीं कहा जा सकता। यह तथ्य भारतीय इतिहास के उस झूठ को उखाड़ देता है कि शाहजहाँ का शासन भारत में स्वर्णयुग साध।

शाहजहाँ के शासनकाल के प्रथम वर्ष में ही उसे वीर वीरसिंह देव के पुत्र मुर शासक भज्जरसिंह से गम्भीर चुनौती मिली। उसने अबूल फजल को मार बिगाया। इतिहास में अबूलफजल 'निलंजज चापलूस', लोलुप तथा स्त्री-प्रेमी कहा गया है।

शाहजहाँ की सेना द्वारा की गयी कूरता इस लड़ाई से स्पष्ट है। शाहजहाँ का निजी इतिहासकार, मुल्ला अब्दुल हकीम, लिखता है : "बुरी तरह पीछा

किये जाने पर भज्जरसिंह तथा (उसके पुत्र) विक्रमाजीत ने उन अनेक स्त्रियों को मार डाला जिनके घोड़े बक गये थे। रात-दिन पीछा किये जाने के कारण विद्रोहियों को जोहर करने का अवसर नहीं मिला। निराश हो उन्होंने कटार से राजा वीरसिंह देव की पटरानी रानी पार्वती के दो घाव किये तथा अन्य स्त्रियों-बच्चों को भी मारकर भागने ही वाले थे कि अनुयायकों ने धाकर उनमें से अनेक को तलवार के घाट उतार दिया। रानी पार्वती एवं अन्य घायल स्त्रियों को उठाकर फरोज जंग के समीप ले जाया गया। इस भयानक युद्ध से बचकर पलायन कर जाने वाले भज्जर तथा विक्रमाजीत जंगल में गौड़ों द्वारा बहुत बुरी तरह मार डाले गये। खान दोरन उनके शरीरों की खोज में चला तथा प्राप्त कर उनके सिरों को काट दरबार में भेज दिया। बादशाह की आज्ञानुसार उन्हें सेहूर के द्वार पर टंग दिया गया। शेषान खाँ फौरन चाँदा से आया तथा बादशाह के आदेशानुसार उन्हें मुसलमान बनाकर इस्लाम कुली तथा अलीकुली नाम दे दिये गये। बुरी तरह घायल रानी पार्वती को छोड़ दिया गया। अन्य स्त्रियाँ शाही महल की (यवन) स्त्रियों की सेवा करने भेज दी गयीं। भज्जर का पुत्र उदयमान तथा उसका अनुज श्यामदेव, जो गोलकुण्डा भाग गये थे, बन्दी बनाकर बादशाह के पास भेज दिये गये। दोनों ने मुसलमान बनने की अपेक्षा मृत्यु को उत्तम समझा अतः उन्हें समाप्त कर दिया गया।"

यह घृणोत्पादक कहानी भारत में हजारों वर्षों के विदेशी शासन का स्मरण दिलाती है। पीछा करने वाले तथा पीछा किये जाने वालों के केवल नाम बदल गये हैं अन्यथा कार्य तो समान ही थे। परिवर्तित हिन्दुओं के नाम बलपूर्वक इस्लाम कुली जैसे रख दिये गये पर वे वास्तव में इस्लाम के ही कुली बना दिये गये। घायल हिन्दू स्त्रियाँ, जो मुस्लिम हरमों के लिए अनुपयोगी सिद्ध हुई सड़क के किनारे घावों के दर्द से कराहती भूखी-प्यासी मरने के लिए छोड़ दी गयीं। जीवित पकड़ी गयी स्वस्थ स्त्रियों का निर्दयतापूर्वक शील भंग करके वेश्या बना दिया गया। इस्लाम में परिवर्तित हिन्दुओं के मस्तिष्कों को इस तरह बदल दिया गया कि वे अपनी मातृभूमि एवं कल तक के अपने सगे-सम्बन्धियों से घृणा कर अपने को अरब तथा तुर्क कहने में गर्व का अनुभव करने लगे।

हैं, इन विदेशी म्लेच्छों से बीर बुन्देले भयभीत नहीं हुए। महोबा का शासक चम्पतराय भी बहुत बड़ा बीर था। गाँवों में छाये हुए मुसलमानों पर उसने साहसपूर्ण आक्रमण किये तथा मुस्लिम गुण्डों के गिरोहों के दक्षिण जाने के मार्ग को असुरक्षित कर दिया। वह अविजित रहा। बाद में उसके पुत्र छत्रसाल ने भी प्रौरंगजेब की शक्ति को तुच्छ समझा।

इसी वर्ष (१६६६) गऊ नरपुर के शासक जगतसिंह और उनके उत्साही पुत्र राजरूप ने भी मुगल साम्राज्यवाद को हीन समझा।

सर्वाँ जहाँ सोदी नामक एक मुस्लिम सामन्त ने भी मुगलों के संरक्षण से दूखी हो खूना विद्रोह घोषित कर दिया। सर्वाँ जहाँ का हर जगह पीछा किया गया। उसके पुत्रों को या तो मार डाला गया अथवा बन्दी बना लिया गया। सर्वाँ जहाँ तथा उसके परम प्रिय पुत्र अजीज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये तथा उनके लिए मुगल राजधानी भेज दिये गये, जहाँ उन्हें दुर्ग के द्वार पर प्रदर्शित किया गया।

शाहजहाँ के दुःखदायी शासन के अन्य युद्ध इस प्रकार थे—

१. शासन के तीसरे वर्ष नासिक तथा हिन्दू तीर्थस्थल अम्बिकेश्वर जीतने सेना भेजी गयी।

२. बहुराय तथा उनके दो पुत्र उजला तथा रघु एवं पीत्र बसन्त को घेरकर मार डाला गया।

३. मिर्जामहा के विरुद्ध देवलगाँव, बागलान, संगमनेर, चगदोर दुर्ग, बीर, गेरगाँव, पारणगाँव, चालीस गाँव तथा मंजीरा दुर्ग के चारों ओर युद्ध छेड़ा गया।

४. शारु दुर्ग, परेन्दा, सितुन्दा तथा नान्देर के विरुद्ध दक्षिण में अनेक वर्षों चलने वाला युद्ध किया गया।

५. शासन के चौथे वर्ष बीजापुर के मुहम्मद आदिल शाह के विरुद्ध सेना भेजी गयी।

६. क्योंकि उसका सेनापति आग्रह सर्वाँ दक्षिण में मुगल-शत्रुओं की कसर नहीं तोड़ सका था अतः बहुत दिनों तक बुरहानपुर में ठहरकर वहाँ हुआ बादशाह कोष करता हुआ अपनी राजधानी आगरे लौटा।

७. हुक्ली दुर्ग का हथिया लिया गया।

८. वर्ष की बार बालना दुर्ग पर युद्ध हुआ।

९. शासन के छठे वर्ष भील सरदार भागीरथी ने मुगल शासन के विरुद्ध मालवा में विद्रोह प्रारम्भ कर दिया।

१०. इसी वर्ष मुगल साम्राज्य में तथा जहाँ कहीं उनकी विनाशकारी सेना जा सकती थी, सभी हिन्दू मन्दिरों को भ्रष्ट करना प्रारम्भ किया गया। ये सभी उन्हें हथियाने में मारे जाने वाले यवनों के मकबरे तथा मस्जिदें बना दिये गये।

११. दौलताबाद दुर्ग को आक्रमण करके अधिकार में कर लिया गया।

१२. दो क्रूर मुसलमान सेनापतियों, कासिम सर्वाँ तथा कम्बू सर्वाँ ने ४०० ईसाइयों को, जिनमें स्त्रियाँ भी थीं, घेर लिया। उन्हें भयानक धमकियाँ देकर अपने को मुसलमान कहने के लिए बाध्य किया गया। शाहजहाँ का इतिहासकार कहता है : "(यवन) धर्म-रक्षक बादशाह ने आज्ञा दी कि इस्लाम धर्म के सिद्धान्त उन्हें समझा दिये जायें तथा उन्हें इन्हें स्वीकारने के लिए कहा जाय। कुछ ने यह धर्म स्वीकार कर लिया, किन्तु अधिकांश ने इस प्रस्ताव को हठपूर्वक ठुकरा दिया। उन्हें समीरों को बाँटकर यह कह दिया गया कि इन घृणित हतभाग्यों को सक्त कैद में रखा जाय। ऐसा हुआ कि उनमें से न जाने कितने जेल से नरक पहुँच गये। उनकी जो मूर्तियाँ मोहम्मद के सन्धान थीं उन्हें तो यमुना में फेंक दिया गया, शेष को खंडित कर दिया गया।" इस घटना से ज्ञात होता है कि इस्लाम के अनुयायी किस प्रकार प्रत्येक पीढ़ी में हिन्दुओं तथा ईसाइयों को प्रातर्कित कर संख्यावृद्ध होते रहे।

१३. शासन के दसवें वर्ष दक्षिण में शिवाजी के पिता शाहजी भीसले के विरुद्ध युद्ध छेड़ा गया। उनका माहुली एवं मुरंजन के पार तक पीछा किया गया तथा अनेक दुर्ग जीत लिये गये।

१४. कश्मीर के शासक जफर सर्वाँ को तिब्बत के विरुद्ध अभियान करने का आदेश दिया गया।

१५. ग्यारहवें वर्ष सिन्धु के फल्लू के कन्धार एवं अन्य दुर्ग हथिया लिये गये।

१६. परीक्षित द्वारा शासित कूच हाजू एवं लक्ष्मीनारायण द्वारा शासित कूच बिहार विद्रोह कर उठे।

१७. नौ दुर्गों, ३४ परगनों तथा १,००१ गाँवों वाले बगलान (Baglan) क्षेत्र के विरुद्ध भी युद्ध छेड़ दिया गया।

१८. शासन के १२वें वर्ष जेतगाँव के राजा माणिकराय के विरुद्ध अभियान कर उसे पराजित किया गया।

१९. विजाल तिब्बत के शासक सांगी बेमुखल द्वारा लघु तिब्बत के बुरान जीत लिये जाने पर उससे जुर्माना वसूल करने सेना भेजी गयी।

२०. शासन के १३वें वर्ष कन्धार के विरुद्ध सिस्तान (Sistan) से प्राक्रमणकारी दल भेजा गया। वस्त के समीप खाँसी दुर्ग को पहले तो ले लिया गया पर बाद में त्याग दिया गया।

२१. शासन के १४वें वर्ष गुजरात के विद्रोही कोलियों तथा काठियों एवं काठियावाड़ के जाम साहब के विरुद्ध सेना भेजी गयी।

२२. कोंगड़ा के राजा वसु के सुपुत्र जगतसिंह ने बादशाह शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

२३. शासन के १७वें वर्ष पालामऊ के राजा के विरुद्ध शाही सेना भेजनी पड़ी।

२४. शासन के १७वें वर्ष बलख तथा बदरशा के विरुद्ध युद्ध छेड़ा गया। ये दोनों समरकन्द की प्राप्ति की कुंजी थे। बादशाह को स्वयं काबुल जाना पड़ा। काहमर्द के दुर्ग को प्राप्त कर लिया गया तथा कुंदज एवं बलख जीत लिये गये।

२५. विजित प्रदेशों के विद्रोहियों को जीतने का कार्य सादुल्ला खाँ को सौंपा गया।

२६. शासन के २२वें वर्ष कन्धार के विरुद्ध फारसियों की सेनाएँ बड़ी। बड़े लम्बे रक्तपूर्ण युद्ध के पश्चात् वस्त एवं कन्धार का समर्पण कर उनसे लड़ने वाली शाही सेना बहुत बुरी तरह हारकर प्रत्यावर्तन कर गयी।

२७. शाहजहाँ की सेनाओं द्वारा अपनी फसल को सम्पूर्णतः नष्ट किए जाने तथा सम्पत्ति को लूट जाने के कारण क्रोधित हो गजनी-क्षेत्र के निवासी २३वें शासन-वर्ष में विद्रोह कर उठे।

२८. २८वें वर्ष अफगाणों को आज्ञा दी गयी कि वह चित्तौड़ को बहादुर राणा को दण्ड दे।

२९. शासन के २९वें वर्ष गोलकुण्डा तथा हैदराबाद जीतने का अभियान छेड़ा गया।

३०. शासन के ३०वें वर्ष शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरंगजेब की बीजापुर के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने की आज्ञा दी।

३१. शाहजहाँ के दुःखपूर्ण शासन के अन्त की और राजा जयवंत सिंह भी उसका अजेय शत्रु उठ खड़ा हुआ था।

उपर्युक्त अत्यन्त संक्षिप्त सर्वेक्षण से भारतीय इतिहासों में शाहजहाँ का शासन-काल अतीव शान्ति एवं उन्नति का काल था।

भारत के मध्यकालीन इतिहास के परीक्षकों तथा प्रश्नपत्र बनाने वालों को शाहजहाँ के तथाकथित स्वर्णकाल के वर्णन के लिए कहकर मानवीय भेष का अपमान नहीं करना चाहिए। यदि स्वर्णिम काल से उनका अभिप्राय शाहजहाँ द्वारा आतंक, भय, हत्या तथा लूटमार द्वारा प्रभूतपूर्व सम्पत्ति एकत्र करने से हो तब तो उचित ही है कि विद्यार्थियों से उसके विषय में सविस्तार लिखने के लिए कहा जाय।

वे सोचे, समझे अनेक दावों को तौते की भाँति रटने पर ही स्वर्णिम युग की यह भावना घ्रात है। इनमें एक यह है कि शाहजहाँ ने ताजमहल बनाया। किन्तु शाहजहाँ का अपना सरकारी इतिहास, बादशाहनामा, के प्रथम भाग के ४०३वें पृष्ठ पर अंकित है कि ताजमहल मानसिंह का महल था, जिसे मुमताज के दफनाये जाने के लिए मानसिंह के पौत्र जयसिंह ने ले लिया गया था।

शाहजहाँ के तथाकथित निर्माण सम्बन्धी व्योरो की प्रसृत्यता से भी प्रमाणित हो जाता कि ताजमहल हड़पा हुआ हिन्दू भवन है। इसके व्यय के आकलन भी भिन्न-भिन्न हैं—४० लाख रुपयों से लेकर ६ करोड़ १७ लाख तक। निर्माण-काल भी १० से २२ वर्ष तक बताया जाता है। इसके रचनाकार का नाम भी विभिन्न नामों से वर्णित है—कहीं रहस्यपूर्ण ऐसा एफेण्डी (Essa Effendi) तो कहीं मायाबी महमद मेलेन्डीस, कहीं फ्रांसीसी आस्टिन द बार्दों (Austin-de-Bordeaux) तो कहीं इतालवी जेरीनिमो बेरोनियो (Geronimo Veroneo) तो कहीं स्वयं शाहजहाँ। यह भी कहा जाता है कि इसका डिजाइन उनमें से छाँटा गया है, जो विश्व

निबिदा के रूप में, संस्कार भर से भाए थे। शायदा शाहजहाँ के अपने दरबार में ही बने थे। इतना ही नहीं विभिन्न आलेखों में मुमताज की मृत्यु-तिथि में भी अन्तर थाया जाता है। यह नहीं पता कि उसकी मृत्यु १६३० में हुई शायदा १६३१ में। और फिर भी यह कहना कि निराश शाहजहाँ ने मानसिक संतुलन प्राप्त कर उसके आलेखन के लिए विश्व से निबिदाएँ माँगीं, उसका चयन किया, हजारों चित्र बनाये, इसका काफ़ी काम नमूना बनाया, धन की स्वोक्ति दी, ईंट, संगमरमर एवं अन्य मूल्यवान पत्थरों के लिए आदेश दिया, निर्माण तक प्रारम्भ कर दिया और यह सब १६३१ तक—शाहजहाँ का इतना सरदर्द मोल लेना 'सहल रजनी चरित्र' की झुझों से भी बड़ा झूठ है।

इसके साथ प्रो० वी० पी० सक्सेना का वह शोध है, जिसके अनुसार ताज के निर्माण का कोई प्रामाणिक अभिलेखन नहीं। यह प्रमाण के बावजूद भी जो ताज को देखकर विश्वस्त हो जाते हैं कि यह वास्तविक एक मूल रूप में मुस्लिम निर्माण है वे उस सीधेसादे भूगोल के विद्यार्थी के समान हैं, जो यह कहता है कि व्यक्तिगत निरीक्षण से उसे पृथिवी गोल न मान्य होकर सिक्के जैसी चपटी लगती है।

ताजमहल के सम्बन्ध में यह मानने का प्रमाण है कि इसपर एक पाई भी खर्च करने के स्थान पर शाहजहाँ ने इस हिन्दू प्रासाद को हड़पकर अपने धन कमाया। वह इसके रजत द्वार, स्वर्ण कटघरे (Railings), रत्न-वर्धित संगमरमर के पदों से रत्न तथा बहुमूल्य भयूर सिंहासन ले गया। शाहजहाँ के दरबार में अनेक वर्ष ठहरने वाला फ्रांसीसी यात्री टेव-लियर तक अपने 'भारत यात्रा' (Travels in India, अंग्रेजी अनुवाद) के पृष्ठ १११ पर लिखता है कि "शाहजहाँ ने मुमताज को तास-ए-मर्का (यानी ताजमहल) के समीप कोई स्थल दफनाया था, जहाँ विदेशी आते थे ताकि उसका उनकी प्रशंसा करें।" (उसने 'समीप' शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि प्रथमतः मुमताज कब्र के नीचे न दफनायी जाकर मुसलमानों के कब्रानुसार बाहर बाग में दफनायी गयी थी)। शाहजहाँ सिंहासन पर १६२० में बैठा और मुमताज १६३० या १६३१ में मरी, वह इतनी मूल्यवान् चीज़ नहीं प्रारंभ कर सकता था, जबकि अपने शासन के प्रारंभ में ही समस्त राज्य में उठे हुए अनेक उपद्रवों के अतिरिक्त उसे बुन्देला

सरदार तथा खौ जहाँ लोदी के विकट विद्रोह का सामना करना पड़ा था। यदि उसके 'स्वर्ण युग' को समृद्धि तथा प्रचुर सामग्री के आधार पर उचित ठहराया जाता है तब भी यह सब झूठ एवं अविश्वसनीय है। उसकी लूट-खसोट के कारण शाहजहाँ के शासनकाल में हिन्दुस्तान में अनेक बार बड़े भयानक दुर्भिक्ष पड़े। उस युग में समृद्धि का तो कहना ही क्या, लोग सहस्रों की संख्या में भूख तथा रोग से काल-कवलित हो गये। यह शाहजहाँ के निजी सरकारी इतिहास से प्रमाणित है। दक्षिण एवं गुजरात के दुर्भिक्ष का वर्णन करते हुए अब्दुल हमीद लिखता है: "जीवन एक रोटी में बिक रहा था पर कोई खरीदने वाला नहीं था। कुत्ते का मांस बकरे के मांस के नाम पर बिकता था तथा मृतकों की पिसी हुई हड्डियाँ आटे के साथ मिलाकर बेची जाती थीं। अन्त में ऐसी दशा हो गयी कि आदमी आदमी को खाने लगा तथा पुत्र का गोشت उसके प्रेम से अधिक मूल्यवान् हो गया। मृतकों की अत्यधिक संख्या से मार्ग अवरुद्ध हो गये।" आश्चर्य की बात नहीं कि शाहजहाँ के पाशविक शासन ने हिन्दुस्तान के निवासियों की ऐसी पाणविक दशा बना दी कि वे एक-दूसरे को इसी प्रकार खाने लगे जैसे जंगल के निवासी। कैसी विडम्बना है कि ऐसे शासन को स्वर्ण युग कहा जाता है।

यदि शाहजहाँ के शासन को यह कहकर भी उचित ठहराया जाता है कि वह स्वर्ण युग था कि उसकी सन्तान तथा उसमें प्रगाढ़ स्नेह था तथा उसने उन्हें समृद्ध एवं शान्त राज्य प्रदान किया तब भी यह दावा झूठा है। मोहम्मद काजिम के आलमगीरनामा में लिखा है, "आठवीं सितम्बर, १६५७ को बादशाह शाहजहाँ बीमार पड़े। प्रशासन में हर प्रकार की अनियमितताएँ आ गयीं तथा हिन्दुस्तान के विशाल भूभाग में अनेक झगड़े उठ खड़े हुए। चारों ओर विद्रोही लोगों ने विद्रोह के सिर उठा लिये। परेशान जनता ने कर देने से इन्कार कर दिया। विद्रोह की हवा चारों ओर फैल गयी थी तथा धीरे-धीरे यह बुराई इतनी बढ़ गई थी कि गुजरात में मुराद बख्श सिंहासन पर बैठ गया, लूतबा पड़वाने लगा, अपने नाम के सिक्के चलाने लगा तथा राजा की उपाधि ग्रहण कर ली। बंगाल में यही कार्य शुजा ने किया, पटना पर चढ़ाई कर दी तथा वहाँ से बनारस को घेर बसा।"

शाहजहाँ को मूत्रकृच्छ्र रोग था। उसके सबसे बड़े बेटे दारा शिकोह ने

अपने को निरमल तथा शाहजहाँ के जीवन काल में ही राजधानी में सभी गृह काम करने के कारण अपने को वास्तविक उत्तराधिकारी समझा। शाहजहाँ के बीमार हो जाने पर दारा ने समस्त राजकीय कार्य अपने हाथ में ले लिये तथा मन्त्रियों को राजधानी की किसी भी बात का बाहर भेज न खोलने की आज्ञा देकर दक्षिण, बंगाल तथा गुजरात से आने वाले सभी भागों को प्रवरुद्ध कर दिया ताकि उसके तीन भाई, जो मुगलों के दुर्दमनीय शत्रुओं के विरुद्ध राजकीय सेना का संचालन कर रहे थे, राजधानी में न घुस पायें।

दरबार के ऐसे वातावरण में जहाँ घोखेबाजी एवं कृतघ्नता का बोल-बाला था वहाँ शाहजहाँ की शारीरिक अक्षमता का समाचार गोपनीय न रह सका। शाहजहाँ के महत्वाकांक्षी तथा हत्यारे पुत्रों के बीच गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया। प्रत्येक यह आकांक्षा करता था कि वह सर्वप्रथम अपने पिता को इन्दी बनाकर अन्य तीन की हत्या कर दे।

दारा जानता था कि सभी भाइयों में औरंगजेब सबसे मक्कार है। औरंगजेब को निर्बल बनाने के लिए दारा ने अपने पिता शाहजहाँ के नाम से औरंगजेब के साथ सभी सामन्तों तथा सेनापतियों को कचहरी में हाजिर होने का आदेश भेजा। इसे आशा थी कि इस प्रकार यह औरंगजेब को उन सैन्य टुकड़ियों से रहित कर देगा तथा सिंहासन हथियाने के लिए उनका लाभ स्वयं उठाएगा।

औरंगजेब ने बीजापुर का घेरा डाल रखा था परन्तु वहाँ के शासक निकन्दर प्रागिकगढ़ से शीघ्र ही सन्धि करके घेरा उठा लिया तथा औरंगाबाद की ओर प्रस्थान कर दिया। इसी समय उसे सूचना मिली कि दारा ने आगरा दुर्ग के शाही कोष पर अधिकार करने के लिए दिल्ली से प्रस्थान कर दिया है।

दारा ने गुजरात के विरुद्ध बंगाल में सेना भेजी। दिसम्बर, १६५७ की एक रात गुजरात में चूर हो सोया हुआ था कि इस्लाम की तलवार चलाता हुआ एक हिन्दू नीच गफार राजपूत जयसिंह दारा की सेना लेकर जा बस गया। उसका सामान तथा धन सभी लूट लिये गये और वह अपने कुछ नाथियों को लेकर पलायन कर गया। आगरा लाये गये उन वन्दियों को दारा शिकोह ने सबके समक्ष प्रदर्शित किया और बहुतों को बुरी तरह

मार दिया। अनेक के हाथों को काटकर छोड़ दिया गया।

गुजरात में मुराद के सेनापति ख्वाजा शाहजब ने मुरत की सम्पत्ति बन्दरगाह का घेरा डाल दिया तथा नगर-बुजों को बाह्य से उठाकर नगर पर अधिकार कर लिया। तब उसने वहाँ के सभी व्यापारियों को बुलाकर बलपूर्वक उनसे ६ लाख रुपये ले लिये। उस लुटेरे ने तो १५ लाख की माँग की थी परन्तु नागरिकों ने बड़ी मुश्किल से इस दण्ड को कम करवाया था। इसी समय अक्षम होने से पूर्व ही शाहजहाँ द्वारा भेजी गयी सैन्य सहायता ले मीर जुमला दक्षिण पहुँच गया। औरंगजेब ने उन टुकड़ियों को ले मीर जुमला को बन्दी बना लिया क्योंकि उसे मीर जुमला के इरादों पर सन्देह था।

मक्कार औरंगजेब ने भूठी लोमड़ी का नाटक रचा। उसने अपने भाई मुराद को अत्यन्त ही स्नेह-भरे पत्र में लिखा कि उसकी इच्छा मुराद को राजगद्दी पर बिठा स्वयं संन्यासी बन जाने की है। इस घोखे में फँसकर मुराद बख्श औरंगजेब द्वारा कहे गये ढंग से संयुक्त रूप से युद्ध करने के लिए सहमत हो गया। दोनों भाइयों की सेनाओं ने दारा शिकोह द्वारा भेजी सेना को घेर लिया। शाही सेना का सेनाध्यक्ष जसबन्तसिंह था। हिन्दु होने के नाते औरंगजेब ने उससे घृणा की। अप्रैल २०, १६५८ को उज्जैन के समीप युद्ध हुआ, जिसमें हड़बड़ी में दारा की सेना भाग खड़ी हुई। औरंगजेब ने शाही शिविर को लूट लिया। इस विजय के पश्चात् औरंगजेब उत्तर की ओर बढ़ा। औरंगजेब के बढ़ते हुए भयानक सैन्य-दल से घबराकर दारा सेना एकत्र कर औरंगजेब की प्रगति रोकने दक्षिण की ओर बढ़ा। अबतक शाहजहाँ अपने सबसे बड़े पुत्र के कार्य-कलापों का शान्त एवं तटस्थ दर्शक था। उसके हाथ से राज्य-नियंत्रण पहले ही खिसक गया था। हिन्दुस्तान चार शराबी विदेशी शाहजादों द्वारा हत्याओं के खेल का मैदान बना दिया गया था। शाहजहाँ ने अपने पुत्रों की मध्यस्थता करनी चाही थी पर औरंगजेब के मामा खान जहाँ ने इस कार्य से बाधनाह को यह कहकर विरत कर दिया कि औरंगजेब स्नेहभरा भरोसे का आदमी है, जब शाहजहाँ ने दारा की सेनाओं की पराजय सुनी तो उसने क्रोधित हो अपना डण्डा खान जहाँ के सीने में दे मारा और उसे तीन दिन दरबार न आने के लिए आदेश दिया।

दारा की सेना घोलपुर होकर सामूगढ़ गयी। औरंगजेब एवं दारा की सेनाएं एक-दूसरे से केवल एक मील की ही दूरी पर पड़ी थीं। मई, १६५८ में भयानक युद्ध हुआ। प्रारम्भ में तो औरंगजेब की सेनाओं की हार हुई पर खुर्रमशाह से फेंके गये हवाई गोलों ने दारा के उन हाथियों को समाप्त कर दिया जिन पर स्वयं दारा तथा उसके सेनापति सवार थे। तत्पश्चात् मजदूरन उन्हें घोड़ों पर सवार होना पड़ा। घोड़ों पर सवार होने के कारण सैन्य टुकड़ियों को वह नहीं दिखाई पड़े। भरे युद्ध में नेताओं को न देख सकने के कारण दारा की सैन्य टुकड़ियाँ निराश हो भाग खड़ी हुईं।

पराजित दारा शिकोह घबराकर आगरे की ओर भागा। उसके पास दो सहस्र सवारोही थे जिनमें से अधिकांश घायल थे। बिना किसी सामग्री के दारा ने एक सन्ध्या को सिर नीचा किये, बिना किसी घोषणा के, आगरे में प्रवेश किया। शाहजहाँ ने डाढस देने के लिए दारा को बुलाया तो उसने मना कर अपने स्त्री-बच्चों समेत लाहौर की ओर बढ़ने के लिए दिल्ली की राह ली। दारा के तीसरे दिन दारा की सुरक्षा के लिए शाहजहाँ ने ५,००० सैनिक भेज दिये।

अपनी विजय के पश्चात् थोड़े समय आराम करने के बाद औरंगजेब ने अपने पिता बादशाह शाहजहाँ को फरेब से भरा एक पत्र भेजा जिसमें उसने क्षमा माँगते हुए इस संघर्ष का कारण कोई व्यक्तिगत लाभ न मानते हुए पत्लाह की इच्छा मानी। अनेक राजदरबारी यह देखकर कि औरंगजेब बहुत बड़े विजयी के रूप में उभर रहा है, सामूगढ़ में जाकर उससे मिल गये। उनको साथ ले औरंगजेब उत्तर की ओर बड़ा ओर आगरे के बाहर डेरा डाल दिया। अतितव्यता के समक्ष नत हो शाहजहाँ ने औरंगजेब को एक परचम संरक्षण भरा पत्र एवं एक तलवार भेजी जिस पर अमुक्त 'खालमगोर' अर्थात् विश्व-विजेता लिखा था। यह शुभ शकुन ही नहीं समझा गया अपितु यह शान्तिपूर्वक आगरे पर अधिकार कर लेने का भी निमन्त्रण था। ठीक इसके बाद ही औरंगजेब ने अपने पुत्र मुहम्मद मुलतान को बड़ी के निवासियों को लूटने तथा आतंकित करने के लिए आगरे भेजा। इस प्रकार वहाँ शमशान की शान्ति छा गयी।

एक बार सन्ना था जाने पर औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को जून ८, १६५८ में घागरा-दुर्ग के एक भाग में बन्दी बना दिया तथा बाख

जगत् से उसका सम्बन्ध पूर्णतया बिच्छेद कर दिया। औरंगजेब के पुत्र मुहम्मद मुलतान को अपने बाबा को बन्दी बनाए रखने का काम सौंपा गया।

औरंगजेब ने अब बड़ी हृदयहीनता के साथ अपनी सैन्य टुकड़ी अपने अग्रज दारा के पीछे इस आदेश के साथ भेजी कि उसे युद्ध में मार दिया जाय या बन्दी बना लिया जाय।

दारा अब निराश्रित तथा भगोड़ा था अतः तलवार के बल पर उसने दिल्ली निवासियों से उनकी समस्त सम्पत्ति लूटना प्रारंभ किया। मुसलमानों के हजार वर्ष के भ्रातृ-वधों, आक्रमणों, परस्पर विनाशकारी युद्धों के बीच हिन्दुस्तान के अधिकांश नगरों को कितने ही इस प्रकार के बलात्कार तथा लूट सहने पड़े थे। हर यवन शाहजादा या दरबारी शाही लूट से कुछ-न-कुछ अवश्य पाता। "अमीरों के घरों अथवा शाही कोषों में दारा को जो कुछ मिला उसे ही उसने हथिया लिया।"

औरंगजेब ने अपने बन्दी पिता से मिलना सर्वथा व्यर्थ समझा। इतना ही नहीं, वह अपने अग्रज दारा के पीछे, जिसने दिल्ली छोड़ लाहौर की राह पकड़ ली थी, रवाना हो गया। शाहजहाँ ने गुप्त रूप से काबुल के महाबत खाँ को दारा की सहायता करने, लाहौर में उससे मिलने, इसकी सम्पत्ति लूटने तथा संघर्ष में औरंगजेब को हराने के लिए लिखा। दिल्ली जाते समय मथुरा में औरंगजेब ने अचानक ही, बड़ी क्रूरता से, अपने साथी भाई मुरादबख्श को बन्दी बना लिया। अब तक औरंगजेब उसे बड़ी आकर्षक भेंटों तथा चापलूसी भरी बातों से प्रसन्न करता रहा था, अतः मुराद ने अपने रक्षकों को समीप रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। उसी रात चार हाथी तैयार किये गये, जिनके होठों में बिठाकर चार बन्दियों को चार दिशाओं में, सूर्य पहर में, भेज दिया गया। आगरे की ओर भेजा जाने वाला मुरादबख्श था। यह चाल मुराद के संभाव्य सहाय-भूतिकर्ताओं को विघ्न में डालने के लिए चली गई थी कि ऐसा न हो कि वे सब मिलकर उसके पलायन में सहायक हों।

ज्यों ही दारा लाहौर पहुँचा अपने चोरों-गुण्डों के साथ उसने लाहौर को लूटकर एक करोड़ का सामान इकट्ठा कर लिया। मुलेमान शिकोह बंगाल से आगरे की ओर बढ़ा। पर ज्यों ही वह हरिद्वार पहुँचा उसने

सुना कि उसका सामना करने कोई सेना बड़ी आ रही है। अतः वह मार्ग बदलकर काश्मीर की पहाड़ियों में भाग गया।

दारा की सेना ने धीरे-धीरे उसका साथ छोड़ दिया जिससे वह इतना निराश हो गया कि औरंगजेब के प्रबाध गति से बढ़ते आने का समाचार सुन वह मुल्तान और बाद में थट्टा भाग गया। प्रत्येक नदी पार करने पर वह वहाँ के नाविकों की सभी नौकाओं को जला देता। इस प्रकार सबन शासन के हजार वर्ष में हिन्दुस्तान की जनता का प्रत्येक वर्ग इतना घमावस्त हो गया कि आज हमारा अर्थतंत्र बालू पर टिक गया है।

खीनगर के मार्ग में सुलेमान शिकोह के लोगों ने शाहजादी कुदसिया से दो लाख रुपये छिनवा लिये तथा उसके प्रबन्धक को ले जाकर मौत के घाट उतार दिया। इसके कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि इन शाही लुटेरों ने कुदसिया से बलात्कार भी किया।

खीनगर के प्रधान ने बाह्यतः सुलेमान शिकोह का ससम्मान स्वागत किया। पर एक बार दुर्ग में प्रलोभित कर उसने सुलेमान को बन्दी बना, उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति छिनवा आगरा के दुर्ग में ले जाए जाने के लिए औरंगजेब के सेनापतियों को सौंप दिया। आगरा के दुर्ग में औरंगजेब का पुत्र मुहम्मद सुल्तान पकड़े गये सभी शाही बन्दियों को एकत्र कर रहा था।

जब औरंगजेब ने अपना डेरा मुल्तान में डाला तथा दारा भक्कर (संस्कृत शब्द 'भास्कर' का अपभ्रंश) भाग गया तो समाचार आया कि शाहजादा शुजा शाही राजधानी, आगरा पर अधिकार करने बंगाल से चल दिया है। इसे भयानक दुर्भाग्य मान औरंगजेब दिल्ली की ओर लौट पड़ा। वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि प्रयाग, चीतपुर तथा बनारस के दुर्ग अधिकारी आत्म-समर्पण कर शुजा से मिल गये हैं। शुजा ने इन सभी नगरों एवं समीपस्थ प्रदेश को मुगल-सिंहासन की प्राप्ति के लिए युद्ध करने के लिए बुटा।

और जूमा (मुअज्जम खाँ) ने जिसे बन्दी बना, दोलताबाद छोड़ दिया तथा वा अपनी भक्ति की सीमा खींच कर दया की भीख मांगी, छोड़ दिया गया। उसने सभी प्रमुख धावाराओं को एकत्र किया, कुछ हिन्दुओं को मुस्लिम बनने के लिए बाध्य किया तथा पूरे मार्ग लूटता-खसोटता कूरो

की विशाल बाहिनी ले, औरंगजेब से आ मिला। औरंगजेब की विशाल सेना अब शुजा की सेना का सामना करने पूर्व की ओर बढ़ी। युद्ध में शुजा के सेनानायक अब शत्रुओं की सफाई करने के लिए नियत किये गये। एक टुकड़ी दारा तथा दूसरी शुजा का पीछा कर रही थी। भूसा, प्यासा, निराश दारा भक्कर में था। कूच में होकर मार्ग के सभी नगरों को विनष्ट करता हुआ दारा अहमदाबाद की ओर चला। अहमदाबाद में उसने लोगों से १० लाख रुपये की मूल्यवान् धातुएँ एवं अन्य सामग्री एकत्र की। उसकी टुकड़ियाँ सूरत, खम्बायत तथा भड़ोच लूटने चलीं। औरंगजेब दारा से मिलने अजमेर खाना हुआ। दारा ने जोधपुर के राजा जसवंतसिंह से सहायता की प्रार्थना की जिन्होंने तत्प्राप्तपूर्वक इंकार कर दिया। किकतंभ विमूढ़ दारा औरंगजेब की सैन्य-टुकड़ियों को परेशान करने अजमेर की पार्श्ववर्ती पहाड़ियों में जा छिपा। उसे वहाँ से भी घेरकर खदेड़ दिया गया। तब वह अहमदाबाद की ओर भागा।

पूर्व की ओर शुजा का डाका तक पीछा किया गया। वह भी औरंगजेब की सेना से अनुधावित होता हुआ हड़बड़ी में भागता ही रहा। अन्त में उसने बर्मा की सीमा से लगे हुए अराकान पहाड़ियों के राखन के हिन्दू राजा से सहायता मांगी। पर तभी मुगल लुटेरों ने उसपर झपटा मार १६६० ई० में उसे समाप्त कर दिया।

अहमदाबाद में कोई सहायता न पा दारा कूच के रास्ते पुनः भक्कर भागा। स्थानीय सरदारों के यहाँ शरण ले दारा को अब भी मुगल सिंहासन की प्राप्ति की आशा थी। जब वह मलिक जीवन नामक एक सरदार का प्रतिनिधि था उसकी पत्नी, नादिरा बेगम की अतिसार से मृत्यु हो गई। इसके ठीक पश्चात् मलिक जीवन ने दारा और उसके पुत्र सिफिर शिकोह को बन्दी बना औरंगजेब के सेनानायकों को सौंप दिया। दोनों को जंजीरों में बांध नंगे हाथियों पर दिल्ली चाँदनी चौक तथा अन्य भीड़भाड़ युक्त मुख्य मार्गों पर घुमाया गया। सितम्बर, १६५६ की एक शनि रात में दारा शिकोह, औरंगजेब के बड़े भाई तथा समाने बन्दी, को यंत्रणा दे-देकर पार दिया गया। दूसरे दिन इसकी लाश को दिल्ली में घुमाकर उस हिन्दू महल में दफनाने भेज दिया गया जहाँ कहा जाता है उसका प्रपितामह

हुसार्द दफन पड़ा है।

यह देख-देखकर कि उसकी सन्तानें तथा उसके अब तक के साथी उसके हत्यारे तथा मस्कार पुत्र औरंगजेब द्वारा धीरे-धीरे समाप्त किये जा रहे थे, शाहजहाँ अपने भाग्य कोसता रहा।

कभी-कभी अपने एकाकीपन तथा असम्मान के विषय में वह अपने पुत्र औरंगजेब को बड़े लम्बे पत्र लिखता। यह मुसीबतें तथा नीचा दिखाना सब भाग्य का फल था जिसे अल्लाह एक दुष्ट पुत्र द्वारा दुष्ट पिता को दे रहा था। औरंगजेब पतक स्नेह का प्रदर्शन करता हुआ उसे छलपूर्ण पत्र लिखता रहा तथा साथ ही अपने पिता के प्रति क्रूरता एवं असम्मान में बढ़ि करता रहा। शाहजहाँ को पता चला कि ग्वालियर दुर्ग की कोठरी से पलायन करता हुआ उसका पुत्र मुराद पकड़ा गया तथा उसका क्रूरतापूर्वक बध कर दिया गया।

जिस सम्पत्ति को शाहजहाँ ने छिपा रखा था उसे औरंगजेब के क्रूर आदेशों के अनुसार उसने अनिच्छापूर्वक बता दिया। दारा शिकोह जल्दी में आगरे के दुर्ग में पलायन करते समय अपने हरम की स्त्रियों और २७ लाख रुपये के जवाहरात छोड़ गया था, जिन्हें सौंपने के लिए शाहजहाँ को मजबूर कर दिया गया।

इस प्रकार अपने पुत्र से पीड़ा तथा अपमान पा, शाहजहाँ औरंगजेब के शासन के आठवें वर्ष, जनवरी २२, १६६६ को मर गया। गर्बीला बिलासी बादशाह लड़के द्वारा बन्दी बनाया जाकर मरा। शाहजहाँ का शासन फरवरी ६, १६२८ से सितम्बर ८, १६५७ तक रहा। १६५८ में औरंगजेब ने अपने को बादशाह घोषित कर दिया। अन्तिम आठ वर्ष के बन्दी जीवन के अपमान से मृत्यु ने उसे जाण दिया। अनेक कुरकलियों का दोषी शाहजहाँ सामोशी से, बिना किसी के याद किए, मर गया। अन्य दरबारियों तथा सरदारों की भाँति शाहजहाँ ने भी अपने लिए कोई मकबरा नहीं बनवाया। कहा जाता है कि वह उस सर्वश्रेष्ठ हिन्दू भवन, ताजमहल, में दफनाया हुआ है जिसे उसने अपनी पत्नी मुमताज को दफनाने के लिए हिन्दू राजा से लिया था। इसमें पूर्ण सन्देह है कि मुमताज वहाँ दफनायी गयी है। आगरे के दर्शक को मूर्ख बनाकर विश्वास दिलाया जाता है कि आगरे के दुर्ग की दीर्घा में लगे हुए तन्हें से शीशे में बूढ़ शाह-

जहाँ ताजमहल की परछाईं देखा करता था तथा इसमें दफन अपनी मृतक पत्नी का स्मरण कर उच्छ्वास भरा करता था। अब इस बात का पता जगत अल्लाखाँ ने लगाया था। आगरा दुर्ग तथा ताजमहल की दीर्घाओं की अनेक गुफाएँ इस तथ्य की मौन गवाह हैं कि शाहजहाँ समेत अनेक विदेशी यवन आक्रमणकारियों ने हिन्दुस्तान की जूट के हजार वर्षों में प्रभावशाली रत्नों को निकाल लिया।

औरंगजेब

औरंगजेब का नाम भारतीय इतिहास में अभिशाप के रूप में है क्योंकि यह पाप, द्वेष, दुष्टता, क्रूरता, आतंक तथा निर्दयता की पराकाष्ठा का श्रोतक है।

औरंगजेब का कोई भी क्रूर कार्य धर्म-निरपेक्ष नहीं था। वे सब के सब विरोध दंग से निर्दयतापूर्वक तथा मुसलमानों की शान के लिए इस्लाम के नाम पर अत्यन्त हृदयहीनता के साथ किये गये थे।

भारत में ७५० वर्षों के विदेशी शासन के शीर्ष पर राजगंही पर आसीन होने वाला औरंगजेब, छठा मुगल बादशाह, कुशासन तथा दुष्कृत्यों की पराकाष्ठा पर पहुँचा देने वाले का ही दूसरा नाम बन गया है।

उसके पश्चात् विदेशी शासक के विषयान्त उभरते हिन्दुत्व ने समाप्त कर दिये तथा जो क्रूर पशु हजार वर्षों तक मनमानी करता रहा था उसे अच्छी प्रकार घेरकर नियंत्रित कर लिया गया, नपुंसक बना दिया गया तथा पिंजरे में बन्द कर दिया गया।

औरंगजेब को घृणित उसकी अपनी थी। उसके अहंकेन्द्रित घबके ने उसके पिता शाहजहाँ को शाही मुगल सिंहासन से धकेल कर आगरे के लाल किले के एक एकान्त कमरे में बन्द कर दिया तथा तीन भाइयों का शिरच्छेद किया। सभी विरोधियों को समाप्त कर औरंगजेब ने सभी मन्दिरों को मस्जिदों में परिवर्तित करने, अपनी प्रजा को लूटने तथा संहार करने का क्रूर जीवन प्रारम्भ किया।

औरंगजेब अपने कुकृत्यों से स्वयं इतना लज्जित हुआ कि उसने "अपने अनुवादों के अभिलेखों पर प्रभावशाली दंग से विराम लगा दिया।" उसके शासन की घटनाएँ "अतः किसी कार्य के निमित्त लिखे गये पत्रों तथा अन-

औरंगजेब

१५५

विकारी (अराजकीय, प्राइवेट) व्यक्तियों द्वारा चुपचाप लिखी गई टिप्पणियों द्वारा ही जानी जा सकती है।" (पृ० १७४, भाग VII, इन्विज्ड एण्ड डाउसन)। वस्तुतः औरंगजेब के कार्यकलाप इतने नीचतापूर्ण थे कि कितना भी स्तुतिमान उन पर कौति का आवरण नहीं बना सकता था, यतः (अपने शासन के प्रथम दशकोपरान्त ही) उसने अपने घोर बादकारों तक से उसके शासन का कोई भी लेखा रखने के लिए मना कर दिया।

प्रो० जॉन डाउसन द्वारा सम्पादित सर एच० एम० इन्विज्ड का मध्यकालीन यवन इतिहास का अष्ट-खण्डीय अध्ययन पाठक को सभी यवन इतिहासों की अविश्वसनीयता के प्रति बार-बार चेतावनी देता है। मुहम्मद काजिम के आलमगीरनामा के विषय में विद्वान् इतिहासकार का कथन है: "उस कृति के प्राक्कथन से यही स्पष्ट नहीं है कि लेखक को उस कृति के सम्पादन में प्रोत्साहन मिलता अपितु यह भी कि वहाँ भी बादशाह के व्यक्तिगत चरित्र को प्रभावित करने वाली घटना ही उसके वर्णन पर तो तनिक भी विश्वास न किया जाय। यही बात लगभग सभी समकालीन इतिहासकारों पर लागू होती है जो उबाने वाली प्रशंसा तथा चाटूक्ति युक्त शीर्षकों से भरे होते हैं। इतिहासकार को स्वयं बादशाह द्वारा छानबीन करने के लिए पृष्ठों को जमा करना पड़ता था। तथा सन्देहास्पद स्थलों पर स्वयं बादशाह द्वारा निर्देशित होना पड़ता था कि क्या रखा जाय और क्या निकाल दिया जाये। शाही श्रोता से स्वयं अपराधी बनने की आशा नहीं की जा सकती। अतः हमें सदैव ध्यान रखना चाहिए कि ऐसे सभी इतिहास एकपक्षीय वृत्तान्त हैं जिनपर किसी भी दशा में भरोसा नहीं किया जा सकता।" (पृ० १७४-१७५, भाग VII)।

विख्यात एवं श्रम करने वाले अंग्रेज विद्वान् द्वारा अपने आठ खण्डों में अनेकत्र दी जाने वाली ऐसी योग्य सम्मतियों से हमारी सरकार तथा जनता की आँखें खुल जानी चाहिए कि यवन शासन का १,००० वर्ष का इतिहास बिल्कुल धोखेघड़ी से भरे विवरणों का संग्रह है, जिनमें अकेबर तथा शेरशाह, फिरोजशाह तथा मुहम्मदशाह जैसे भारतीय राजाओं की आगामी पीढ़ियों के विश्वास के लिए मानवता के बहुत बड़े उपकरण के रूप में उठाया जाकर प्रामाणिक सिद्ध किया गया है। जब आधुनिक

भारतीय इतिहास के अध्यापक तथा प्राध्यापक बड़े गर्व से कहते हैं कि यवन पञ्च ने अपनी सभी लिखित सामग्री अकबर द्वारा जेंचवायी तथा टीक करायी जाती थी तो वे अज्ञानतापूर्वक दोहरे झूठ को बताते हैं— यवन काटकार इतिहासकार द्वारा, द्वितीय नूटरे राजा द्वारा।

अब एच० एम० इतिहास जिस अविश्वसनीयता की बात यवन राजाओं के समकालीन इतिहासकारों के विषय में बताते हैं वह उतनी ही राजाओं के यवन इतिहासकारों के सम्बन्ध में सही है। यवन इतिहासकार विछूने शासनकाल के विषय में लिखते हुए यद्यपि मृतक राजा से भयभीत नहीं होते थे फिर भी वे इतने धर्मांध थे कि हिन्दुओं के प्रति की गयी भयानकतम क्रूरताओं को उन्होंने श्रेष्ठतम व्यवहार में परिवर्तित कर दिया। अतः जब कोई यवन इतिहासकार समसामयिक राजा के विषय में नहीं लिख रहा होता फिर भी उसकी लेखनी सदैव गन्दे-से-गन्दे साम्प्रदायिक विषय में डूबी होती है। फलतः वह हिन्दुस्तान तथा हिन्दुत्व की बदनामी करने तथा इस्लाम और यवन कार्यों की प्रशंसा करने में उत्सर्गित होती है। औरंगजेब की लम्पटता में सहायता देने वाले ऐसे एकपक्षीय वर्णनों के होते हुए भी जो बातें हम तक छन आयी हैं उन्हें पढ़ने पर लगता है कि जैसे हम किसी राक्षस की भयावह कहानी पढ़ रहे हों।

पाँचवें मुगल बादशाह शाहजहाँ के चार जायज कहे जाने वाले पुत्रों में औरंगजेब तीसरा था। उसका जन्म गुजरात के दोहद नामक स्थान पर १६१६ ई० में हुआ था।

जब उसका पिता शाहजहाँ शासन करता था, सेना में औरंगजेब ने विभिन्न स्थान ग्रहण किये तथा अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं। महत्वाकांक्षी, दुष्ट तथा अविश्वसनीय होने के कारण औरंगजेब के लिए अपने बादशाह पिता के प्रयोग रहना कष्टकारक था। उसके किसी भाई द्वारा शाही सिंहासन पर अधिकार कर लेने की सूचना भी असहनीय थी। वह पहले ही ३६ वर्ष का था फिर भी उसके पिता का शासन लगता था, मानो कभी समाप्त ही नहीं होगा। अन्त में अकबर मरा ही गया।

उस समय औरंगजेब उस मुगल सेना का सेनानायक था, जिसने मुस्लिम शासकशाही साम्राज्य की राजधानी बीजापुर का घेरा डाल

दिया था। मुहम्मद काजिम के 'आलमगीर नामा' के अनुसार, "२ सितम्बर, १६५७ को बादशाह शाहजहाँ बीमार हो गया। प्रत्येक प्रकार की अवस्था फैल गई तथा हिन्दुस्तान के सम्पूर्ण अ-प्रदेश में अशान्ति फैल गई। असन्तुष्ट तथा विद्रोही लोगों ने चारों ओर झंकार कर दिया। विद्रोह का बीज प्रत्येक दिशा में अंकुरित हो गया था और क्रमशः यह बुराई इतनी अधिक हो गयी थी कि गुजरात में मुराद बख्श सिंहासन पर बैठ गया, खुतवा पढ़वा लिया तथा अपने नाम के सिक्के ढलवाकर बादशाह की पदवी ग्रहण कर ली। बंगाल में शुजा ने वही कार्य किया, पटना के विरुद्ध सैन्य संचालन किया। तथा वही से बनारस की ओर बढ़ा।" यदि शाहजहाँ के शासनकाल का कोई अन्य लेखा-जोखा न होता तब भी उपर्युक्त अंश इस तथ्य के लिए पर्याप्त प्रमाण था कि शाहजहाँ का शासनकाल निश्चय ही निस्सीम क्रूरता तथा दुष्टता का रहा होगा। नहीं तो उसकी बीमारी की सुनकर उसके सभी पुत्र तथा प्रजाजन एक-दूसरे का गला काटने कैसे दौड़ सकते थे? सबसे बड़े पुत्र दाराशिकोह को अन्य तीन भाइयों की अपेक्षा एक लाभ यह था कि राजधानी में था जबकि अन्य तीनों बहुत दूर के प्रान्तों में नियुक्त थे। यह देख कर कि अब तो उसका पिता असहाय है, दाराशिकोह ने सत्ता अपने हाथ में ले ली तथा जिन आदेशों पर चाहा, अपने रोगी तथा दुर्बल पिता से हस्ताक्षर करा लिये।

दारा ने समस्त महत्त्वपूर्ण सेनानायकों को भाइयों के साथ दूर पड़ी सैन्य टुकड़ियों को लेकर राजधानी आ जाने के आदेश दिये। उसका आशय था कि उन सबको बिना सैन्य टुकड़ियों के जिनकी सहायता से वे सिंहासन हड़पना चाहते थे, दूर छोड़ दिया जाये। बादशाह की अक्षमता के समाचार को देवा दिया गया तथा दूरस्थ चौकियों को आदेश दे दिया गया कि तीनों में से कोई भाई आगरे की दिशा की ओर न बढ़े।

मध्यकालीन मुस्लिम दरबार के गन्दे वातावरण में कोई भी बात गुप्त नहीं रह सकती थी। शाहजहाँ की बीमारी का समाचार उसके तीनों पुत्रों तक किसी प्रकार पहुँच गया। प्रत्येक ने अपने-अपने ढंग से अन्य तीनों को मारने की तथा अपने पिता को बन्दी बनाने की योजना

बनायी। दुष्ट तथा जीव औरंगजेब अन्य सबको अभित करने में सफल हुआ। उसने बहुत जोर जोजापुर के शासक से सन्धि की और उत्तर की ओर बढ़ा।

औरंगजेब ने सर्वप्रथम छोटे भाई मुराद से यह घोषणा करते हुए सन्धि की कि उसे न तो धन की आवश्यकता है न स्याति की। औरंगजेब ने कहा कि उसकी एकमात्र आकांक्षा यही है कि शाही सिंहासन पर मुराद बैठे तथा वह पकीर बनकर मक्का चला जाय। इस प्रकार अपनी तथा मुराद की सेनाएँ सम्मिलित करके औरंगजेब ने आगरे का मार्ग पकड़ा और बाद में मुर्ख तथा संदेहहीन मुराद को बन्दी बनाकर ग्वालियर की एक घाँसी कोठरी में डाल दिया।

दारा तथा जुजा, उसके दो बड़े भाई भगोड़े के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागते रहे तथा उन्हें औरंगजेब की सेनाएँ बुरी तरह खदेड़ती रहीं। शाहजहाँ आगरे के लालकिले में बन्दी था ही तथा दारा उत्तर से लाहौर से आगे भाग गया था फलतः औरंगजेब ने जुलाई २२, १६५८ को उस समय स्वयं को बादशाह घोषित कर दिया, जिस समय दिल्ली के हिन्दू से हड़पे हुए महल तथा बाग में, जिसका नाम उसने आगराबाद उपनाम आलामार रख लिया था, डेरा डाले पड़ा था। उस समय उसका जो शानदार नाम तथा पदवी घोषित की गई वह थी फ़तुन मुदफ़्फ़र मुहोउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब बहादुर आलमगीर बादशाह ए-गाजी।

औरंगजेब के शासन के प्रारंभिक कुछ वर्षों का प्रमुख कार्य अपने दो बड़े भाइयों को जो अब भी दूर थे, पीछा करना था। एक-दूसरे के विरुद्ध अपना युद्ध जारी रखने के लिए तीनों भाई हिन्दुस्तान को लूटते तथा हिन्दुत्व का विनाश करते रहे।

नवम्बर, १६५६ में सबसे बड़ा भाई दारा शिकोह को, जिसने शाह-जहाँ की बीमारी के काल में कुछ महीनों तक वास्तविक प्रभुसत्ता भोगी, अपने पुत्र के साथ बड़े अपमानपूर्वक दिल्ली की मुख्य सड़कों में घुमाया जाकर घन्ट में यातनाएँ देकर मार दिया गया। यह सब कार्य औरंगजेब के आदेश पर क़िआबाद नामक हिन्दू उद्यान में शाह नजर चेला द्वारा हुआ। बाद में उसका मृतक शरीर एक बार फिर दिल्ली की सड़कों पर

घुमाया गया। वह हुमायूँ का मकबरा नाम से विख्यात हिन्दू भवन में दफना दिया गया जो, फ़तुहात-ए-आलमगीरी इतिहास (पृ० १६८, भाग VII) के अनुसार "इस घराने के सभी मारे गये राजकुमारों का कब्रिस्तान है।" यद्यपि दारा भी ऐसा ही धर्मान्व यवन था जैसे अन्य परन्तु उस पर यह दोष लगाया गया कि उसे हिन्दुओं एवं उनके धार्मिक ग्रन्थों से सहानुभूति है। जिन दिनों भारत में यवन धर्मान्वता का बोलबाला था, बड़े-बड़े धर्मान्व दुष्ट मुसलमानों की हिन्दू प्रथाओं से सहानुभूति रखने वाला कहकर यातना दी जाती थी तथा प्राण भी ले लिये जाते थे। राज्य के उत्तराधिकारी दारा की हत्या को भी औरंगजेब ने इसी तरकीब से अनुमोदित किया था। औरंगजेब के चाटुकारों को इन झूठी टिप्पणियों के जाल में फँसकर इतिहासकार दारा को बड़ा भारी संस्कृतज्ञ तथा हिन्दू धर्मग्रन्थों का प्रेमी बताते हैं। ऐसे ही नितान्त असत्य दावे प्रचलित रहीम खानखाना, खुसरू तथा अनेक ग्रन्थों के विषय में किये गये हैं। ये बातें ईर्ष्यालु प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा दरबार में कही जानी शुरू कर दी जाती हैं ताकि उसके विरुद्ध बातावरण बनाया जाकर उसके प्राण ले लिए जायें। संस्कृत का वास्तविक पण्डित उसके समान धर्मान्व, दुष्ट, हत्यारा, कातिल, मद्यप, क्रोधी, लुटेरा तथा अपहरणकर्ता नहीं रह सकता।

मुन्तकबल लुबाब का लेखक खफी ख़ाँ लिखता है: "औरंगजेब के शासनकाल के प्रथम दो वर्षों में देश में, मुख्यतः पूर्वी एवं उत्तरी अंचलों में, विशाल (म्लेच्छ) सेना के गतिशील होने से अन्न महंगा हो गया था।" यह परोक्षतः स्वीकृत उस भयानक दुर्भिक्ष का स्वीकरण है जो यवन शासन के सहस्र वर्षों तक की लूटपाट के कारण उत्तर भारत में फैला रहा।

खुली लूट, रिश्वत तथा अन्य ऐसी ही अवैधानिक अर्थ-स्वीकृति के प्रतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के करों के नाम पर जनता निर्दयता के साथ लूटी जाती थी। इनमें से कुछ थे 'हर मार्ग', देश के छोटे तथा नावों में चलने वालों से राहदारी कर, प्रत्येक व्यापारी, दुकानदार, कसाई, कुम्हार, काशी, रंगरेज, जोहरी, बैंकर के घर या भूमि पर लगाया गया पंडापी नामक कर, बाजार की भूमि, दुकान तथा स्टाल पर कर। अन्य भी अनेक

बंशान्त कर दे; वषा सरमुमारी, बजमुमारी (बकरियों पर कर), बर गरी (Bar-Gadi), बबर की बराई, तुबाना (मेलों में सभी यात्रियों से गरी (Bar-Gadi), बबर की बराई, तुबाना (मेलों में सभी यात्रियों से लिया गया कर), शराब, जुआघरों, बेइयालयों से वसूला गया कर, अर्थ-व्यय, नजराने, खजानाघरों द्वारा प्राप्त धन का चतुर्थांश—ये तथा ऐसे ही अन्य करों से शाही कोष में करोड़ों रुपये प्राप्त होते थे।" खफी खान का यह कथन (पृष्ठ २४३, भाग VII) कि दुर्भिक्ष के कारण ये सभी नमान कर दिये गये थे, बंसा हो करेव है जैसा प्रत्येक यवन इतिहासकार ने अपने जहाँ सरलश के पक्ष में किया है। परीक्षतः उसके इस असत्य-कथन की स्वीकारोक्ति भी इस टिप्पणी में पायी जाती है: "यद्यपि दयालु बादशाह ने कहे आदेश दिये थे कि इन करों को वसूल न किया जाय, पर लोगों में इतना अधिक लोभ था कि इस राजकीय निषेध का कोई फल नहीं निकला।" यवन कर कितने घृण्य थे, इस विषय में खफी खान कहता है, "ईमानदार एवं उचित लोगों (घराना पवनों) द्वारा विशेषतः राहदारी को बहुत बुरा कर बताया जाता है—पर इससे बहुत पैसा एकत्र होता है। शाही भूभाग के अधिकांश भाग में फौजदार तथा जागीरदार, बल-पूर्वक तथा आतनापूर्वक, व्यापारियों एवं दीन यात्रियों से पहले से कहीं अधिक धन एकत्र करते हैं। जमींदार भी जानते हैं कि कोई पूछताछ तो होने नहीं सही अतः अपने क्षेत्र के मार्गों से राजकीय अधिकारियों की अपेक्षा अधिक धन एकत्र करते हैं। धीरे-धीरे मामला यहाँ तक बढ़ गया है कि केन्दरी से अपने गन्तव्य स्थल तक पहुँचने तक माल के मूल्य से दुगुना कर वसूल कर लिया जाता है। कर एकत्र करने वालों एवं जमींदारों की क्रूरता एवं दुष्टता के कारण सहस्रों यात्रियों तथा शान्तिप्रिय बटोहियों की सम्पत्ति, सम्मान एवं जीवन विनष्ट हो गये।"

यह संकेत कि "बटोहियों का सम्मान विनष्ट कर दिया जाता" स्पष्ट है कि मार्गों पर बलात्कार की घटनाएँ होती थीं।

औरंगजेब के शासन के तीसरे वर्ष उसका पुत्र मुहम्मद सुलतान, जिसने कहा गया था कि बलात्कारों का अधिकार में किए हुए तथा दिल्ली सिद्दासन पर शासक लगाये गये थे, शराब तथा रमणियों के प्रयोग द्वारा मुजा पकड़ लिया गया। मुजा ने मुहम्मद सुलतान के साथ अपनी पुत्री का निवाह करना चाहा। यवन शाहजादे को फाँसने के लिए

इससे अधिक और क्या आवश्यकता थी! हिन्दू जनों से लूटी गई सम्पत्ति को लेकर मुजा के शिविर में चला गया। मुहम्मद सुलतान के आदेश पर शाही सेना का सेनापति मुअज्जम खाँ बड़ी कठिनाई में पड़ गया। उसे भय था कि शाहजादा के पक्ष बदलने के कारण औरंगजेब उसपर भयानक क्रोध करेगा तथा बदला लेगा। औरंगजेब के पुत्र को अपनी ओर करने से मुजा का सम्मान बढ़ गया था, अतः उसने शाही सेना को मुअज्जम खाँ के आधीन कर कहकर दाना शुरू किया। वर्षा ऋतु ने इस कार्य में बाधा पहुँचायी। इसी बीच मुहम्मद सुलतान अपना हक माँगने लगा। जब मुजा की पुत्री उसे दे दी गयी तब वह शान्त हुआ।

वर्षा के पश्चात्, यह देखकर कि उसका सेनापति मुअज्जम खाँ मुजा को नहीं हरा सकता, नवीन सेना लेकर औरंगजेब स्वयं बंगाल पहुँचा। मुजा भाग खड़ा हुआ। अपने क्रूर पिता के भयानक बदले से भयभीत होकर मुहम्मद खाँ ने मुअज्जम खाँ के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया। जब वह दुबारा शाही सेना की ओर जा रहा था उसके नये ससुर मुजा ने उसपर गोली चलायी। किसी प्रकार शाहजादा बच गया तथा जिस कोष को वह मुजा के पास ले गया था उसका बहुत कम अंश मुजा से वापिस ले सका।

औरंगजेब का आदेश था कि शाहजादा तथा उसके संगी-साथी विभिन्न दुर्गों में बन्दी बना दिये जायें। प्रत्येक मुस्लिम क्रूर की भाँति औरंगजेब ने अपने पिता से घृणा की और उसके पुत्रों ने उससे घृणा की।

शाहजहाँ की अनवरत चिन्तापूर्ण प्रार्थनाओं के बावजूद भी औरंगजेब ने मूवकृच्छ्र से पीड़ित अपने बन्दी पिता से मिलना नहीं स्वीकारा, शाहजहाँ को अपनी एकान्तता, परेशानी, दुःख, उपेक्षा, अपमान आदि के विषय में औरंगजेब को पत्र लिख-लिखकर ही सन्तोष करना पड़ा। उत्तर में औरंगजेब ने बड़ी मीठी भाषा के आवरण में धमकी भरे पत्र लिखे कि यदि वह उन हीरों, वस्त्रों, अन्य धन एवं कोष को, जिसे उसने तथा दारा ने एकत्र किया है, समर्पित नहीं करेगा तो उसे और भी अधिक प्रतिबंध लगाकर अपमानित किया जायेगा। इतिहास के शीघ्र विश्वास कर लेने वाले विद्वार्थी, मध्यकालीन यवनों की प्रवंचक वाक्यावली से सु-परिचित नहीं, बड़ी जल्दी पाखण्डी बनावट के जाल में फँस जाते हैं; जैसे जहाँगीर द्वारा अकबर को अथवा औरंगजेब द्वारा शाहजहाँ को प्रदर्शित किया गया संपूर्ण

सम्मान एवं श्रद्धा। इन सभी स्थलों पर यह ध्यातव्य है कि चाटुकारिता-पूर्ण लच्छेदार भाषा उस म्यान के समान थी, जिसके अन्दर हत्या की भावनाओं की वह कटार थी जिसे प्रत्येक पुत्र अपने यवन पिता के प्रति रखता था।

मजबूर किये गये शाहजहाँ को इच्छा-अनिच्छापूर्वक अपने हृदयहीन पुत्र औरंगजेब को २७ लाख रुपये के मूल्य के वे सभी रत्न सौंप देने पड़े, जिन्हें उसने घोर उसके पुत्र द्वारा नौ वर्षों की लूट के फलस्वरूप छिपाकर रख लिये थे।

१६६० में औरंगजेब की सेना द्वारा पीछा किए जाने पर शुजा को बंगाल से भागकर धराकान पर्वतमालाओं में शरण लेनी पड़ी थी। वहाँ हिन्दू भू-भाग में उसने वह इस्लामी लूट-खसोट की कि शंखांग के राजा ने कोषित हो शुजा को पकड़कर जान से मार दिया। इससे औरंगजेब के दूसरे पैतृक प्रतिद्वन्द्वी का अन्त हो गया।

इसी समय 'दक्षिण में' उभरते हिन्दुत्व के शिखर पर परमवीर दैवी शिवाजी थे—विश्व के महानम सिपाहियों, लड़ाकों, युद्धकुशलों, प्रशासकों तथा राजाओं में से एक। उसे मानो परमात्मा ने औरंगजेब की बदमाशी अपने शीर्ष से, विश्वासघात अपने नीति-नैपुण्य से तथा लूटखसोट बदला लेकर समाप्त करने के लिए भेजा था। जिस भारतीय सपूत ने अपने जीवन और सम्मान की बाबी देश तथा देशवासियों के सम्मानार्थ लगा दी, उसे खफी खाँ जैसे औरंगजेब के विदेशी गुण्डे चाटुकार ने 'राक्षस-पुत्र तथा सर-ताज धोखेबाज' (पृष्ठ २५५, भाग VII) कहा है—यह भी तब जब हिन्दू दीर्घत्व के अनुसार शिवाजी ने प्रत्येक इस्लामी वस्तु के प्रति पूर्ण सम्मान प्रदर्शित किया। बेचारे खफी खाँ को, घनचाहे ही सही, स्वीकार करना पड़ा कि शिवाजी "अपनी जाति में शौर्य एवं बुद्धिमत्ता के लिए विख्यात था।"

हिन्दुस्तान में आये हुए विदेशी यवन शासकों द्वारा किये गये अनवरत अपहरणों की सूचनाओं से शिवाजी का हृदय हूक उठता था। सर्वत्र बलात्कार, लूट, हत्या, धर्म-परिवर्तन तथा गवन का बोलबाला था।

पूना तथा मुंघे के दो जिलों में, जो शिवाजी के पिताजी की जागीर के क्षेत्र थे तथा जिसका प्रबन्ध वे करते थे, समीपस्थ क्षेत्रों के लूट-खसोट करने वाले यवन प्रशासन से इतना भिन्न था कि विदेशी खफी खाँ को

भी विवश होकर प्रमाणित करना पड़ा "शिवाजी उनकी बहुत दक्षिण करते थे।"

अप्रमानित, दुखियारे तथा दबाये गये हिन्दुओं को अपने ही तथा एक-मात्र देश हिन्दुस्तान में पुनर्वासित करने का दृढ़ इरादा कर शिवाजी चारों के पहाड़ी प्रान्त में "पत्थर तथा मिट्टी के दुर्ग बनाने" चल दिये। बीजापुर एक मुस्लिम राज्य में हो रही गड़बड़ का पूर्ण लाभ उठाते हुए उस विदेशी मुस्लिम राज्य से हिन्दुओं के लिए वे एक प्रदेश के पश्चात् दूसरा प्रदेश जीतते चले गये।

शिवाजी महाराज कूटनीति तथा व्यूहरचना में इतने निपुण थे कि वह भारत में फैली हुई विदेशी इस्लामी बाढ़ के बीच केवल पैर टिकाने भर की भूमि के अधिपति थे फिर भी उन्होंने सफलतापूर्वक एक मुस्लिम शक्ति को दूसरे से भिड़ा दिया तथा हिन्दू राज्य का विस्तार किया। उसकी प्रशंसा में और जो बात योग देती है वह यह है कि अस्तित्व भर बचाये रखने की अनेक चिन्ताओं के बावजूद उन्होंने ऐसी स्वच्छ तथा लोकोपकारक प्रशासन के संयोजन में सफलता पायी कि उनके भयानकतम यवन शत्रु सोच भी नहीं सकते थे। यद्यपि जीवनपर्यन्त वे दुष्ट यवन शत्रुओं से घिरे रहे फिर भी युद्ध तथा प्रशासन के क्षेत्रों की उनकी उपलब्धियों के गौरव की समानता के लिए विश्व के इतिहास में कोई उदाहरण नहीं। हिन्दू पुनर्जागरण के लिए उनके द्वारा जमाई गयी नींव इतनी दृढ़ थी कि उनकी मृत्यु के पश्चात् समाप्तप्रायः मराठा शक्ति देश भक्ति में इतनी महान् सिद्ध हुई कि उसे एक के बाद एक सफलता मिलती ही रही और अन्त में दक्षिण में तंजीर से लेकर उत्तर में सिन्ध के तटवर्ती विदेशी यवन शक्ति को मुँह की खानी पड़ी।

शिवाजी के आदर्श शासन के पक्षपाती प्रतिकूल मुस्लिम खफी खाँ लिखता है कि यवन प्रशासित समीपवर्ती भू प्रदेश "हलचलों तथा विद्रोहों से कभी मुक्त नहीं रहा एवं राज्य के अधिकारी, प्रजा तथा सैनिक सभी, मूर्ख तथा छिछोरे थे। उन अधिकारियों का लालच तब और बढ़ जाता था जब शासकों की सत्ता में व्यवधान समाप्त हो जाता अथवा उनका ध्यान दिग्परिवर्तित होता।"

यह मानते हुए भी कि शिवाजी का प्रशासन आदर्श था तथा यवन

प्रतापन गढ़बड़ी से धरे हुए थे, धर्मान्ध, इस्लामी प्रशासक, साम्प्रदायिक लफ्फी खाँ शिवाजी के विषय में लिखता है: "समस्त विद्रोहियों में सर्वाधिक शैतान (जिसने) मराठा खोरो, डाकुओं को एकत्र कर दुर्गों पर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया।" इससे हमें ज्ञात हो जाता है कि वास्तविक भारतीय कौन है, जिसका प्रमुख उपदेश हिन्दुस्तान तथा हिन्दुत्व की भर्त्सना करना एवं उसकी संस्कृति को विनष्ट करना है, वह भारतीय नहीं है। उसकी बाणी तथा गन्धों से ही उसकी भारत-शत्रुता स्पष्ट हो जाती है। लफ्फी खाँ ऐसा ही है। वह लिखता है: "बीजापुर के विरुद्ध औरंगजेब की चढ़ाईयों से देश मुसीबत में फँस गया। जिससे अन्य परेशानियाँ भी उठ खड़ी हुईं।"

शिवाजी ने एक-एक कर बीजापुर एवं मुगल सेनाओं पर आक्रमण करके ४० दुर्गों पर अधिकार कर लिया, जीतकर अथवा स्वयं निर्माण कर; साथ ही उनके भू-अंशों को भी ले लिया।

एक ज़ारज पुत्र सिकन्दर अली आदिल, जो बीजापुर का शासक था, यह देखकर बड़ा चिन्तित हुआ कि शिवाजी के देश-भक्तिपूर्ण धारों से उसका राज्य धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है। खुले रूप में उसने हिन्दुओं के विरुद्ध परम्परागत यवन घृणा उभारी तथा यवन धर्मान्धों को शूर शिवाजी का मुकाबला करने की चुनौती दी। कायर सिकन्दर आदिल की खोखली विषाद शूर शिवाजी का मुकाबला करने के लिए एक धर्मान्ध की प्रेरणा दी। सिकन्दर अली के शाही रसोइए के एक पुत्र लम्बे-चोड़े अफजल खाँ ने सगर्व कहा कि वह शिवाजी को उसी सरलता से भून देगा जिससे उसका पिता शाही भोजन भून देता है।

अफजल की डींग से प्रतीव प्रसन्न होकर बीजापुर-शासक ने उसके साथ मुस्लिम आतंङ्गियों की बहुत बड़ी सेना कर दी। राक्षस के समान एवं विष उपद्रवता हुआ, शोर मचाता हुआ यवन सैन्य-बल मराठा प्रदेश को विनष्ट करने लगा, एक पूजास्थल के पश्चात् दूसरे को भ्रष्ट करने लगा। गाँवों को काट उनका रक्त मन्दिरों में छिड़क उन्हें मस्जिदों में परिवर्तित करने लगा। मोहत्या का अर्थ ही हिन्दुओं का अपमान करना, उन्हें नीचा दिखाना, कोपित करना तथा उन्हें स्वास्थ्यवर्धक दुग्ध से रहित करना था।

जिम इस से शिवाजी ने इस शक्तिशाली सेना को हराकर इसके पश्चात् सेनापति को काट डाला वह कूटनीति, साहस एवं देशभक्तिपूर्ण

कोशल की महानतम चातुर्यपूर्ण कहानियों में से है। शिवाजी ने अफजलखाँ से प्रतापगढ़ दुर्ग की पहाड़ी के नीचे एक शामियाने में मिलने के लिए कहा। प्रत्येक के साथ चुने हुए अंगरक्षक तथा एक लेखक-दुभाषिया था। जब दोनों मुसलमानी भूठी मित्रता के अनुसार मिले तो विशालकाय अफजल खाँ ने शिवाजी की गर्दन अपनी बगल में दाबकर गला घोटना चाहा। एक क्षण को भी व्यतीत किए बिना अफजलखाँ ने एक छुरी निकालकर शिवाजी की पीठ पर भयानक वार किया। छुरी शिवाजी के कवच में लगी। जिसे उन्होंने विचारपूर्वक विश्वासघात से सुरक्षित रहने अपने रेशमी परिधान के नीचे पहन रखा था। शिवाजी को तनिक भी हानि पहुँचाए बिना वह छुरी छिटककर जा पड़ी। अपनी गर्दन को अफजल की बगल में दृढ़तापूर्वक पकड़ी हुई देख, घातक भय जान, शिवाजी ने फोलादी बघनखे को जिसे उन्होंने अपनी हथेली में छिपा लिया था तथा उँगलियों पर लोहे की अंगूठियाँ चढ़ा बिल्कुल तैयारी की अवस्था में थे, अफजल खाँ के पेट में घुसेड़ दिया तथा उसकी आँतें बाहर निकाल लीं। घने रक्त-प्रवाह के कारण अफजल अचेत हो पीछे डगमगाया और दूसरे ही क्षण उसकी लम्बी-चौड़ी काया ढेर हो गयी। कष्ट के कारण प्रारम्भ में तो वह दहाड़ा पर बाद में सहायता के लिए मिन्नत करने लगा। उसने कुछ दूर रखी पानकी तक भी रेंग जाने का प्रयत्न किया। पर देशभक्तिपूर्ण क्रोध में शिवाजी तथा उनके अंगरक्षक को अपनी तलवारें चलाते देख चारों पालकीवाहक भय के मारे भाग खड़े हुए।

अफजल खाँ के अंगरक्षक सैयद बन्दा ने अपनी तलवार का लक्ष्य शिवाजी के सिर को बनाया पर शिवाजी के सतर्क-अंगरक्षक जीवाजी द्वारा क्षणभर में ही उसकी बाँहें काट डाली गयीं। जब अफजल खाँ का कटा हुआ सिर विजयपूर्वक बर्छी पर टांगकर दुर्ग को ले जाया जा रहा था, चारों ओर जंगलों तथा घाटियों में छिपी शिवाजी की सेनाओं के लिए तूर्यनाद किया गया ताकि वे अपने छिपे हुए स्थल से निकल अफजल के शिविर पर अकस्मात् ही टूट पड़ें जिसे उन्होंने चारों ओर से घेर लिया था। इस प्रकार मराठों की ओर बहुत ही न्यून हताहतों के पश्चात् बीजापुर की समस्त सेना काट डाली गयी। उन्हें ह्याति तथा अफजलखाँ द्वारा लूटकर एकत्र की गयी सम्पत्ति मिली।

शिवाजी को रक्तपिपासु हत्यारा बताता हुआ भी खफी खाँ यह लिखने के लिए मजबूर हुआ कि शिवाजी ने अपने लोगों को "पराजित टुकड़ियों को शरण देने की आज्ञा दी। उन्होंने थोड़ाओं की अपनी सेना में लेने का प्रस्ताव रखा और उन्हें जीत लिया।"

"आदिन खाँ ने अपने श्रेष्ठ जनरल रुस्तम खाँ के अधीन अन्य सेना भेजी। पानहोला दुर्ग के समीप के युद्ध में रुस्तम खाँ पराजित हुआ। शायद यह कि भाग्य की देवी ने इस विश्वासघाती, व्यर्थ के मनुष्य (यह खफी खाँ द्वारा दी गयी उन्हीं शिवाजी को गाली है जिनकी उसने बाद में प्रशंसा की) की सेनाओं में वृद्धि हुई तथा वह प्रतिदिन अधिकाधिक शक्ति-शाली होता गया। उसने नये दुर्ग स्थापित किये तथा अपनी राज्य सीमा बढ़ाने और बीजापुर को लूटने का स्वयं कार्य किया। दूर से आये काफिलों को उसने लूटा, पर उसका नियम था कि उसके अनुयायी कहीं भी लूट-पाट करें मस्जिदों, कुरान तथा किसी स्त्री को कोई हानि न पहुँचाएँ।"

औरंगजेब जो अब तक शिवाजी को घृणापूर्वक 'पहाड़ी चूहा' कहा करता था अब यह जानकर चौंक गया कि वह चूहा नहीं था अपितु ऐसा व्यक्ति था जिसने बड़े-बड़े यवनों के गर्व को चूर कर दिया था।

औरंगजेब के आदेशानुसार दक्षिण में मुगल सेनाओं के संचालक, औरंगजेब के मामा शायस्ता खाँ को शिवाजी समाप्त करना था। शायस्ता अपने प्रधान घड़े औरंगाबाद से चला और शिवाजी के राज्य के एक गाँव शिव गाँव पर अधिकार कर लिया। उस समय शिवाजी पूना से ४० मील दक्षिण-पूर्व के छूबे में थे। वहाँ से पीछे हटकर उन्होंने अपने गुरिल्लाओं को शायस्ता खाँ की टुकड़ियों तथा सामग्री लूटने में लगा दिया। बड़ी कठिनाई से शायस्ता खाँ "उस कुत्ते (शिवाजी) द्वारा निर्मित पूना तथा शिवपुर नामक दो स्थानों पर पहुँचा।"—ऐसा खफी खाँ लिखता है। पूना पहुँचकर शायस्ता खाँ ने इतना अविवेक एवं घृष्टता दिखायी कि शिवाजी के ही घर पर अधिकार कर लिया।

मुगल सेनाओं ने बाकन दुर्ग को घेर लिया तथा दो मास की भयानक लड़ाई के बाद इसमें घुस सके, फिर भी मुट्ठी भर मराठे प्रतिरोध करते रहे। खफी खाँ लिखता है कि पर्रदा दुर्ग का, रक्षक हीन होने के कारण, बिना लड़े ही पतन हो गया। फिर भी इन आक्रमणों के कारण शायस्ता

खाँ ने मालवा से जफर खाँ को आदेश दिया कि वह दक्षिण में कुरी तरह घिरी मुगल सेना को सहायता पहुँचाये।

यवनों की लूट ने औरंगजेबी शासन के तीसरे वर्ष ही भयानक दुर्भिक्ष फिर ला दिया। खफी खाँ लिखता है: "खराब मौसमी तथा भुद गन्ध सेनाओं के आवागमन के कारण अनाज बहुत कम तथा महँगा हो चला था। अनेक जिले पूरी तरह उजड़ गए तथा चारों ओर से लोगों के भुद के भुद राजधानी की ओर चल पड़े। नगर का प्रत्येक मार्ग तथा बाजार निर्धन तथा दुःखी लोगों से इतना भर गया था कि लोगों का घूमना कठिन था।"

१६६१ में राजा रूपसिंह की कन्या को मुगल शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम ने अपने हरम में बन्द कर रखा था। असम के देशभक्त वीर हिन्दू अब मुगलों की लूटपाट के विरुद्ध विद्रोह कर उठे। "खारखानन (जो बंगाल में था) को असम के हिन्दू राजा तथा कूचबिहार के हिन्दू शासक भोम नारायण को समाप्त करने के आदेश भेजे गए।" मुगल सेनाओं ने घर-गाँव को अपने अधिकार में कर लिया पर हिन्दुओं ने "अंधियारी रातों में आक्रमण करके अनेक सैनिकों तथा घोड़ों को मार दिया।"

अपने शासन के पाँचवें वर्ष में औरंगजेब बीमार पड़ा। उसकी सत्ताई हुई प्रजा तथा दरबारियों ने विद्रोह कर दिया किन्तु उन्हें यह जानकर अत्यधिक निराशा हुई कि औरंगजेब ठीक हो गया। उसके रानसी शासन से मुक्त होने की समस्त आशाएँ ध्वस्त हो गयीं। औरंगजेब की बीमारी का हाल सुनकर खालियर दुर्ग में बन्दी उसके भाई मुरादबख्श ने पलायन का यत्न किया। किन्तु उसे पकड़ लिया गया तथा एक बनावटी मुकद्दमे के पश्चात् कि उसने हत्या की है, उसे अनेक यन्त्रणाएँ देकर मार दिया गया।

असम के हिन्दुओं ने संकल्प कर लिया था कि वे लूट मचाने वाली यवन सेना को दण्ड देंगे और उन्होंने इसे "इस सीमा तक घटा दिया कि आपस में सलाह करके कुछ अधिकारियों ने तो खानखानन को त्याग कर चले जाने की सोची। उसने सेना को प्रत्यक्षतः तो आगे बढ़ने के आदेश दिए किन्तु परोक्षतः प्रत्यावर्तन की सोची तथा अपने लोगों को शान्ति और वापसी के सब्जबाग दिखाकर सान्त्वना दी।" निराश होकर मुस्लिम सेना

ने रक्षाहीन हिन्दू नागरिकों को सताया। "प्राज्ञा दी गयी कि हजारों हत्या किए गए लोगों के सिर शिबिर के चारों ओर बांध दिए जायें।" ऐसी क्रूरताओं तथा क्रान्त के साथ भोपड़ों में रहते वाले असहाय हिन्दुओं को शान्ति प्राप्त करने के लिए मजबूर कर दिया गया। ये नहीं कहा जा सकता कि खफी खाँ सही लिख रहा है अथवा मुस्लिम इतिहास की उन झूठों को प्रदर्शित कर रहा है पर वह दोनों प्रकार की बातों को कहते हुए लिखता है "अन्त में राजा शान्ति की शर्तों के लिए राजी हो गया तथा... बादशाह को सोना, चांदी, पचास हाथी तथा अपनी भर्ती कन्या को और कुछ नकदों तथा सामान सहित अपनी दूसरी कन्या को खानखानन को देने को राजी हो गया।" खान ने बीमारी की मारी सेना तथा अनेक सरदारों और अधिकारियों की मरणासन्न दशा में प्रत्यावर्तन प्रारम्भ किया। खान खानन स्वयं बहुत बुरी तरह बीमार था। और कूचबिहार के सीमान्त पर क्लिबपुर नामक स्थान पर मर गया (पृष्ठ २६८, भाग VII)।"

उक्त पंक्तियों का हमें गहन अध्ययन करना चाहिए क्योंकि मुस्लिम इतिहास लेखन को निन्दक प्रवृत्ति की परिचायिका है। वह यवन सेना की विजय का दावा करता है जबकि वास्तव में यवन सेनाएँ अपने सेना-पतियों, अधिकारियों तथा लोगों सहित बुरी तरह खदेड़ दी गयी थीं। हिन्दू स्त्रियों की मुस्लिम हरमों में अपहरण कर ले जाना उनकी बिलासिता का शौक है। दूसरी विशेष बात यह है कि जब कोई यवन सेना-नायक, जैसे प्रसूत नन्दर्भ में खानखानन, कोई विजय की बात न कह पा सकता था तथा वह बक्सर भरी हिन्दू स्त्रियों तथा जंगली हाथियों को पकड़ कर बादशाह के पास यह कहकर भेज देता था कि उन्हें हिन्दू राजा ने समर्पित किया है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि खानखानन जैसा मरणासन्न मुस्लिम घन्ट काल में भी अपने हरम में आयी स्त्रियों को भ्रष्ट करना चाहता था।

औरंगजेब के शासन के सातवें वर्ष उसका मामा शायस्ता खाँ, जिसने पूना में शिवाजी के महल पर अधिकार करने की धृष्टता की थी तथा महाराष्ट्र में आतंक फैला दिया था, शिवाजी के छद्मरात्रि के आक्रमण के पश्चात् अपने प्राण बचाने अपनी माँ में भाग गया।

अनबाहे बगौनख खाँ के साथ खफी खाँ लिखता है कि शायस्ता खाँ

"पूना में एक ऐसे घर में रहा जिसे नारकीय कुत्ते शिवाजी ने बनाया था।" सचमुच ही वह "नरक" में घुसा था क्योंकि शायस्ता खाँ को शिवाजी के पवित्र निवास स्थल में प्रवेश करने का नारकीय दुःख मिला था। उसे बहुत ही शीघ्र वहाँ से भयभीत होकर भागना पड़ा जिसमें उसकी दो उँगलियाँ काट गयीं तथा खिड़की से कूदते समय तीन उँगलियाँ बड़ी सफाई के साथ शिवाजी की शक्तिशाली तलवार ने काट डालीं। बाद में तो शिवाजी की योग्यता का कहना ही क्या! चूने हुए शूरवीर देशभक्तों को लेकर शिवाजी ने उन्हें दो भागों में विभक्त कर दिया। एक भाग ने अपने को बरासी बनाकर अपने मित्र को दूल्हा के वस्त्र पहनाकर १६६३ की एक रात में पूना नगर में प्रवेश के लिए उन्होंने मुगल दुर्गरक्षकों से आज्ञा प्राप्त कर ली। वे ढोल बजा रहे थे और आतिशवाजियाँ छोड़ रहे थे। दूसरा समूह उनके पीछे-पीछे यह बहाना बनाकर चला कि वे मुगल सेना को मराठा टुकड़ी हैं तथा कुछ हिन्दुओं को पकड़कर बन्दी बनाकर लाये हैं। ठीक आधी रात के समय जब शायस्ता खाँ और उसके संगी साथी सो गए थे तथा मुस्लिम रसोइए दूसरी प्रातः की रमजान की दावत के लिए भोजन बनाने लगे, शिवाजी के सैनिक पिछले दरवाजे से घर में घुस आये जिसे रसोइयों ने खुला छोड़ दिया था। इससे पूर्व कि वे सहायता के लिए चिल्लाएँ उन्हें काट डाला गया। शिवाजी के लोगों ने उन इंटों को हटा दिया, जिन्होंने रसोइयों से मुस्लिम हरम का रास्ता उस समय से बन्द कर रखा था जब से वहाँ शायस्ता खाँ का अधिकार था। उस मार्ग से होकर वे महल में प्रवेश कर गये। अन्धकारपूर्ण भवन में बड़ा भारी शोर मच गया—लगता था जैसे नरक में शोर मच गया है। कोई नहीं जानता था कि कौन, किससे और क्यों टकरा रहा है। लोग हड़बड़ाकर इतस्ततः भागने लगे। जो मरपान किये हुए भूम रहे थे अथवा जितासिता में भूम रहे थे उन्हें संभलने से पहले ही काट डाला गया। मुख्य द्वार खोल दिया गया और शिवाजी के वीर योद्धाओं का दूसरा दल प्रवेश कर गया। एक ने ऊपर चढ़कर इतनी जोर से ढोल पीटा कि शायस्ता खाँ का कोई मुसलमान यह नहीं सुन सका कि दूसरा क्या कहता है। इस प्राणचर्यजनक रबर से समूचा पूना नगर आधी रात को जाग पड़ा। शायस्ता खाँ का पुत्र तथा समूचा पूना नगर आधी रात को जाग पड़ा। शायस्ता खाँ का पुत्र तथा एक वेगम काट डाले गये जब कि शायस्ता खाँ भयभीत होकर ठीक उस

तथ्य बिड़की से कूद पड़ा जबकि उस पर लपलपाती तलवार का घातक भार होने को था लेकिन शाहस्ता खाँ ने देखा कि दो ही उँगलियाँ शेष रह गयी हैं, जबकि शिवाजी ने तीत को पहले ही काट दिया है। एक अन्य मुस्लिम सरदार जो उस घंघेरी रात के तरक की आकृतियों में जायन्ता खाँ जैसा ही लगता था, मारा गया। इसके ठीक पश्चात् मराठा आक्रमणकर्ता घाघ्चण करते हुए महल से बाहर निकल गये। उस समय शीत के अमानक स्वर में शत्रु को यह सब घाघ्चणजनक लगा। औरंगजेब ने मोघ ही अपने उपमानित मामा को दूर बगाल भेज, दक्षिण की मुगल सेना का अधिनायकत्व शाहजादा मुहम्मद मुसज्जम को सौंप दिया।

शाहजादा ने अपने पिता को सूचना दी कि "शिवाजी अधिकाधिक साहसो होवा जा रहा था तथा प्रतिदिन शाही भूभाग तथा काफिलों को आक्रमण कर नूट रहा था। उसने जोदन, पावल तथा सूरत के निकट की अन्य इन्दरगाहों को हथिया लिया था तथा मक्का जाने वाले जहाजों पर आक्रमण किया था। उसने अनेक दुर्गों का निर्माण किया था तथा जल-पानी के आवागमन में व्यवधान उत्पन्न किया था। महाराजा जसवन्तसिंह (जोधपुर के बादशाह महान् शिवाजी के विरुद्ध विदेशी मुस्लिम की ओर से लड़ने को मजबूर किया गया) ने उन्हें दबाने का पूर्ण प्रयत्न किया पर कोई काम नहीं हुआ। जोधपुर के शासक राजा जयसिंह (तथा अन्य बहुत से सरदार) शिवाजी का पीछा करने दक्षिण भेजे गये।

इसके पश्चात् यवनों ने कितना विध्वंस किया, इसका वर्णन करते हुए खफी खाँ लिखता है कि किस प्रकार क्रूरता तथा घातक से एक के बाद दूसरे दुर्ग को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर किया गया तथा ७,००० यवन मोटे इर्गानि नियुक्त किये गये कि वे "शिवाजी द्वारा विजित भू-भाग को नष्ट कर दें—शिवापुर तथा कोंडाना एवं कंवादी मढ़ के दुर्गों पर किलों का चिह्न भी नहीं रहने दिया गया तथा अगणित पशु छीन लिये गये—दुसरी ओर शत्रु शिवाजी द्वारा किये गये अमानक आक्रमणों, उनकी जानदार घोड़ियों, घंघेरी रातों में उनके हमलों, "मागों एवं कठिन दूरी पर किये गये उनके अधिकारों एवं वृक्षदार जंगलों में आग लगाने से शाही सेना बहुत व्यथित हो गयी है।"

शिवाजी के अमानक आक्रमणों से मुगलों की दशा हीन हो गयी थी,

उपर यवनों की भयानक क्रूरताओं से शिवाजी दुःखी हो गये। इसमें सन्धि का प्रवसर उपस्थित हुआ। मुगलों की ओर से विलेख खाँ तथा जयसिंह ने सन्धि की बातें की। शिवाजी को अपने ३५ दुर्गों में से २३ दुर्ग देने थे तथा, जैसी कि हिन्दू राजकुमारों को धरोहर के रूप में रखने की यवत-प्रथा थी, मुस्लिम दरबार में प्रतिभू के रूप में अपने आठ वर्षीय पुत्र शम्भाजी को भेजना था।

जनवरी २२, १६६६ को आगरे के दुर्ग में अपने हड़पने वाले पुत्र, औरंगजेब के बन्दी के रूप में शाहजहाँ चल बसा। औरंगजेब ने इतना भी उचित नहीं समझा कि अपने बृद्ध, मरणासन्न पिता को कभी देख भी ले।

शिवाजी के हाथों मार खाने का बदला लेने के लिए औरंगजेब के मामा शायस्ता खाँ ने दो हिन्दू प्रदेशों से बदला लिया तथा अराकान को पहाड़ियों में अवस्थित संग्रामनगर तथा चटगांव के नाम बदलकर क्रमशः आलमगीरनगर तथा इस्लामाबाद कर दिये। इस प्रकार भारत में यवन शासनकाल में लाखों हिन्दू ही नहीं अपितु नगर एवं हाथी (धर्मान्व अकबर द्वारा राणा प्रताप के हाथी राम प्रसाद का नाम पीर प्रसाद कर दिया गया था) भी इस्लाम में परिवर्तित कर दिये गये थे।

जयसिंह के उत्साहित करने तथा सम्माननीय व्यवहार एवं सुरक्षित प्रत्यावर्तन की गारन्टी पर शिवाजी ने औरंगजेब के दरबार-में जाना स्वीकार कर लिया। इसी बीच उन्होंने बीजापुर के यवन राज्य पर मुगल-आक्रमण की सहायता करने तथा विजित भू-भाग का कुछ भाग लेना स्वीकार कर लिया। मुगल सेनाओं ने शिवाजी के श्रेष्ठ नेतृत्व तथा बहादुर एवं अनुशासित सेना की सहायता से ही बीजापुर को भुक्तने के लिए मजबूर कर दिया।

बीजापुर के विरुद्ध आक्रमण के विषय में खफी खाँ के वर्णन से स्पष्ट है कि यवनों के युद्ध करने के ढंग कितने क्रूर एवं अनैतिक थे। यवन सेनाओं की लूट के विषय में खफी खाँ लिखता है : "तालाबों के किनारे काट डाले गये, कुएँ में जहरीली वस्तुएँ एवं गन्दा मांस फेंक दिया गया, दुर्गों के समीप के वृक्ष तथा विशाल इमारतें नष्ट कर दी गयीं, भूमि तथा बाग़ीचों में नुकीले काँटे गाड़ दिये गये तथा नगर के दोनों ओर घरों को इस प्रकार विनष्ट कर दिया गया कि नगर के समीप संस्कृति का चिह्न भी नहीं रह

गया।" (पृष्ठ २७६-२७७, भाग VII) प्राणचर्य नहीं कि भारत अर्थात्हीन हो जाता है जबकि १,००० वर्षों के यवन-शासन में अपने देश की जप्या-भूमि पर अनेक यवनों के लगातार हमलों की वह शिकार रही। ये हमले एक-दूसरे को अधिकार में करने तथा हिन्दुओं को समाप्त करने के लिए किये जाते।

यहने राज्य की पक्षों द्वारा की गयी कुरताओं से बचाने के लिए निवाजी ने खोरगजेव से मिलने की महमति प्रदान की। खोरगजेव के दरबार के लिए निवाजी ने राजगढ़ का दुर्ग सोमवार, मार्च ५, १६६६ को छोड़ा।

अपने अज्ञित पिता शाहजहाँ को मृत्यु (जनवरी २२, १६६६) के पश्चात् श्रीरंगजेब को मुघल दर में मारि लेने का अवसर प्राप्त हुआ; वह जनवरी १५, १६६६ को प्रागर पहुँचा। अपने पिता के सिंहासन को हड़पने तथा उसे परमान को अवस्था में रखने के कारण श्रीरंगजेब को आगरे जेल की सज़ा नहीं हुई। इस बीच वह दिल्ली ही ठहरा रहा। शाहजहाँ की मृत्यु ने अब उसका बालाहा को दौलत से, उचित प्रकार से, आगरा जमा सम्भर लिया। जनवरी १५, १६६६ को वह आगरे के दुर्ग में पहुँचा और आगरे में ही मार्च ०१ को चौथी बार ताज रखकर अपने मृतक पिता के उत्तराधिकारी होने की घोषणा की। उसकी पहले तीन ताजपोशियाँ जनवरी १६५८, जुलाई, १६५८ तथा जून, १६५९ ई० में हो चुकी थीं।

धर्म के किले में सिक्खों का धीरगजेश्वर के साथ वह निर्णायक मिलन होगा। इन मिलन से एक धीर पवित्र, पावन, प्रतिष्ठित एवं सुयोग्य हिन्दू कविलाश का तो हमारी धीर प्रपत्तों, विश्वासघाती, क्रूर एवं पितृघातक पवन सह है ॥

सन् ११ को शिवाजी आगरे के सिमान में आ पहुँचा। दूसरे दिन वही रात के साथ औरंगजेब का जन्मदिन मनाया जाने वाला था। आगरे के एक बड़ा दरवाजे पर शिवाजी का जयपुर के राजकुमार रामसिंह के लिपिक शिवाजीमान ने स्वागत किया। औरंगजेब की ओर से कोई नहीं था। वह इस बात का संकेत था कि शाही दरबार में उसके साथ सम्मान की व्यवस्था तक व्यवहार होने वाला था।

इसने दिले बहु मया : उभयता नी बधीय स्वस्थ एवं सुन्दर मराठा

राजकुमार शंभोजी अकेले रामसिंह द्वारा दरबार में ले जाये गये। शंभोजी की ओर से मुगल बादशाह को ३०,००० रुपये भेंट किये गये। अन्यवाद का एक भी शब्द कहे बिना औरंगजेब ने इशारा किया कि मराठा राजा तथा राजकुमार को ५,००० कै सेनानायकों की दरवानी पस्तियों में लपेटे होने के लिए कहा जाय।

इस अपमान के विरोध में शिवाजी ने तिल्लाकर शाही दरबार की गानियाँ देना प्रारम्भ किया। इससे पूर्व किसी ने भी शक्तिशाली मुगल बादशाह को राजा न मानने का साहस नहीं किया था, और वह भी खुले दरबार में। यद्यपि शिवाजी औरंगजेब से भेंट करने एक हजार मौल से यात्रे के फिर भी प्रारम्भ होने से पूर्व ही यह मिलन समाप्त हो गया। शिवाजी जीधर ही रामसिंह के घर चले गये। उन्हें पास के ही जिविर में ठहराया गया और कुछ दिनों पश्चात् ही फौजादखों के निरीक्षण में उत्तर मुगल गान्ध विठा दिया गया।

शिवाजी ने इस गतिरोध से बाहर निकलने के लिए औरंगजेब को अनेक पत्र लिखे किन्तु वह तो शिवाजी को मार डालने पर तुला हुआ था। अब शिवाजी को अपने भयानक अन्त का विश्वास हो चला, अतः उन्होंने अपने ३५० सशस्त्र अंगरक्षकों को वापिस महाराष्ट्र भेजने के लिए बादशाह की आज्ञा चाही। औरंगजेब को यह माँग बहुत भली लगी क्योंकि इस प्रकार अरक्षित शिवाजी को मारना और भी सरल हो जायगा। जुलाई २५ को वे लोग चले। बीमारी का बहाना कर शिवाजी ने औरंगजेब के सभी महत्वपूर्ण दरबारियों को मिठाइयों से भरी टोकरियाँ भेजना प्रारम्भ किया। १७ अगस्त के तीसरे पहर चार व्यक्तियों द्वारा (पालकी की भाँति, ले जाए जाने वाले बड़े टोकरी के निचले भाग में भली-भाँति बँधकर शिवाजी तथा शम्भा जी बीच में समा गये। उनमें से दो में शिवाजी तथा शम्भाजी थे। फोलाद खाँ के सतर्क सन्तारियों ने यह ही दो-एक का निरीक्षण किया। उन्होंने टोकरी के ढक्कन खोले पर उनमें सिवा सुन्दर सुगन्ध के कुछ नहीं पाया। उन्होंने उन्हें ले जाने के लिए कह दिया; इस प्रकार शिवाजी तथा शम्भा जी सुरक्षापूर्वक बाहर आ गये। छः महीने की अनुपस्थिति के अनन्तर मार्ग में अनेक आपदाओं तथा मृत्यु से साक्षात् कर १२ सितम्बर, १६६६ को शिवाजी मराठों की राजधानी राजगढ़ पहुँचे। शम्भाजी को

हमजो बिम्बान एक विश्वस्त पुजारी, के संरक्षण में मथुरा छोड़ दिया गया था। वे जयपुर २०, १६६६ को पहुँच पाये।

घाटरे में शिवाजी के पनामन की बात २४ घण्टे पश्चात् लगी। शिवाजी के मिठान्न के टोंकारों में बाहर हो जाने के ठीक पश्चात् एक विश्वस्त इतिनिधि, हिराजी फरजन्द, बिस्तर पर उनका स्थानापन्न हो गया, उनमें अपना चेहरा तो ढक लिया था पर शिवाजी की अँगूठी पहनकर, हाथ बाहर लटका लिया था। वह तथा उसका एक मुस्लिम साथी हवा लाने के बहाने राती रात से कुछ पहले चले गये। यह सोचकर कि कोष में बाबता हुआ औरंगजेब बहुत भयानक बदला लेगा, फौलाद खा भय में काँ उठा। उसने समूचे घाटरे की खाँज का आदेश दिया। शिवाजी के दो निकट एवं विश्वस्त साथी, जिन्होंने यह योजना रची थी, बन्दी बना लिये गये। वे थे रघुनाथ इस्लाम कोट तथा उनका साला तम्बक सोन-देव दवोर। वे तथा रायसिंह के कुछ अपने आदमी भी, जिनमें बलीराम पुनोहित, जोबी जोशी, श्रीकृष्ण तथा हरिकृष्ण प्रमुख थे, दुष्ट यवन डंग से आवकित बिते गये। उनकी नाक तथा मुँह में बलपूर्वक तमक का पानी रान दिया गया तथा शिवाजी के पलायन का कुछ भी भेद बताने के लिए निर्दोषतापूर्वक बाँटों से पीटा गया। पर वे कुछ भी सूत्र न दे सके।

घाटरे-घाटरे एक-एक करके घटवा समूह में, शिवाजी के सभी साथी मराठा राजधानी पहुँच गये। दो अब भी मुगल पीड़ा के शिकार थे। शिवाजी ने औरंगजेब से मर्शोपुजे पत्र-व्यवहार प्रारम्भ किया। औरंगजेब वर्धाप अपनी बुद्धि की पराजय देख जोध से भन्ना रहा था, फिर भी उसने समझौते बन्दी दृष्टिकोण का बहाना किया। उसने सन्धि कर ली। नयी सन्धि के नियमानुसार जो आचीत सन्धि का ही दूसरा रूप था जब शिवाजी के २६ दुर्गों में से दो, शिवाजी ने अपने दो विश्वस्त अनुचरों की वापसी की माँग की। औरंगजेब ने उनकी मुक्ति के आदेश दे दिये। इस प्रकार शिवाजी अपने सभी अनुयायियों सहित सही सन्तानत पहुँच गये।

औरंगजेब शिवाजी को नकाब पिर्दी खाँ के महल में कुछ ही दिनों में मारना चाहता था। इस महल को सरम्मत के बाद शिवाजी को उसमें भेजा जाते था। किन्तु इससे पूर्व कि मक्कार औरंगजेब अपनी दातक राजमा में मर गया, शिवाजी की मेधा ने इतनी शान्तिपूर्वक पलायन

किया कि कोधी औरंगजेब अपने दाँत पीस एवं दाढ़ी नीच आश्रय करने लगा कि शिवाजी किसी जादू द्वारा चिड़िया के रूप में उड़ गया अथवा भूत के समान हवा में गायब हो गया। यह मुगल निर्दयता पर हिन्दू देश-भक्त मेधा की स्पष्ट विजय थी।

शिवाजी के पलायन का बदला लेने शिवाजी का सबतक का गुरु मेनापति नेताजी पालकर, जो मुगलों से मिल गया था, दक्षिण में प्रकाशक बन्दी बनाये जाने तथा औरंगजेब के समक्ष प्रस्तुत किये जाने के लिए आदेशित किया गया। यवन कूरताओं के साथ उसे इस्लाम स्वीकारने पर मजबूर किया जाकर मुहम्मद कुली खाँ नाम दिया गया तथा मुगल साम्राज्य के लिए युद्ध करने दूर काबुल भेज दिया गया। उनके चाचा कोंडाजी पालकर की भी यही दशा हुई। नेताजी ने जीधही अपनी मूर्खता महसूस की। नौ वर्ष आनन्द मनाना उसे घृणा करने तथा हिन्दुत्व की घोर लौटाने के लिए पर्याप्त थे। पश्चात्ताप करते हुए नेताजी १६७६ में शिवाजी के समीप लौटे। उन्होंने धार्मिक आदेश में अपने समय से बहुत आगे होने के कारण, नेताजी को पुनः हिन्दू वर्ग में ग्रहण कर लिया। नेताजी का हिन्दू धर्म में प्रत्यावर्तन उन करोड़ों व्यक्तियों के लिए प्रकाश-पुंज होना चाहिए जो नौ से उन्नीस पीढ़ियाँ पहले, कूरतापूर्वक अपने पूर्वजों को परिवर्तित किए जाने के समय से म्लेच्छ नाम धारण किये हुए हैं। नेताजी के समान वे भी हिन्दू धर्म को पुनः ग्रहण कर अपनी गौरवपूर्ण हिन्दू परम्परा का दावा कर सकते हैं।

शिवाजी काण्ड के कारण औरंगजेब की दृष्टि में जयसिंह गिर गये थे। उन्हें बीजापुर का घेरा उठाकर जीधही उतर आने का आदेश दिया गया। औरंगजेब जयसिंह से इतना चिड़ गया था कि लौटते समय दुरहान-पुर में २ जुलाई, १६६७ को औरंगजेब के आदेश पर जयसिंह को बिप दे दिया गया। यवनों के अन्य हिन्दू सहायकों की भाँति जयसिंह भी शोक निमग्न हुए।

अपने राज्य में लौटने पर शिवाजी ने गोलकुण्डा के शासक अब्दुल्ला शाह को जीत लिया तथा उसकी सेनाओं को बीजापुर राज्य तथा मुगलों के विरुद्ध ले चलने का वचन दिया। बड़े चातुर्य के साथ शिवाजी ने मुगलों को उनके द्वारा विजित दुर्गों तथा भूभागों से बहिष्कृत कर दिया,

गोत्रकुट्टा शासकों को कुछ किले दे दिये तथा शेष अपने पास रख मराठा राज्य का विस्तार किया।

औरंगजेब ने जन-स्वामिभक्ति एवं स्नेह को इतना दूर कर दिया था कि मारे जाने के भय से जनता को जय-जयकार लेने उसने शाही दरवाजे में घाना भी स्वीकृत कर दिया। इस्लाम धर्म में वह इतना अन्धा हो गया था कि वह संगीत-परम्परा से भी घृणा करने लगा। दिल्ली गायकों एवं संसोक्तों ने सरलाय के लिये तरसकर, मुगल बादशाह पर प्रभाव डालने के लिए, कि उनकी घृणा ने उक्त कला को मार दिया है, एक बनावटी जनता निकाला। सूचना प्राप्त होने पर औरंगजेब ने कहला भेजा कि इसे इतना नीचे इफला दिया जाय कि यह अपना कोलाहलपूर्ण सिर पुनः न उठा सके।

क्योंकि शिवाजी को स्वातंत्र्य हेतु विस्तृत करने की तथा मुगलों की पकड़ समाप्त करने के लिए धन की आवश्यकता थी, उन्होंने अक्टूबर ३, १६७० को सूरत पर भगदड़ मारा और मुगल गिरोह को उसी प्रकार लूटा जिस प्रकार पहले भी जनवरी ६ से १०, १६६४ में लूटा था। सैकड़ों वर्षों से भारतीय धन लूटा जाकर सूरत में एकत्र किया जाता था तथा वहाँ से ही विदेशी बलूचियों, सरकों तथा अबीसीनिया निवासियों को मोटा करने के लिए भेजा जाता रहा था। लूटी हुई सम्पत्ति पर मुन्तजे होते जाने नवाबों को डराने के लिए शिवाजी के दो तीव्र धावे ज्वायल थे। वे वहाँ से चाने बने, सूरत उजड़ गया तथा लूटी हुई हिन्दू सम्पत्ति को बहर भेजने के लिए वह प्राचीन द्वार बन्द हो गया।

शिवाजी ने एक सकार प्रेमदा का भी निर्माण किया तथा भारत के पश्चिम तट की हिन्दुस्तानी को ताकि मुस्लिम तथा यूरोपीय लुटेरे भारतीय सम्पत्ति लूटकर यूरोप तथा मक्का न भेज सकें।

मुगलशाही तब को दिये गये शब्दों का शिवाजी अक्षरशः पालन करने के, इस सन्तर को बनाते हुए खफी खाँ, जो स्वयं धर्मान्वित यवन था, मुगलशाही के विश्वासपात तथा सामरिक धर्म परिवर्तन के लिये अपनाये गये जपानेश और-नरोही का निहने के लिए मजबूर हो जाता है। अबी-सोनिदा के कुछ पण्डितों ने, जो हिन्दुस्तान के पश्चिमी तट पर स्थित एक छोटें से प्रजापति नामक मुस्लिम किले के शासक थे, शिवाजी के राज्य

के एक दुर्ग पर आक्रमण किया। इसका वर्णन करते हुए खफी खाँ लिखता है: "सिद्दी बाकूत ने (मराठा दुर्ग के) रक्षकों को शरण देने को कहा, ७०० बाहर आ गये। पर अपने वचन के बावजूद, उसने बच्चों तथा सुन्दरियों को दास बनाकर उन्हें इस्लाम में परिवर्तित कर दिया।" (पृ० १६२, भाग VII) "बूढ़ाओं एवं कुरूप स्त्रियों को उसने मुक्त कर दिया किन्तु पुरुषों को उसने जान से मार दिया।" हिन्दू लेखनाओं को सताने वालों को वस्त्र एवं धन से पुरस्कृत किया।

हिन्दुओं को तृतीय श्रेणी के नागरिक मानने की मुस्लिम परम्परानुसार औरंगजेब के आदेशानुसार अब मुस्लिम व्यापार कर-मुक्त कर दिया गया। इससे लालची मुस्लिम व्यापारियों को बड़ा निकास मिल गया। भारी भरकम रिश्वत पाकर वे हिन्दुओं के माल को अपना प्रमाणित कर देते थे। औरंगजेब का यह प्रभेदकारी आदेश उसी पर लगा और उसने आदेश दिया कि मुसलमानों को भी २५ प्रतिशत कर देना पड़ेगा जबकि हिन्दुओं को वही ५ प्रतिशत देना पड़ता था।

१६७३ में मालखेड के युद्ध में, भाग्य के खेल से, बीजापुर की सेना ने दिलेर खाँ तथा इस्लाम खाँ द्वारा संचालित मुगल सेना को पराजित कर दिया। बारूद के भड़ाके से घबराकर इस्लाम खाँ का हाथी शत्रु सेना में जा घुसा जहाँ हाथी से नीचे घसीटकर उसका कत्ल कर दिया गया। इससे मुगल सेना में भगदड़ मच गयी। पीछा करते हुए बीजापुरियों ने उन्हें सब लूटा और मारा। उस समय औरंगजेब भारत के उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त पर विद्रोही अफगानों को दबाने में लगा हुआ था। वहाँ उसने इस घटना के विषय में सुना।

जब औरंगजेब घुर उत्तर से राजधानी की ओर आ रहा था, पंजाब के नारनौल नामक स्थान पर मुस्लिम कूरता के विरुद्ध सतनामी हिन्दुओं ने विद्रोह कर दिया। अपने विरुद्ध भेजी गयीं दो मुगल टुकड़ियों को उन्होंने अपमानपूर्वक हराया। भगोड़ा मुगल सेनापति करतलाब खाँ पगड़कर काट दिया गया और नारनौल पर हिन्दुओं का आधिपत्य हो गया।

सतनामी दिल्ली के समीप ३४ मील तक बढ़ आये थे; इस सफलता से उत्साहित हो यवन जुए को उतार फेंकने वाले अन्य लोग भी विद्रोह

कर डटे । बड़ी कठिनाई से राजा किशनसिंह जैसे हिन्दू चाटुकारों को सहायता से यह विद्रोह दबाया जा सका ।

सहायता से वह बिजाह बनाया जा सका।
 कूरहापूर्वक वसूल किये जाने वाले प्रभेदकारी जजिया कर के विरोध में औरंगजेब को, जब वह दिल्ली के सालाकिनों से तथाकथित जामा-मस्जिद का रहा था, घेर लिया। "इसके बावजूद कि बलपूर्वक मार्ग बनाने के आदेश दे दिये गये थे, बादशाह के लिए मस्जिद पहुँचना असम्भव था। प्रत्येक सण भूँड़ बढ़ता गया तथा बादशाह का साज-सामान एक इंच भी आगे न बढ़ सका। अन्त में आदेश दिया गया कि हाथी लाकर भीड़ को रौंद दिया जाय। हाथियों तथा आश्वों के नीचे दबकर अनेक के प्राण निकल गये। कुछ दिनों तक तो हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में एकत्र हो अपनी बात कहते रहे पर अन्त में जजिया देने के लिए राजी हो गये।" (पृष्ठ २८६)।

जोधपुर के जयसिंह को श्रीरंगजेब ने बिध दिला ही दिया था, जोधपुर के जयसिंह दूर काबूल में मर गये। उनकी दो विधवाएँ अपने दो नन्हें-मन्हें छोटीसिंह तथा दलदमन पुत्रों के साथ भारत लौटने को तैयार हुई। पर श्रीरंगजेब के मुक्त-घादेशानुसार किसी भी हिन्दू को वापिस न लौटने दिया जाता था। अतः सिन्धु के छटक के घाट के मुस्लिम नायक ने उन्हें हिन्दुस्तान लौटने को अनुमति नहीं दी। क्रुद्ध हो श्रीरंगजेब ने हठी विदेशी को काटकर पंजाब की राह पकड़ी। जोधपुर के राजकुमारों का अस्वास्त्य सुन श्रीरंगजेब ने उनका निबिर घेरने तथा उन्हें बन्दी बनाने के आदेश दिये। श्रीरंगजेब का इरादा जयसिंह की पत्नियों का शील मन कमाना एवं दोनों हिन्दू राजकुमारों को इस्लाम में परिवर्तित कर देना था। अतः उसने फुसनाया कि यदि अन्य राजपूत उन दो रानियों तथा राजकुमारों को छोड़ने के लिए राजी हो जायें तो उन्हें (राजपूतों को) खोता या डकता है। उस शर्त में दुर्गोदास राठौर नामक स्वामिभक्त एवं आहूत राजपूत केनापति भी थे जिनका नाम मुस्लिम मक्कारी, शिकारखान तथा निर्दयता का बहादुरी से सामना करने के कारण एकलक हिन्दुओं के बीच उद्वेग रहेगा। बावजूत वह इससे सहमत हो गया पर दो लौकपातियों को हिन्दू रानियों के वस्त्र पहना तथा दो बालकों को राजकुमारों का रंग धारण करा दोनों रानियों को पुरुष वेश में तथा

राजकुमारों को नौकरों के रूप में ले राजपूतों की टुकड़ी-रवाना हुई। नपुंसक क्रोध में दोनों दासियों तथा दोनों हिन्दू बच्चों को जो वहाँ रह गये थे, बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया।

राजस्थान लूटने के लिए अकबर के समान औरंगजेब ने भी अजमेर को ही चुना। अपने शासन के २२वें वर्ष में अजमेर पहुँचकर औरंगजेब ने राणा प्रताप के वंशज चित्तोड़ाधिपति से जजिया की माँग की। उसने जोधपुर के राजकुमारों का समर्पण भी चाहा। ७ महीने २० दिन की अनुपस्थिति के पश्चात् राजस्थान को लूटने के लिए ख़ाँ जहाँ को छोड़कर औरंगजेब दिल्ली लौटा। राजपूतों ने ख़ाँ जहाँ की परवाह नहीं की। यह देख औरंगजेब के क्रोध की सीमा नहीं रही। उसने सभी राजपूतों को पूरी तरह कुचल डालने का इरादा किया। इस्लामी धर्मान्विता के क्रोध में वह पुनः अजमेर के लिए रवाना हुआ तथा दक्षिण से मुअज्जम तथा बंगाल से शाहजादा मुहम्मद अजम को राजस्थान की ओर बढ़ने का आदेश दे दिया गया।

मुस्लिम गुंडों को अनदेखा कर राणा अपने राज्य की सभी फसल काट एवं सम्पत्ति अधिकार में कर कठिन पर्वतों की ओर चला गया। तीन घबन सेनाएँ राजस्थान की लूटपाट करती हुई इस्लामी शोध की भयानक बाढ़ के समान उज्जैन जैसे विशाल नगरों को लूटने तथा विनष्ट करने लगीं। समूचे हिन्दुस्तान में उन्होंने मन्दिरों को मस्जिदों में बदला, हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया एवं चारों ओर मृत्यु, विनाश, आतंक एवं क्रूरता फैलायी। औरंगजेब का आदेश था कि "कृषि का प्रत्येक तिनका घोड़ों के खुरों के नीचे रौंद दिया जाय तथा राजपूतों को मारा जाय, लूटा जाय तथा बन्दी बना लिया जाय।" (पृष्ठ २६६, भाग VII, इलियट एण्ड डाउसन)।

देशभक्त जोधपुर एवं उदयपुर की सम्मिलित बाहिनीयों ने मुगलों को पहाड़ी तथा जंगली भू-प्रदेश की ओर खींचकर म्लेच्छ शत्रु को पराजित करने में सफल हुए।

यवन सैनिक समूचे भू-प्रदेश को उजाड़ते जाते, मन्दिरों तथा इमारतों को नष्ट करते जाते, फलदार वृक्षों को काटते जाते तथा काफिरों (यात्री हिन्दुओं) की स्त्रियों एवं बच्चों को, जिन्होंने सोहों तथा उजड़े

स्वयं में करण ली, बन्दी बनाते जाते (पृ० ३००)।

बादशाह औरंगजेब का पुत्र शाहजादा मोहम्मद अकबर राजपूतों से का मिला। औरंगजेब को संदेह था कि उसका भाई मुहम्मद मुअज्जम भी राजपूतों का भेदिना है। औरंगजेब ने जिस प्रकार अपने बादशाह पिता के विरुद्ध बिद्रोह किया, समय आने पर अब उसके पुत्र मुहम्मद अकबर ने वही व्यवहार उसके साथ किया। उसने दुर्गादास के ३०,००० वीरों के साथ उसकी सहायता से स्वयं को राजा घोषित कर अपने नाम के सिक्के भी बना दिये।

एव औरंगजेब के पास ७००-८०० सोंग ही रह गये जिनमें हिजड़े भी थे। जहाँ शिविर एव चिन्ताग्रस्त हो उठा। मुअज्जम से कहा गया कि वह अपनी सम्पूर्ण सेना ले प्रतिज्ञोन्न औरंगजेब के समीप आ जाय। अफवाह थी कि बिद्रोही शाहजादा अकबर ७०,००० घोड़सवारों के साथ औरंगजेब पर आक्रमण करने बड़ा सा रहा था। औरंगजेब बड़ा निराश हुआ। उसे अपने पुत्र द्वारा अपनी कुर हत्या दिखाई पड़ने लगी। किन्तु शाहाबुद्दीन नामक उसके एक विश्वासपात्र ने अपने भाई मुजाहिद को अपनी ओर कर लिया जो बिद्रोही अकबर का विश्वासभाजन था। औरंगजेब इतना भयभीत हो गया कि बिद्रोही अकबर द्वारा वार्ता के लिए प्रेषित तुहख्वरखों को उसने सरी सभा में ही कल कर दिया। अकबर हतोत्साहित हो उठा। उसे यह जानकर घोर निराशा हुई कि उसका कपटाचरण उसके पिता के कपटाचरण की बराबरी नहीं कर सकता अतः वह दक्षिण में शिवाजी (जिसकी मृत्यु १६८० ई० में हो चुकी थी) के पुत्र शम्भाजी की सहायता लेने चल दिया।

अपने विश्वास्य पिता शिवाजी की परम्परा निभाते हुए वीर शम्भाजी ने शत्रु को बँत नहीं लेने दिया। अपने पिता की मृत्यु के वर्ष ही शम्भाजी ने मुस्लिम सत्ता की बरार को लूट उनसे हिन्दुओं की लूटी हुई सम्पत्ति का बहुभाग वापिस ले लिया। लौटते हुए शम्भाजी बुरहानपुर के समीप बदायूँपुर, हजदरपुर तथा अन्य १७ नगरों पर चढ़ बैठे तथा ध्वजित करिबा के रूप में हिन्दुओं ने प्रमुख वन को उन्होंने खूब लूटा। मुस्लिम अकबर की म. को बलपूर्वक लज्जित वमूल किया करता था, भय के मारे एक दुर्ग में छिपे रहकर आज बचायी। वे तमाम स्थान जहाँ हिन्दू भन

की लूट पर मुसलमान मौज मारते थे, "लूटे तथा जला दिये गये।" अनेक म्लेच्छ नष्ट हो गये। अनेक समीप के वन में भाग गये। तीन दिन की लूट के पश्चात् जब मराठे लौटे तो, खफी खाँ के अनुसार, सड़कों पर अनेक मूल्यवान् वस्तुएँ पड़ी मिलीं। मराठों के इन धावों से बुरहानपुर के यवनों के हृदयों में अल्लाह का इतना भय बैठ गया कि उन्होंने जुमे की नमाज भी वन्द कर दी। इस हानि से औरंगजेब क्रोध से तिलमिला उठा। मुगल सेनाओं के सेनापति खाँ जहाँ की पदावनति कर दी गई और औरंगजेब स्वयं दक्षिण की ओर रवाना हुआ।

औरंगजेब के ५० वर्षीय शासन को दो सम-भागों में विभक्त किया जा सकता है। पूर्वार्द्ध उसने उभरती हिन्दू शक्ति को दबाने उत्तर भारत में समाप्त किया। बिना सफलता प्राप्त किए उसे दक्षिण जाना पड़ा। वहाँ २५ वर्षों तक मराठों ने नाक में दम किये रखा। जिस औरंगजेब ने मराठों को समूल नष्ट करने की कसम खायी वह स्वयं मुसीबतों के दल-दल में फँसाया जाकर मार दिया गया।

औरंगजेब ने इस्लाम के नाम पर समूचे भारत में जो आतंक फैला रखा था उसकी कुछ झलक पक्षपाती मुस्लिम साकी मुस्तईद खाँ के मासिर-ए-आलमगोरी की पक्तियों से मिलती है। वह लिखता है, "१८ अप्रैल, १६६६ को बादशाह के कानों में भनक पड़ी कि बट्टा, मुल्तान तथा बनारस के मूर्ख ब्राह्मणों की ओछी पुस्तकों (अर्थात् वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता एवं हिन्दू महाकाव्य) की व्याख्या करने की आदत थी तथा मुसलमान (अर्थात् आतंकित परिवर्तित हिन्दू) बड़ी-बड़ी दूर से वहाँ जाते थे। अतः उसने सभी शासकों को हिन्दुओं के मन्दिरों तथा स्कूलों के विनाश के आदेश दे दिये। उस आदेश के अनुसार बनारस का विश्वनाथ मन्दिर विनष्ट कर दिया गया।" मन्दिर को हथिया कर उसे मस्जिद में परिवर्तित कर देना मुसलमान के लिए महान् गौरव की बात थी।

"दिसम्बर, १६६६ में न्यायप्रिय शासक ने मथुरा के केशवदेव राय के हिन्दू मन्दिर का विनाश किया तथा शीघ्र ही उस असत्य के किले (अर्थात् भगवान् कृष्ण की जन्म-स्थली) को भूसात कर दिया गया। उसी स्थान पर काफी व्यय करके एक विशाल कृष्ण की मस्जिद की नींव रखी गयी।" इसका विश्वास नहीं करना चाहिए। वर्तमान मस्जिद स्वयं ही एक प्राचीन

हिन्दू मन्दिर का भाव है। एक विनाश भवन को उसकी नींव तक उखाड़ फेंकना और पुनः उसी स्थान पर दूसरी नींव खोदकर मस्जिद का निर्माण करना तकनीकी एवं आर्थिक मूर्खता की पराकाष्ठा होगी। अच्छा हो इतिहासकार एवं पुरातत्त्ववेत्ता यवन इतिहास लेखन की इस प्रवृत्ति की ओर सहर्षता बरतें।

मासिर-ए-बालमगोरी का मूर्तियों सम्बन्धी यह सन्दर्भ कि "उनके भय-भीत बेहरो को दीवार की ओर कर दिया गया" (पृ० १८४, भाग VII) इस लब्ध की ओर स्पष्टतया इंगित करता है कि हिन्दू मूर्तियाँ मध्यकालीन मन्दिरों में, जिन्हें आज मस्जिदों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है दीवारों के छन्दर नहीं पड़ी हैं।

"रत्नों से जड़ी मूर्तियाँ, हिन्दू मन्दिरों से निकाल, नवाब बेगम साहिब की मस्जिद (धर्मात् आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद जो स्वयं एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर है और जिसे भूठ ही जहाँधारा बेगम के नाम मढ़ दिया है) की सीढ़ियों के नीचे लगा दी गयीं ताकि सच्चे धार्मिकों (यानी मुसलमानों) द्वारा वे सदैव कुचली जाती रहें।" भारतीय जनता एवं पुरातत्त्व विभाग का यह प्रयत्न होना चाहिए कि आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद की सीढ़ियों के भीतर से भगवान् कृष्ण की पवित्र मूर्ति को निकाल उनकी जन्मभूमि मथुरा के पावन-स्थल को प्रदान करें।

१६०६ में "हाँ जहाँ जोधपुर से आया, जिसके साथ भूसात किये गये मन्दिरों की कई गाड़ी मूर्तियाँ थीं। बादशाह ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। इनमें अधिकांश मूर्तियाँ मूल्यवान् पत्थरों से जड़ी हुई थीं अथवा सोने, चाँदी, पीतल, ताँबा अथवा पत्थर की बनी हुई थीं। आज्ञा दी गयी कि उनमें से कुछ को तो काष्ठ कार्यालयों में फेंक दिया जाय तथा शेष को भव्य मस्जिद की सीढ़ियों के नीचे लगा दिया जाय ताकि वे पैरों से कुचली जाती रहें।" स्पष्ट है कि जोधपुर की सभी मध्यकालीन मस्जिदें वे मन्दिर हैं, जिनमें से हिन्दू मूर्तियाँ गाड़ियों में भरकर ले आयी गयी थीं। इससे पुरा-तत्त्विक संकेत भी प्राप्त होता है कि अप्राप्त प्राचीन हिन्दू मूर्तियाँ प्रमुख स्थलों की तथाकथित जामा मस्जिदों की सीढ़ियों में प्राप्त की जा सकती हैं।

"जनवरी, १६८० में शाहजादा मुहम्मद आजम तथा हाँ जहाँ को

उदयपुर जाने की आज्ञा मिल गयी। मूर्तिपूजकों के मन्दिरों का विनाश करने खुल्ला खाँ तथा पनकातज खाँ भी उधर ही चल पड़े। राणा के प्रासाद के समीप ही बने ये महल उस युग की आश्चर्यजनक वस्तु थे। यहाँ २० राजपूतों ने धर्म के लिए आत्मबलिदान का निश्चय किया। मृत्यु वार प्राप्त करने से पूर्व एक ने उसके अनेक (मुसलमान) अनुयायी काट डाले— २४वीं जनवरी, १६८० को औरंगजेब ने राणा द्वारा निमित्त उदयसागर सरोवर देखा। औरंगजेब ने आज्ञा दी कि तीनों मन्दिर भूसात कर दिये जायें। हुसैन खाँ ने बताया कि प्रासाद के समीप के तथा पड़ोसी जिलों के १२२ अन्य मन्दिर विनष्ट कर दिये गये। इस सरदार को अपनी विनिष्ट सेवाओं (हिन्दू मन्दिरों को भ्रष्ट करने तथा मूल्यवान् मूर्तियों को चुराने) के लिए बहादुर की उपाधि से अलंकृत किया गया। चित्तौड़ जाकर औरंगजेब ने ६३ मन्दिरों को ढा दिया। आमेर (प्राचीन जयपुर) के मन्दिरों को विनष्ट करने के लिए नियुक्त किये गये अबूतुराब ने बताया कि इन महलों में ६६ भूसात कर दिये गये।"

औरंगजेब से पूर्व अनेक शताब्दियों तक दक्षिण तक में यवन शासकों की एक लम्बी पंक्ति पवित्र हिन्दू स्थलों को भ्रष्ट तथा ऐसा ही विनाश करती रही। वह इसे पवित्र इस्लामी कर्तव्य समझता था कि चारों ओर लूट तथा विनाश करके स्वयं तथा इस्लाम का गौरव बढ़ाए।

औरंगजेब की क्रूरता तथा दमन-नीति ने हिन्दुओं के जागरण को और भी उद्दीप्त किया। समूचे देश में मानो किसी जादू के जोर से, देशभक्त हिन्दू शूरवीर नेताओं के अनुयायी बन गये।

हिन्दू योद्धाओं की उस ख्याति परम्परा में जिन्होंने अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए हजार वर्ष तक यवन निर्दयता तथा क्रूरता से संघर्ष किया, उन गौरवपूर्ण हिन्दू नेताओं का जिन्हें गुरु कहा जाता है, उल्लेख करना अनिवार्य है, जिन्होंने मुगल दरबार के द्वार पर ही दिल्ली तथा पंजाब में विदेशी मलेच्छ शासन के विरुद्ध एक और हिन्दू-विद्रोह का ध्वज फहरा दिया।

इस विख्यात परम्परा के वीर, जिन्होंने भारत के घोर संकट के समय विदेशी क्रूरों को मार भगाने के लिए हिन्दुओं को साहसपूर्वक तथा दृढ़ता-पूर्वक अवरोध करने का नारा दिया, श्रद्धा तथा सम्मान के साथ गुरु कहे

जाते हैं। उन्हें सिक्ख गुरु कहना विरोधाभास तथा ऐतिहासिक भूल है क्यों-
कि सिक्ख का पद है 'शिष्य' और गुरु का अर्थ है 'उपदेशक'। यह सापेक्ष
शब्द है। बिना शिष्य के गुरु तथा बिना गुरु के शिष्य नहीं हो सकता।
उन्हें सिक्ख गुरु कहना ऐसा ही है जैसे एक भाई को भाई का भाई कहना।
उस छोटा परम्परा के दस गुरु समूचे हिन्दुओं के पूज्य हैं क्योंकि उन्होंने
इस्लाम की क्रूरता समाप्त करने के लिए हिन्दुओं को संगठित किया। अतः
सभी हिन्दु ही उनके शिष्य थे। मुसलमान भी, जो अपने सहचरियों की
क्रूरता से घृणा करते थे, उनके शिष्य बन गये क्योंकि सभी हिन्दू गुरु
शान्ति, समानता तथा भ्रातृत्व के प्रतीक थे, धर्मान्धता एवं क्रूरता के
नहीं। जिस पन्थ सघात मार्ग की ओर गुरुओं ने इंगित किया वह यवन
क्रूरता को भग्न करने के लिए संगठन तथा प्रतिरोध का मार्ग था। इन
बहादुर तथा पवित्र (खालसा) लोगों ने हिन्दूविनाश के विरुद्ध बल्लों का
रूप धारण किया ताकि सामान्य जन उनके नेतृत्व के अनुयायी बनें। आज
जो लोग प्रभेदकारी विचार रखते हुए यह कहते हैं कि गुरुओं ने हिन्दुओं
से संलग्न हो एक धर्म बनाया अथवा इस्लाम तथा हिन्दुत्व के बीच का
मार्ग घपनाया वे बेवकिल हैं। इतिहास में इसका कोई आधार नहीं।
उन महान् गुरुओं के नाम पर किसी निर्बलकारी अथवा विघटनकारी
भावना का प्रवेश करना उनके समस्त बलिदानों तथा दूरदृष्टि को निष्फल
कर देना है। उन्होंने किसी फिरके का निर्माण न कर उभरते हिन्दुत्व के
प्रति इस्लाम के क्रोध को बहादुरी से सहन किया, यदि हमें किसी की
आवश्यकता है तो वह है ग्यारहवें गुरु की जो हमारे कानों में दशम गुरु का
उत्साहवर्धक संदेश भर दे—

सकल जगत् सोही खालसा पंथ गाजे

जगै बर्म हिन्दू सकल इन्द्र भाजे।

इन गुरुओं के उत्साही नेतृत्व में सदैव अभिवृद्ध होने वाले हिन्दू योद्धा
सब क्रूरता का दुश्मन से प्रतिरोध करते रहे। औरंगजेब के बाबा जहांगीर
ने पंचवें हिन्दू गुरु अर्जुन देव को १६०६ ई० में क्रूरतापूर्वक मरवा डाला
था। नवें गुरु तेग बहादुर का दिल्ली में औरंगजेब ने शिरच्छेद कर ही
दिखा था।

क्योंकि औरंगजेब की आदत थी उसने फूट के बीज बोकर तथा

बड्यन्त्र रचकर इन हिन्दू गुरुओं की गौरवपूर्ण परम्परा को समाप्त कर
देना चाहा किन्तु परीक्षा की उन महान् बेना में सौभाग्य से हिन्दू चानुपं,
दृष्टिकोण एवं शौर्य की विजय हुई।

दसवें गुरु गोविन्दसिंह ने अपने हिन्दू शिष्यों को संगठित कर एक
वाकायदा सेना निर्मित की ताकि वह खुले युद्ध में मुगल जवान को चुनौती
दे सकें। मुस्लिम शमन तथा आतंक के कारण खतरे में पड़े हुए हिन्दुत्व के
पुनर्जागरण के लिए उन्होंने अपने चारों पुत्रों का बलिदान कर एक महान्,
गौरवपूर्ण तथा उत्साहवर्धक उदाहरण प्रस्तुत किया। उनके दो बड़े पुत्र
शत्रु से युद्ध करते हुए मारे गये। दो छोटे पुत्रों को पकड़कर मुस्लिम बनाने
के लिए आतंकित किया गया। उन्होंने दूतापूर्वक इकार कर दिया फतनः
सरहिन्द दुर्ग की दीवार में चिनवा दिये गये। किसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंह
औरंगजेब के हाथों मारे जाने से बच गये किन्तु दक्षिण के नान्देर नामक
स्थान पर एक अफगान मुस्लिम द्वारा १७०८ में उनका वध कर दिया
गया।

जिस प्रकार शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् मराठों ने मुसलमानों को
एक के बाद एक पराजय दी तद्वत् गुरु गोविन्द के हिन्दू योद्धाओं की मार
के समक्ष विदेशी यवन शासक भीगी बिल्ली बन गये। ये सब उभरते
हिन्दुत्व के विभिन्न प्रदर्शन थे।

जिस प्रकार उत्तर में हिन्दुओं के अनेक अवरोधक केन्द्र औरंगजेब को
व्याकुल कर रहे थे, दक्षिण में मुगलों की उनके दुर्गों से खदेड़कर बाहर
किया जा रहा था। अपने पिता की क्रूरताओं तथा बदमाशियों से तंग आकर
औरंगजेब के विद्रोही पुत्र अकबर ने औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध करने के
लिए शिवाजी के पुत्र शम्भाजी की शरण ली। जबतक शिवाजी जीवित
रहे औरंगजेब का दक्षिण की ओर जाने का साहस नहीं हुआ। १६८१ ई०
में औरंगजेब चार महीने बुरहानपुर ठहरा और तब मराठा प्रदेश की ओर
बढ़ा। औरंगजेब के व्यक्तिगत निरीक्षण में दक्षिण में मुगलों ने विनाश का
तांडव-नृत्य प्रारम्भ किया। औरंगजेब के पुत्रों तथा सेनापतियों द्वारा संचा-
लित मुस्लिम गुण्डों ने समस्त दक्षिण में आतंक, लूटमार, मृत्यु एवं विनाश
का दिया। "शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम कोंकण जा पहुँचा तथा उसके
भीतरी भागों, दरों तथा घने जंगलों में जाकर इसने समूचे प्रदेश को उजाड़

और घनेक हिन्दुओं को तलवार के घाट उतार दिया।" किन्तु संहारक हिन्दुओं द्वारा बहुत शत्रु पर भी कोई दया नहीं की गयी। "बहुत बड़ी संख्याओं में (यवन) तथा अनगिनत जोषाये समाप्त हो गये।" हिन्दुओं द्वारा सभी दरों को रोक देने के कारण मुसलमान भूखों मर गये। मुगल शाहजादा के बचने के लिए कोई अच्छा घोड़ा शेष नहीं रहा अतः मजबूरन औरंगजेब ने प्रत्यावर्तन का आदेश दिया।"

शम्भाजी के यहाँ शरण में रहने वाले विद्रोही अकबर ने १६८२ में फारस की राह पकड़ी कि उन्हें अपने पिता औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध करने के लिए ईरान की सहायता मिल जाय। किन्तु बीस वर्षों तक जगह-जगह घूमता हुआ औरंगजेब का पुत्र अकबर, कभी अतिथि की भाँति और कभी बन्दी-सा व्यवहार पाकर औरंगजेब के शासन के अन्त की ओर खुरासान के गर्मसीर नामक स्थान पर मर गया। औरंगजेब की सेना ने शम्भाजी के समुद्र की ओर के रामदुर्ग को घेर लिया पर मराठों द्वारा उनकी दुर्गति कर दी गयी। "एक ओर समुद्र था और दूसरी ओर विप्लवे वृक्षों एवं सर्पों से चरे पर्वत। हिन्दुओं ने घास काट डाली, जिससे मुसलमानों तथा घोड़ों को बहुत परेशानी हुई। घनाज इतना महुँगा हो गया था कि गेहूँ का आटा ३ से ४ रुपये प्रति सेर बिकता था। जो मोत से बच गये उनकी घिसटती हुई जिन्दगी घापी हो गयी।" जब औरंगजेब ने अपनी सेना की यह दशा देखा तो आदेश दिया कि मुरत के जलपानों को मुगल शाहजादे की सहायता के लिए बंदी ही भेजा जाय। किन्तु ये जहाज मुघलजम तक नहीं पहुँच पाये और बीच में ही भारत के पश्चिमी तट पर घूमते हुए मराठों ने लूट लिये और दुबो दिये। इस प्रकार और मराठों के प्रदेश में मुसलमानों की कोई दया नहीं दिखायी गयी। वहाँ महान् शिवाजी की आत्मा यवन प्राणायकों की कुरानाओं को अपने अन्तिमाली कार्यों द्वारा रोकने के लिए खर भी उन्माहित कर रही थी।

जब औरंगजेब ने अपना ध्यान गोलकुण्डा उपनाम हैदराबाद के मुल्कम शासन की ओर दिया। अबुल हमन नामक वहाँ नाममात्र का शासक था। सभी मुस्लिम शासकों की भाँति खफी खाँ के अनुसार उसे भी पुरा सब सुन्दरियों से प्रसन्न प्रेम था पर उसने बड़ी बुद्धिमत्तापूर्वक अपना प्रशासन देखने के लिए मदनरा और अकलना नामक दो हिन्दू भाइयों को

नियुक्त कर दिया था। औरंगजेब की धर्मान्धता को यह सहा नहीं था कि दो हिन्दू कूटनीतिज्ञ इस्लामी लूटपाट को रोके रहें और अपने प्रदेश को शान्त, समृद्ध तथा निष्पक्ष प्रशासन दें। इसलिए उसने अपने सेनापतियों को हैदराबाद पर चढ़ाई की आज्ञा दी। १६८३ में मुगलों की हैदराबाद के विरुद्ध झड़पें तथा बदमाशियाँ प्रारम्भ हुईं। खफी खाँ तथा अन्य इतिहासकारों ने बड़ी ईमानदारी से लिखा है कि दो विपक्षी सेनापति हिन्दू स्त्रियों का शील भंग करना पवित्र इस्लामी कर्तव्य समझते थे व उन्हें बड़ी चिन्ता रहती थी कि इस अपमान तथा क्रूरता से मुस्लिम स्त्रियाँ बची रहें। खफी खाँ उदाहरण देते हुए लिखता है (पृष्ठ ३१६, भाग VII) "शत्रु के एक सेनानायक ने शाही सेना के समीप दो अधिकारी यह कहने भेजे कि दोनों ओर के लड़ने वाले मुसलमान थे अतः स्त्रियों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिए ३-४ घण्टे का समय माँगा और कहा कि उसके बाद वे लड़ने के लिए तैयार हो जायेंगे।" विदेशी मुसलमानों द्वारा नष्ट किये गये हिन्दुस्तान में स्त्रियों को पवित्र छोड़ देने का अधिकार केवल यवन स्त्रियों को ही प्राप्त था। विरोधी यवन सेनाएँ अपनी धर्मान्धता में अपने पारस्परिक वैमनस्य को तबतक रोके रखती थीं जबतक अधिक-से-अधिक हिन्दू न काट दिये जाएँ। उदाहरण के लिए खफी खाँ लिखता है, "मुगल शाहजादे ने (मुस्लिम) शत्रु को यह सन्देश भेजा कि युद्धों में दोनों ओर मुसलमान ही मारे जाते हैं, अतः अच्छा यह हो कि दोनों ओर के दो-तीन सरदार एक बार-में ही पूरी लड़ाई लड़ लें।" (पृष्ठ ३१६)।

यवन शिविरों में विलासिता, विश्वासघात, रिश्वत तथा पड़यन्त्रों का बोलबाला था अतः उनके सैनिक आधे मन से लड़ते थे। औरंगजेब अपने पुत्र तथा खाँ जहाँ से अप्रसन्न था क्योंकि "उनके शिविर में भोग तथा विलासिता का नंगा नाच था और जिसे उसने बार-बार बुरा कहा था पर कोई लाभ नहीं हुआ।" यह सब विलासिता तथा मुस्लिम सेनाओं का रख-रखाव हिन्दू गाँवों की लगातार लूट के धन से चलता था।

यद्यपि हिन्दू कूटनीतिज्ञों ने बड़ी सफलतापूर्वक औरंगजेब की सेना को दूर बनाये रखा पर जैसा कि सामान्यतः होता ही है हैदराबादी मुस्लिम शासक का मुहम्मद इब्राहिम नामक सेनापति विश्वासघाती निकला तथा मुगलों से जा मिला। अब तो मुगलों की लूटपाट का ठिकाना ही न रहा।

रक्षा के लिए किसी सेना के न होने के कारण हैदराबाद के लोगों के घर-घराने मुगल हुश्या के शिकार हो गये। "सैनिकों तथा नगर-निवासियों को पत्थरों का अपमान किया गया तथा चारों ओर अव्यवस्था एवं विनाश हो गया।" लूट तथा विनाश का भयानक दृश्य उपस्थित हुआ। "जालों में नहीं बताया जा सकता कि कितनी स्त्रियाँ और बच्चे बन्दी बना दिये गये और कितनी छोटी-बड़ी स्त्रियों का अपमान किया गया। अत्यन्त दुःखान्ताओं को इतने भारों से कि ले जाये नहीं जा सकते थे, तलवारों और बर्गियों से काट दिए गए। प्रत्येक टुकड़े के लिए बड़ा संघर्ष किया गया।" (पृष्ठ ३२०) हैदराबाद के इस और-आरावे में मदन्ना तथा अक्कन्ना नामक दो हिन्दू भाई, जिन्होंने हैदराबाद को कुशासन तथा मुस्लिम विनाश के बोरतापूर्वक बचाया, विश्वासघातपूर्वक पकड़े जाकर क्रूरतापूर्वक मारे दिये गये तथा उनके उच्छिन्न शिर मुगल-प्रधान कार्यालय ले जाये गये।

मुगल शाहजादे ने अतिशुक्ति के रूप में अबुल हसन से १,२०,००,००० रुपया वसूल किया। सरकार औरंगजेब ने बाहर से तो इन शर्तों के प्रति अपनी सहमति प्रकट की किन्तु व्यक्तिगत रूप से उसने अपने पुत्र तथा सेना-नायक को जहाँ को हैदराबाद अपने राज्य में न मिलाने के लिए फटकारा।

यह मुगल सेनाएं दूसरे मुस्लिम राज्य बीजापुर में छा गयीं। बीजापुरियों ने डटकर खड़ा किया। अन्तर्पुक्ति का मार्ग अवरुद्ध किए जाने से मुगल भूखी मरने लगे। शाहजादा शाह आलम ने बीजापुरियों से अन्दरूनी बात कनाकर कहा कि ऐसा पत्न किया जाय कि उनकी भी लाज रह जाय और वह बिना किसी परेशानी के नाक ऊँची कर लौट जाय। इन बातों को सुन औरंगजेब ने बीजापुर के मध्यस्थ को बन्दी बना लिया। इस प्रकार एक-एक कर अपने प्रत्येक पुत्र से औरंगजेब अप्रसन्न हो गया। मुगलों द्वारा कुनो दरार लूटे जाने पर बीजापुर ने अक्टूबर, १६८६ में आत्मसमर्पण कर दिया। उनके शासक सिकन्दर को बन्दी बनाकर दोलताबाद दुर्ग की एक कोठरी में भेज दिया गया।

भयानक दुःखदायी भूत की भाँति औरंगजेब ने सब हैदराबाद के शासक अबुल हसन पर छोड़ दिया। उसने अपना सम्पूर्ण कोष समर्पित करने के लिए मजबूर किया। औरंगजेब को दूर रखने की आशा में अबुल हसन ने ऐसा ही किया। किन्तु औरंगजेब निर्दयतापूर्वक सबको उजाड़ता हुआ

गोलकुण्डा की ओर बढ़ रहा था। १६८७ ई० के प्रारम्भ में गोलकुण्डा का घेरा डाल दिया गया। इसके बुर्ज उड़ा दिये गये, पुरी काट दी गयी तथा मुस्लिम सरदार औरंगजेब की ओर मिला लिये गये पर दो हिन्दू प्रणामकों मदन्ना तथा अक्कन्ना ने जनता एवं सैनिकों में हैदराबाद के प्रति इतना प्रेम भर दिया था कि तो महीने तक गोलकुण्डा औरंगजेब की शक्ति का मुकाबला करता रहा। पर हैदराबाद के एक मुस्लिम सेनापति को सब रिश्वत दे दी गयी जिससे उसने आधी रात दुर्ग का एक द्वार खोल दिया फलतः सितम्बर में असम्भव मुगल उसमें घुस पड़े। अब्दुर रजाक नामक एक ही सेनापति अन्त तक स्वामिभक्त रहा जो कि मुगलों की किसी धमकी तथा प्रलोभन में न आ थोड़े से अश्वारोहियों को साथ ले दोहिधों द्वारा खोले हुए द्वार पर जा जमा। वहाँ उसने मुगल-सेना की चारों ओर से मारकाट मचायी। अन्त में सत्तर घाव हो जाने से वह थककर चूर हो वहाँ से हट गया।

प्रारम्भ में जब अबुल हसन ने सन्धि का पैगाम भेजा, औरंगजेब ने मक्कारी से भरा एक पत्र भेजा। उसने अबुल हसन पर दोषारोपण किया कि वह "रात-दिन भोग-विलास, मद्यपान, मक्कारी एवं दुराचारिता में रत रहता है।" दूसरा इल्जाम यह था कि अबुल हसन ने अक्कन्ना तथा मदन्ना हिन्दू भाइयों को अपना मन्त्री बनाया था जो औरंगजेब जैसे धर्मान्ध यवन की दृष्टि में अक्षम्य अपराध था।

धमकियाँ दे देकर समय-समय पर हैदराबाद से घन ले लेने के प्रति-रिक्त इसे अपने राज्य में मिलाने पर औरंगजेब के हाथ अरबों रुपये लगे।

गोलकुण्डा का दुर्ग राजा देवराय के पूर्वजों ने बनाया था। यह इतना प्राचीन है कि इसके मूल हिन्दू निर्माता का नाम ज्ञात नहीं। श्रेय लूटने के लिए, अन्य हिन्दू दुर्गों की भाँति, इसके विषय में भी झूठे मुसलमानों का कथन है कि हिन्दुओं के प्राचीन मिट्टी के दुर्ग के स्थान पर मुसलमानों ने पत्थर का किला बनाया। इन यवन झूठों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। हिन्दू मूल नहीं थे। उनकी शीर्ष एवं भवन-निर्माण को एक परम्परा थी जो लाखों वर्ष पूर्व महाभारत-रामायण-काल से होती हुई वेदों तक जाती थी।

हैदराबाद के उद्गम के विषय में भी यवन इतिहासकारों ने सफेद झूठ बोला है। हैदराबाद प्राचीन हिन्दू नगर है जिसका प्रारम्भिक नाम

सम्भवतः भागमती नगर था। प्रत्येक मध्यकालीन महल एवं दुर्ग के निर्माण का श्रेय विदेशी ग़ज़न शासकों को देने की यादत होने के कारण हैदराबाद की आधार-शिला रखने का श्रेय भी मुहम्मद कुली उर्फ कुतुब-उल-मुल्क को दिया जाता है। पर वहाँ भी उन्हें इसका श्रेय उसके द्वारा अपहृत हिन्दू महिला को देना पड़ा है। उसका नाम भागमती था। खफी खाँ उत्तर-दाहिन्धौलनापूर्वक लिखता है—“भागमती ने (हैदराबाद में) अनेक वेश्या-नद एवं मदिनायत खोज रने थे तथा वहाँ के शासक सदा ही हर प्रकार की विनायिता तथा भोग-विलास के शिकार थे।” गहराई से सोचने पर इस कथन की समझता प्रकट हो जाती है। प्रथम तो अपहृत हिन्दू महिला दर-बन, जालि एवं शक्ति ही कहाँ होगी कि नगर बसाए। दूसरे, दुष्ट मलेच्छ शासन को यह कहाँ तय होगा कि एक नये नगर को अपहृत हिन्दू महिला का नाम दिया जाय। तीसरे, एक स्त्री, वह भी हिन्दू स्त्री, कभी वेश्यामानाएँ पदवा सधुमानाएँ उन व्यक्तियों के लिए नहीं खोलेगी जो इतने घमक तथा अन्य शिक्षों के मीलभञ्जक थे। हजार वर्षों से यवन इतिहासकारों का यह नियम रहा है कि प्रत्येक हिन्दू महल एवं नगर के बनाने-बसाने वाले के नाम पर वे यवनों को श्रेय देते आये हैं अतः हमें इस पर अन्तर्गत चारोंको से विचार करना है। महान् अंग्रेज इतिहासकार सर एच. एम. इलियट ने अपनी तीव्र दृष्टि से इसे जान लिया था अतः उन्होंने इसे “दिल्लेच्छ एवं पञ्चातपूज पाखण्ड” कहा।

यँ तो औरंगजेब स्वयं प्लेग या फिर भी उसकी दक्षिण की लूटों के पन्ना मुगल तथा अहमदाबाद के नीचे समूचे भारत में बड़ा भयानक प्लेग फैला। १६६३ के आरम्भ में फैला यह रोग अताब्दी के अन्त तक चला।

बीजापुर तथा हैदराबाद को लूटकर तथा अपने राज्य में मिलाकर अब औरंगजेब मराठा राज्य को धीरे-धीरे वहाँ शिवाजी के महाप्रतापी पुत्र शम्भाजी राज्य कर रहे थे। वे विज्ञान, सुन्दर एवं शूर थे पर शिवाजी के समान उनमें कूटनीति नहीं थी। वस्तुतः मुगलों अथवा अन्य यवनों के साथ प्रत्येक युद्ध में उन्होंने मुसलमानों को बहुत बुरी पराजय दी। १६८६ में कोल्हापूर की बसाई में लड़ने पर वे अपने भतीजा कावजी कलुश के मिट्टी के घर में मरे। वे इस बात से अचानक थे कि मुगल टुकड़ियों पास ही के क्षेत्र में शिवाजी हुई है। कोल्हापूर की आधार बना मुकरंभ साँ एक लुटेरी

सैन्य टुकड़ी का संचालन कर रहा था। केवल २००-३०० अंगरक्षकों वाले शम्भाजी को दस गुनी मुगल सेना ने घेर लिया। शत्रु-संख्या के आधिक्य के कारण अनेक प्रतिरोध के बावजूद शम्भाजी तथा कावजी कलुश पकड़े गये। वे तथा अन्य २४ मराठे, जिनमें स्त्रियाँ भी थीं, बन्दी बना लिये गये। इससे औरंगजेब के शिविरों में अभूतपूर्व उल्लास छा गया। मुसलमानों की भीड़-क्री-भीड़ सुन्दर, सुडौल तथा शिवाजी के उत्तराधिकारी इस मराठा शेर शम्भाजी के दर्शनार्थ आई। यह तो शिवाजी की मेधा एवं कूटनीति का चमत्कार था जिसने अनेक मुस्लिम खतरों से शम्भाजी को सुरक्षापूर्वक बाहर कर लिया था, अब वह अचानक ही समाप्त हो गया तथा शम्भाजी रक्तपिपासु, आतंककारी, विदेशी म्लेच्छ औरंगजेब के अतिसाधारण बन्दी हो गये।

औरंगजेब के नारकीय बन्दोख में भी शम्भाजी तथा कावजी कलुश ने उसकी शक्ति का प्रतिरोध किया। क्रूर आतंक तथा घमकी भरे कृत्यों के बावजूद उन्होंने मुस्लिम होने से साफ इन्कार कर दिया। इसपर औरंगजेब ने “आज्ञा दी कि दोनों की जीभें काट दी जायें, ताकि वे (इस्लाम के विरुद्ध) असम्मानपूर्वक न बोल सकें। इसके पश्चात् उनकी आँखें निकाली जानी थीं। तदनन्तर १०-११ अन्य व्यक्तियों के साथ यन्त्रणाएँ देकर उनके प्राण लेने थे। शम्भाजी तथा कावजी कलुश के सिर की खालों को भूसा भरकर ढोल पीटकर तथा तुरही बजाकर दक्षिण के सभी नगरों में दिखाता था।” और उनका मांस कुत्तों को खिलाना था। कायर औरंगजेब, वह औरंगजेब जिसका महान् शिवाजी के जीवित रहने पर दक्षिण जाने का साहस नहीं हुआ, इस भयानक क्रूरता के साथ बदला ले रहा था। यह गौरव की बात है कि अपने जीवन में वह अपने महान् पिता के समान योग्य प्रमाणित नहीं हुआ पर यवन क्रूरताओं एवं यन्त्रणाओं के समय वह शक्तिशाली सिद्ध हुआ। शम्भाजी के मुगलों के बन्दी सप्तवर्षीय पुत्र शाहूजी को छोड़ दिया गया और उसे मुगल हरम में ले आया गया।

१६८८-८९ वर्षों के बीच दक्षिण की अनेक रियासतें औरंगजेब के गवकारी से भरे जाल में फँसती गयीं। मराठों की राजधानी रामगढ़ एवं शिवाजी के अन्य दुर्गों के अतिरिक्त बीजापुर, गोलकुण्डा, सागर, रायचूर, भदोवी, सेरा, बंगलौर, बन्देवाण, कांजीवरम, कर्नाटक, बांकापुर, बेलगाम

के क्षेत्र उसने जीत लिये।

मराठों के सम्पूर्ण विनाश में असफल रहे, दुभाग्य से महाराष्ट्र के पर्वतीय क्षेत्रों में हजारों मराठा योद्धा विद्रोह कर उठे। इन बिखरी हुई मराठा दुर्गद्वियों को बल में करना औरंगजेब के लिए बहुत बड़ा सिरदर्द था।

शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम ने, जो शम्भाजी की मृत्यु के समय १६ वर्ष का था, मराठा राज्य की राजधानी दक्षिण के जिंजी दुर्ग में पहुँचा दी तथा अन्य मराठा सेनापति गाँवों में छिपे हुए मुगलों को सताने लगे। शम्भाजी की हत्या का बदला दूसरे वर्ष ही ले लिया गया जब महान् शूर मराठा योद्धा सन्तजी घोरपाड़े ने मुगल सेनानायक इस्तम खाँ को पकड़ लिया तथा उसके शिबिर को सफलतापूर्वक लूट लिया। सन्तजी ऐसा भयानक योद्धा था कि खफी खाँ तक को लिखना पड़ा "जिस किसी ने उससे युद्ध किया या तो मारा गया, घायल हुआ या फिर बन्दी बना लिया गया। यदि कोई भाग भी पाया तो केवल अपने प्राण लेकर, सेना तथा सामग्री से रहित। कुछ भी नहीं किया जा सकता था। जहाँ कहीं भी यह कारकीर्मी कुता (यानी मराठा योद्धा, सन्तजी) गया, आक्रमण किया। कोई भी जाही अमीर इतना साहसी नहीं था कि उसका प्रतिरोध करता तथा उनसे उनकी सेनाओं को जो-जो हानि पहुँचायी, इससे बहादुर योद्धा भी पराजित हो गया। बहादुर एवं निपुण योद्धा इस्माइल खाँ प्रथम आक्रमण में ही पराजित हो गया। उसकी सेना को लूटा गया और वह स्वयं घायल हुआ तथा बन्दी बना लिया गया। खली मरदान खाँ को भी पराजित कर बन्दी बना लिया गया।" अपनी मुक्ति के लिए सभी को बहुत बड़ी रकम देनी पड़ी।

मध्य क्षेत्र की जिंजी राजगढ़ दुर्ग पर अधिकार जमा लिया था, १६६१ में योद्धा शिबिराना उससे बाहर ला गया। उसने प्राणों की भीख माँगी। उनके द्वारा मराठा प्रदेश से लूटी हुई समस्त सम्पत्ति समर्पित कर देने पर उसे छोड़ दिया गया।

उत्तर में आगरा से बीर खटौ ने मुगल शक्ति का अनादर करना प्रारंभ किया। मुस्लिम सेनापति आगरा खाँ तथा उसका दामाद दोनों ही काट डाले गये। औरंगजेब के अपने ही पुत्र उसके शत्रु थे। हैदराबाद तथा बीजापुर

के युद्ध के समय शत्रु से मिल जाने के अपराध में औरंगजेब ने अपने पुत्र मुअज्जम को बन्दी बना लिया था। बन्दी रूप में, औरंगजेब के आदेशानुसार, शाहजादे का सिर प्रतिदिन घुटाया जाता तथा अन्य प्रकार से भी उसका अपमान किया जाता। १६६२ में औरंगजेब ने कुछ निरोधों में डील दी। मुसलमानों द्वारा शासित हिन्दुस्तान की क्रूरता एवं हृदयहीनता की भारत के पुर्तगाली शासन से तुलना करते हुए खफी खाँ कहता है कि वहाँ मुसलमान बहुत अच्छी प्रकार रखे जाते थे, उन पर कोई कर भी नहीं लगाया गया था, बस एक बात की मनाही थी—न तो वे अल्लाह को पुकारें और न नमाज के लिए लोगों को एकत्र करें।

अब मराठे शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम के अनुयायी थे। उसने पनहाला दुर्ग से मुगल-रक्षकों को मार भगाया।

१६६३ में मराठों के महान् तीर्थ-स्थल पंढापूर में औरंगजेब ने डेरा डाला तथा मुस्लिम लूट एवं भ्रष्टता के अनुसार समीप के पवित्र हिन्दू स्थलों एवं मन्दिरों को भ्रष्ट करने लगा।

इसके बाद तो लज्जाजनक पराजयों के कारण औरंगजेब का जीवन अतीव कष्टपूर्ण था। वीर सन्तजी ने कर्नाटक की सीमा पर औरंगजेब के आनिसार खाँ तथा तहब्बर खाँ सेनापतियों को बहुत बुरी पराजय दी तथा उनकी सम्पूर्ण सामग्री एवं तोपखाना लूट लिया।

१६६४ में औरंगजेब की सेना ने मराठों की नयी राजधानी जिंजी का घेरा डाला। मुगलों में वैमनस्य हो गया। शाहजादा मुहम्मद कामबरक ने अपने को जामदातुल मुल्क तथा नुसरत जंग सेनापतियों की सेवा में पा अपमान महसूस किया। ऐसा लगा जैसे गृहयुद्ध भड़क उठेगा। ऐसे में सन्तजी ने मुगल घेरा डालने वालों की सामग्री तथा सन्देश के मार्ग अवरोध कर दिये। अनेक मुगल सेनापति अपने स्थान छोड़ भयभीत हो पहाड़ियों में भाग गये। उनका सामान मराठों ने लूट लिया।

कुछ समय पश्चात् दुर्ग में घिरे हुए मराठा-रक्षक इसे छोड़ अन्यत्र चले गए। मुगलों के मनमुटाव अब बहुत बढ़ गए थे। शाहजादे कामबरक को बन्दी बना औरंगजेब के सामने प्रस्तुत किया गया। बादशाह को शाहजादे का बन्दी बनाया जाना अच्छा नहीं लगा। उसे छुड़वाकर उसने अपने सेनापतियों को डाँटा।

औरंगजेब के सेनापति हुसैन अलीखान को नान दरबार नामक स्थान पर पराजित किया। मराठों द्वारा दी गयी इन अनेक हारों से दुःखी होकर औरंगजेब ने एक अन्तिम और निर्णायक युद्ध करने का निश्चय कर लिया ताकि उन्हें वात्सल्य में डूब दिया जाय। उसने कठोर आदेश दिया कि सभी महिलाएँ पीछे छोड़ दी जायें। चारों ओर लकड़ी आदि की बाड़ बनाकर उसकी रक्षा के लिए कुछ व्यक्ति छोड़ दिये गये। मराठा बादशाह राजाराम की राजधानी सतारा की ओर औरंगजेब की विशाल वाहिनी बढ़ी। औरंगजेब के विनाशकारी विरोध ने सम्पूर्ण मराठा प्रदेश को उजाड़ दिया। सतारा की चारों ओर से घेर लिया गया। मराठों ने घेरा डालने वाले मुगलों का प्रति-भार्य काट दिया। इसी समय मुस्लिम अधिकृत बरार के बावे से लौटें हुए मराठा राजा राजाराम की एकाएक मृत्यु ने मराठों के प्रतिरोध में गत्यावरोध उत्पन्न कर दिया। सतारा समीपस्थ मराठा दुर्ग समर्पित कर दिये गये तथा मराठा सेनापतियों ने विधवा रानी ताराबाई के अशोक अपने को फिर से गठित किया। मुस्लिम शिविर में राजाराम की मृत्यु की संशय दावत, मराब तथा गाजे-बाजे के साथ मनायी गयी।

औरंगजेब की प्रसन्नता अस्थायी रही। उसके बहुत से लोग तथा पशु बाड़ की नदी पार करते हुए डूब गये। लूट के जिस सामान को वे ले नहीं जा सके उसे जला दिया। उसकी सेना का अधिकांश नष्ट होने पर औरंगजेब ने नयी टुकड़ियाँ मँगाने के लिए बुरहानपुर, बीजापुर, हैदराबाद तथा अहमदाबाद के सेनापतियों को आदेश दिया। इन आदेशों के फल-स्वरूप अनेक हिन्दुओं की यातनापूर्वक मुसलमान बना लिया जाता था। औरंगजेब के ही निरोधन में हिन्दुओं के क्षेत्रों को लूटने के लिए दूर भेज दिया जाता था। यह महामक टुकड़ियाँ कठिनता से ही आ पायी थीं कि अचानक ही पाघ बहती हुई नदी में बाड़ आ गयी। इसके बाद ही मराठों ने पनहास दुर्ग पर सत्त्वानक आक्रमण किया। मुहम्मद आजम को इसका समर्पण करना ही पड़ा।

आक्रमक लूटेर मुगलों तथा प्रतिरक्षाकारी मराठों के बीच अनेक संघर्ष तथा प्रतिस्पर्ध होते रहे। विदेशी मुसलमानों द्वारा किया गया विनाश मुहम्मद अजीम की कुशुत्वों से स्पष्ट है। "उसने अपना कर्तव्य

निभाने के उत्साह में कोई कमी नहीं दिखायी। वह विनाश करने, आबादी वाले स्थानों में आग लगाने, हत्या करने, लोगों को बन्दी बनाने तथा पशुओं को पकड़ने और ले जाने में इतना फुर्तीला था कि बेती-बाड़ी अथवा मराठों का नाम निशान भी नहीं पाया जाता था।" (पृष्ठ ३७१, भाग VII)।

दूसरी ओर ताराबाई ने "शाही भूभाग नष्ट-भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी तथा सिरोंज, मन्दसोर तथा मालवा तक के छः सूबे लूटने के लिए सेनाएँ भेजीं।" तथा अपने शासन के अन्त तक औरंगजेब की तरकीबों, लड़ाइयों तथा धिराबों के होते हुए भी मराठों की शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी।" मराठे औरंगजेब के राज्य में भीतर तक घुसकर लड़ते थे तथा जब औरंगजेब उनके भूभाग में डेरा डालकर लूटमार करता तब वे उसके राज्य में जाकर आतंक मचा देते थे तथा उसके दुर्ग-रक्षकों एवं पथ-रक्षकों को लूटते तथा मारते थे। १७०२ में मराठों ने अहमदाबाद के समीप कमरतोड़ पराजय दी। मराठों से अपनी जान बचाने के लिए भागते हुए अनेक मुसलमान साबरमती नदी में डूब मरे।

दक्षिण में ही अन्य मराठा सरदार पर्यन्तायक ने औरंगजेब को बहुत परेशान कर रखा था। नायक की राजधानी वाकनखेड़ा के पड़ोस में भी यदि कोई मुगल सेनापति घुसने का साहस कर बैठता, चाहे वह मुहम्मद आजम ही क्यों न हो, उसे बड़ी करारी हार मिलती। औरंगजेब ने उसके विरुद्ध स्वयं जाने का इरादा किया तब नायक ने ताराबाई की सहायता माँगी। बड़े लम्बे धिराब तथा हानियों के पश्चात् मुसलमान दुर्ग को ले सके लेकिन उन्हें दुर्ग के अन्दर केवल भस्म ही मिली।

इस कठिनाई के समय औरंगजेब भयानक रूप से बीमार पड़ गया। उसकी मृत्यु की अफवाह ने उसके शिविर में हलचल मचा दी। उसकी टुकड़ियाँ वीर मराठों की घमकियों से आतंकित थीं ही, अतः उन्हें विश्वास हो गया कि औरंगजेब की मृत्यु से तो उनका अपना अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। लेकिन औरंगजेब स्वस्थ हो गया। कृतज्ञतावश उसने हकीमों को पुरस्कार दिया और फकीरों को दान दिया।

औरंगजेब अहमदनगर की ओर चला। अपने पिता की बीमारी सुनकर मुहम्मद आजम ने अहमदाबाद से चले आने की आज्ञा माँगी। औरंगजेब

इतना मक्कार था कि उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि महमूदाबाद की जलवायु उसके अनुकूल नहीं है। शाहजादे की आँख सिंहासन पर थी। औरंगजेब ने बड़ी कठोरतापूर्वक स्पष्ट शब्दों में अपने पुत्र को लिखा कि वह उसकी सब बहमाँगी समझता है। अब वह स्वयं शाहजादा था तो वह भी यह बहाना बनाकर कि दक्षिण की जलवायु उसके अनुकूल नहीं है, अपने मरणासन्न पिता के समीप होना चाहता था। शाहजादा औरंगजेब को चिट्ठियाँ लिख-लिखकर दुखी करता रहा। बड़े लिबाब के उपरान्त औरंगजेब ढीला पड़ा और मुहम्मद शाहम उसके पास दौड़ा आया। लेकिन औरंगजेब अपने सबसे छोटे लड़के कामबख्श से स्नेह करता था लेकिन वह अभी इतना छोटा था कि कोई मक्कारो नहीं सोच सकता था। मुहम्मद शाहम का जिविर में आना बहुत दुर्भाग्यपूर्ण था क्योंकि प्रत्येक मुस्लिम शाहजादा अपने भाइयों का हत्यारा होता था, इसीलिए कामबख्श की उसके बड़े भाई मुहम्मद शाहम से सुरक्षा रखने के लिए औरंगजेब ने सेनापति हसनख़ाँ जयनाम औरमत्तग को नियुक्त किया। हसनख़ाँ मुहम्मद शाहम की चालों को काटता रहा। उसने औरंगजेब से हसनख़ाँ की शिकायत की। छोटे शाहजादे की सुरक्षा को ध्यान में रखकर औरंगजेब ने बड़े सम्मान के साथ कामबख्श को बीजापुर भेज दिया जो बड़े शाहम को बहुत बुरा लगा। कुछ दिनों पश्चात् मुघलमूल मानवा भेज दिया गया।

इन दो शाहजादों के चले जाने के बाद औरंगजेब बीमार पड़ गया। उसे तीव्र ज्वर हो गया। सभी खाँ के अनुसार पचास वर्ष दो महीने शासन करने के पश्चात् ६० वर्ष की अवस्था में शुक्रवार, फरवरी २१, १७०७ को औरंगजेब मर गया। वह दोलताबाद के समीप खुलदाबाद में जहाँ वह दरे डाले हुए था, दफना दिया गया। एक अन्य स्रोत के अनुसार स्वाभाविक मृत्यु नहीं हुई। वह और सेनापति मराठा गुरिल्लों से लगातार युद्धों में रत रहे। ऐसे ही एक बार मराठों के प्रचानक आक्रमण से मुगल सेना तितर-बितर हो गयी। औरंगजेब अपनी सेना के मुख्य भाग से बिछुड़ गया तथा भूख भरे मृदान में मार्ग भूल गया। उसके साथ लगभग २०० मुस्लिम सैनिक थे। निजामी मराठे मुगलमानों की खोज में पूरे क्षेत्र को ही खोज रहे थे कि उन्हें औरंगजेब द्वारा संचालित यह पवन-वर्ग दिखलाई दिया। उन्होंने इसका पीछा किया। अपनी जान बचाने के लिए, भागते हुए मुगल

'अल्लाह ! अल्लाह ! तोबा ! तोबा !' चिल्लाह रहे थे कि सब-के-सब काट डाले गले। औरंगजेब के भी टुकड़े हो गये। उसके शरीर का प्रत्येक अंग दूर-दूर गिरा। औरंगजेब के कटे हुए शरीर के अंग अनेक स्थान पर दफन पड़े हैं। जिसके कारण उसके नाम पर महाराष्ट्र में अनेक मकबरे हैं। यदि यह वर्णन सही है तो औरंगजेब का अन्त उचित ही हुआ। जिसने जीवन भर दूसरों के साथ कुत्तों का-सा व्यवहार किया अन्त में वह कुत्तों की मौत मारा गया। वह मराठा प्रदेश में नव-संस्थापित हिन्दू प्रतिरोधक केन्द्र को समाप्त करने तथा दक्षिण भारत के सभी निवासियों को डराकर मुसलमान बनाने की आशा में गया था किन्तु दक्षिण उस मूल के लिए जाल सिद्ध हुआ। औरंगजेब क्रोध तथा दुःख से मरा हुआ दक्षिण में २५ वर्ष मारा-मारा फिरता रहा। दक्षिण में व्यतीत किया गया उसके शासन का उत्तरार्द्ध घमण्डी मुगलों के लिए एक से एक बढ़कर मुसीबतें तथा लज्जा-जनक पराजय, उनसे लाया, जिन्हें वह घृणापूर्वक चूहे तथा कीड़े कहा करता था। जिस विश्वासघात का व्यवहार उसने अपने ही पिता तथा भाइयों के साथ किया उसका मजा उसे उसके विद्रोही पुत्रों ने चला दिया। उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े किया जाना ठीक ही था क्योंकि उसने जिवाजी के पुत्र शम्भाजी तथा अन्य विपक्षियों को बड़ी क्रूरतापूर्वक मारा था। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से भाग्य ने उसके साथ जैसा-का-तसा किया तथा मध्यकालीन दुनिया के लिए, जो उसकी इस्लामी एड़ी के नीचे पचास साल तक कुचली जाती रही थी, उसकी मृत्यु बरदान सिद्ध हुई। शक्तिशाली मुगलों का अन्तिम जीव गुजर गया, और अपने पीछे ऐसे कमजोर तथा लड़ने वाली सन्तान छोड़ गया जिसे भाग्य ने आगामी डेढ़ सौ वर्षों के भीतर आपस में ही लड़ा-लड़ाकर समाप्त कर दिया।

औरंगजेब जैसे धर्मान्ध, विदेशी मुसलमानों की एक हजार वर्षोंय लम्बी पवित्र ने हिन्दुस्तान में जो कहर मचाया वह बड़ा भयानक है। सम्पूर्ण प्रजातियों, कस्बों, नगरों तथा प्रदेशों को आतंकित करके हिन्दू धर्म छुड़वाकर उन्हें अरब, ईरान तथा तुर्की के मुसलमान घोषित कर दिया गया। इस ढंग से भट्टी तथा राणा जैसी वीर हिन्दू क्षत्रिय जातियाँ थीं, जिन्होंने हिन्दुस्तान तथा हिन्दुत्व की रक्षा के लिए सब कुछ किया, मजबूर होकर इस्लाम के जाल में फँसा ली गयीं। इसका एक विशेष उदाहरण

मुरादाबाद की लघाकथित मुस्लिम कसाई बिरादरी है। वे हिन्दू-वैश्य के लघा जिस बाजार में श्राव स्वयं काटकर गोमांस बेचते हैं पहले वस्त्र तथा किराना बेचा करते थे। एक बार औरंगजेब ने मुरादाबाद में बड़ा श्रावकारी पावा किया तथा बलपूर्वक हिन्दू व्यापारियों को मुसलमान बना सब सामान लूट लिया। उन्हें और भी प्रमानित करने के लिए तथा हिन्दुओं के पवित्र स्तीत से उन्हें काटने के लिए औरंगजेब ने उन्हें विवश कर दिया कि जिन गोशों को वे पवित्र मां समझते थे उन्हें काट डालें तथा अपना जीवन-यापन उनका मांस बेचने से ही करें और उस मांस को श्रावणकारियों द्वारा खानित किये गये उन मूर्ति के टुकड़ों से ही तोलें जिनको वे पूजा करते थे।

: ६ :

अन्य दुर्बल मुगल

मुस्लिम कुशासन के पाँच सौ वर्षों (१२०६ से १७०७ तक) ने हड़पे हुए दिल्ली के सिंहासन को ऐसा भयानक मृत्यु-पाश बना दिया था कि औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब कभी मुगलों के ताज के लिए किसी बादशाह की जरूरत पड़ी, उत्तराधिकारी के लिए प्रभावशाली दरबारियों ने शाही हरमों को टटोला लेकिन शीलभंग की हुई स्त्रियों ने सिसकते हुए, चिल्लाते हुए, कराहते हुए तथा मिन्यते करते हुए अपने बच्चों को औपचारिक राजमही मिलने किन्तु उसका औपचारिक तथा कुरवध होने के अन्त से बचाने के लिए अपने बच्चों को छिपा लिया।

प्रतिदिन मुगलवंश के कुकुरमुत्ते दरबारियों की कृपा से मजाक के तौर पर सिंहासन पर बैठ जाते और थोड़े समय बाद ही उन्हें अन्धा कर दिया जाता अथवा मार दिया जाता।

१७०७ तथा १८५५ ई० के बीच—जब पेशवा पाने वाले अन्तिम मुगल को हिन्दुस्तान से बाहर जीवन व्यतीत करने निकाल दिया गया—एक दर्जन से अधिक मुगल हुए, जिन्होंने इससे पूर्व कि अल्लाह उनको कुहपात तथा बदमाश जाति समाप्त कर दे, इस्लामी ताज का प्रदर्शन किया।

हिन्दुस्तान के इस १५० वर्षीय मुस्लिम शासन में दिल्ली के हिन्दू लाल-किले में, जो मुगलों के अधिकार में था, कोई राष्ट्रिय अथवा अन्तर्राष्ट्रिय घटना नहीं हुई, अपितु सामान्य मद्यपान, नाच-गाने-भोग-विलास, पाशविक क्रूरता एवं भयानक हत्याएँ ही होती रहीं।

आठवीं शती के हत्यारे मुहम्मद बिन कासिम से लेकर १८वीं शती के नरसंहारक नादिरशाह तथा अहमदशाह तक के एक हजार वर्षों में उनके अ-मुसलमानों की सामूहिक हत्याओं, उनकी सम्पत्ति लूटने, मन्दिरों को

भूसात करने, उनकी सलनाओं का शीलभंग करने तथा उनके बच्चों को, जितना हो सके, अपहरण कर मुसलमान बनाने के उनके धार्मिक उत्साहों में कोई छतर नहीं घाया। किन्तु जो सबसे रहस्यमयी बात है वह यह कि एक हजार वर्ष के भारत में विदेशी मुसलमानों के लगातार आतंक, क्रूरता तथा हुरकहाँत का घन्ट मुलाम कादिर नामक एक गुण्डे के राससी कृत्य में हुआ। एक समय, जबकि इतिहास ने मोड़ लिया तथा शाह आलम द्वितीय को गौरवशाली बादशाहत से नीचे गिराकर ऐसा दीन, दुःखी, अन्धा बना दिया, जिसने रोटी का एक टुकड़ा तथा पानी की एक-एक बूंद माँगी, मुलाम कादिर ने शाही हरम में स्त्रियों तथा बच्चों को नग्न कर दिया, अफगान सैनिकों द्वारा महिलाओं का शीलभंग कराया तथा अपने मनोरंजन के लिए माँझी लड़कों को अवनानपूर्वक नचाया जबकि वह स्वयं हाथ से कटार लेकर जमीन पर पड़े हुए शाह आलम द्वितीय की छाती पर बैठा था तथा बादशाह की घाँखों की अपनी छुरी से ऐसे बाहर निकाल रहा था जैसेकि रिसते हुए तरबूज के लाल खण्डों को निकाला जाता है किन्तु इस अद्भुत घन्ट का चरम-बिन्दु तब था जब मुलाम कादिर ने एक चित्रकार को बुलाकर आज्ञा दी कि वह बहुत ही शीघ्र, उसी समय भयानक दृश्य का चित्र बना दे जब उसने विजयपूर्वक बादशाह शाह आलम द्वितीय को नीचे ढाब निपाया था तथा भयभीत स्त्रियाँ और बच्चे नितान्त नगनावस्था में उसकी तथा उसके दुष्ट सानिध्यों की सेवा में रत थे। यह उसने इसलिए किया कि ऐसा न हो कि कहीं आने वाली पीढ़ियाँ उसके इस महान् कृत्य को भूल जायें।

इन बर्बरतापूर्ण भयानक नाटक को दोनों पक्षों की ओर से कुरान के उद्धरण द्वा-द्वारा तथा सौम्य आ-आकर पावनता प्रदान करने का यत्न किया गया, एवं बादशाह के नाम पर इन कुकृत्यों को सराहा गया।

इससे बड़ी ब्राह्म की विडम्बना क्या होगी कि जिस शाह आलम द्वितीय के पूर्वज हिन्दुस्तान में १,००० वर्षों तक सलमाने प्रत्याचार करते रहे उसके वर्णशासकत्व बादशाह ने उसके ही सहजर्मी को फल देने भेजा।

आलम शक्तिशाली, क्रूर तथा दिव्यासपाती मुगल औरंगजेब की मृत्यु १७०७ ई० के पश्चात् दरवाजी दरबार की राजनीति में अनेक छोट-मोटे मुगल पानी के बुलबुलों के समान निकलते-झिलते रहे।

औरंगजेब के पाँच जायज पुत्र थे। इनमें से प्रथम बड़े दो कश्मीर के रजौरी नृपति की पुत्री नवाब बाई से थे। सबसे बड़ा मुहम्मद मुलतान, जिसे औरंगजेब ने अपने पिता बादशाह शाहजहाँ समेत अपने सभी विपत्तियों को समाप्त करने सम्बन्धी कार्य पर लगाकर विश्वासघात में प्राणश्रित कर दिया था, दिसम्बर १४, १६७६ को ३६ वर्ष की अवस्था में मर गया। दूसरा शाहजादा अकबर (दिलरस बानू बेगम से उत्पन्न) विद्रोही बन स्वयंसेव धर छोड़ औरंगजेब के शासन काल में ही मर गया। अतः औरंगजेब की मृत्यु पर उसके तीन जायज दावेदार थे। मुअज्जम उर्फ शाह आलम (अक्टूबर १४, १६४३ को बुरहानपुर में नवाब बाई से उत्पन्न) उन तीनों में सबसे जेठा था। अपने यवन पिता तथा इस्लामी परम्परानुसार उसने अपने दो भाइयों की हत्या कर सिंहासन हथिया लिया। अपनी मृत्यु की बेला में बड़ी सावधानी से औरंगजेब ने अपने समीप उन तीनों में से किसी को नहीं आने दिया। जैसे औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को बन्दी बनाया उसे भय था कि ऐसे ही कहीं उसके पुत्र उसे बन्दी न बना लें। मुअज्जम काबुल में था। सबसे छोटा कामबख्श बीजापुर तथा आजम मालवा में था।

शाह आलम ने ठीक एक मास का प्रतीक्षा के अनन्तर औरंगजेब की मृत्यु के विषय में मार्च २२, १७०७ को सुना। सर्वेसर्ग वह हिन्दुस्तान लौटा। अन्य दो भी ताज की आकांक्षा ले अपनी-अपनी सेनाएँ ले आये। जून १६, १७०७ को जाजऊ के युद्ध में आजम की हार हुई और वह मारा गया। दो वर्ष पश्चात् (अर्थात् १७०९ में) कामबख्श भी मारा गया।

शाह आलम बहादुर शाह का नाम ग्रहण कर सिंहासन पर बैठा। वह कैसा आदमी था यह इसी से जाना जा सकता है कि शाह आलम उर्फ मुअज्जम के कुकृत्यों से भयभीत हो उसके पिता औरंगजेब ने सम्पूर्ण हरम सहित उसे मार्च ४, १६८७ से आगे ७ वर्षों तक बन्दी बनाए रखा।

अपने अन्य यवन शासकों की भाँति बहादुरशाह ने भी अपना परम पुनीत कर्तव्य हिन्दुओं का संहार करना, उनकी स्त्रियों का अपहरण करना, उनकी सम्पत्ति लूटना, गाँवों की हत्या करना तथा मन्दिरों को मस्जिदों में परिवर्तित करना माना। इस्लामी कामों के लिए उसने राजस्थान को चुना (१७०७)। औरंगजेब की मृत्यु के ठीक पश्चात् जयपुर, जोधपुर तथा उदय-

पुर के बीर राजपूतों ने अपने तथा मन्दिरों के प्रति किये गये अपमान का बदला जोधपुर के यशोतसिंह, उदयपुर के धर्मसिंह, जयपुर के जयसिंह तथा महान् बुरबीर सेनापति दुर्गादास राठौर के नेतृत्व में विदेशी यवनों द्वारा हड़री गयी तथाकथित मस्जिदों तथा अपने खोये हुए भू-भाग को पुनः जीतकर लिया। इस्लामी लूटपाट के बावजूद राजस्थान के राजपूत अविजित रहे।

दक्षिण में बहादुरशाह का अपना भाई कामबख्श मुगल सिंहासन का प्रतिद्वन्दी बन विद्रोह कर उठा। कामबख्श को दबाकर वह उत्तर की ओर घाया हो था कि दल महान् हिन्दू गुरुओं के शिष्यों (सिखों) ने, जिन्होंने जब तक हिन्दुओं की सशक्त सेना एकत्र कर ली थी, विदेशी मुस्लिम शासक को चुनौती दी।

चारों ओर से घिरकर मुगल शक्ति ने अपनी सुरक्षा की तरकीब सोची। औरंगजेब की मृत्यु के समय मराठों का उत्तराधिकारी, शंभाजी का पुत्र साहू, मुगलों का बन्दी था। अनन्तर आजम ने साहू तथा उनके परिवार को बन्दी बनाए रखा। मुगल तत्त्व हथियाने तब आजम उत्तर की ओर जा रहा था, जब साहू आत्म काबुल से दक्षिण की ओर आ रहा था उसने साहू को, नर्मदा नदी के उत्तर पर नेमवार के समीप दोराह नामक स्थान पर ७ मई को, इन आशा से मुक्त कर दिया कि वह बादशाह बनने में सफल हो गया तो दक्षिण में वह साहू के नेतृत्व में मराठों पर निर्भर रह सकता है। दूसरी बात यह भी थी कि इससे मराठों में आन्तरिक कलह उत्पन्न हो जायेगी क्योंकि साहू के बन्दीगृह में होने के समय उनकी चाची बाराबाई अपने पुत्र की स्थापनापन्न हो मराठा राज्य पर शासन करती रही थी। मुगलों की योजनाएँ ध्वस्त हुईं तथा मराठे यथाशीघ्र साहू के लश्कर के नीचे एकत्र हो हजारों वर्ष लम्बे हिन्दुस्तान पर राज्य कर रहे विदेशी मुसलमानों को समाप्त करके शक्तिशाली हिन्दू राज्य के रूप में फल-फूलें।

१०वें गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु के अनन्तर उत्तर में बीर हिन्दू शिष्य (सिख) जिन्होंने हिन्दू प्रभुसत्ता की पुनः प्राप्ति की शपथ ली थी, परम मराठा बल, बन्दा बंराजी का नेतृत्व प्राप्त कर रहे थे।

दक्षिण में दहरे हुए गुरु गोविन्द ने इस बंराजी के विषय में जाना।

बंराजी के हृदय में देशभक्ति की ज्योति जल रही थी। उन्होंने हिन्दुत्व के लिए अधिक-से-अधिक सेवा करने की ठानी इसलिए गुरु गोविन्द ने उन्हें 'बन्दा' कहा। यह बन्दा ही थे जो एक मुस्लिम द्वारा मार डाले गये गुरु गोविन्द संबंधी दुःखद समाचार उनके शिष्यों को सुनाने उत्तर में आये। गुरु के अन्तिम सन्देश से जाज्वल्यमान बन्दा बंराजी ने विदेशी मुगलों के विरुद्ध झुले युद्ध में हिन्दू शिष्य सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। मुसलमान बन्दा के नाम से कांप जाते थे। वे मराठों की गुरिल्ला नीति के अनुसार मुगलों पर अत्यन्त शीघ्र एवं अकस्मात् धावा बोलते, लूटकर अकूत सामग्री ले जाते तथा शत्रुओं को काट जाते। वे यत्र-तत्र सर्वथा रहते हुए भी आठ वर्षों तक अजेय रहे। निराश हो मूल्यतावश बहादुरशाह ने आदेश दिये कि सभी हिन्दुओं को अनिवार्यतः मंड दिया जाय और इस कार्य के लिए समूचे राज्य के नाई लगा दिये गये। उन्हें आशा थी कि समूचे हिन्दुस्तान में अकेले बन्दा बंराजी ही दाढ़ी समेत रह जाएँगे अतः शीघ्र ही पकड़ लिये जायेंगे। महीनों तक शाही नाई अपने उस्तरों का प्रयोग करते रहे पर बन्दा न कहीं दिखाई ही पड़े और न पकड़े ही गये। अपनी दाढ़ियों का काटा जाना महान् पाप कर्म समझ अनेक हिन्दू सरदारों ने आत्महत्या कर ली। लाखों प्लेच्छों की दाढ़ियों को जो विदेशी फैशन में कटी हुई थीं तथा जो हिन्दुओं की दाढ़ियों से स्पष्टतया अलग थीं, काटे जाने की आज्ञा नहीं थी।

१७१२ में बहादुरशाह मर गया। उस समय उसकी उम्र ७० वर्ष से ऊपर थी तथा उसने चार वर्ष दो महीने राज्य किया था। हिन्दू सिंहासन को हड़पने वाला अपने पूर्वजों की परम्परानुसार हिन्दुओं, उनके मन्दिरों तथा संस्कृति को विनष्ट करने का अकथ प्रयास करता रहा किन्तु मुगल कोष खाली हो चला था तथा हिन्दुओं ने भीषण युद्धों में सगर्व चुनौती देकर उन्हें नपुंसक बना दिया था। बहादुरशाह अपनी दुर्बलता तथा मूर्खता के लिए प्रसिद्ध है। किसी भी मुसलमान को किसी भी वस्तु के लिए मना न करने की उसने सीगन्ध खायी थी। एक बार एक सामान्य कुने वाले ने उससे कृपा करने की प्रार्थना की। उसने शीघ्र ही शाही मुगल की मोहर लगाकर उसे "अगवान् कुता-पाठक" की उपाधि से अलंकृत किया।

बहादुरशाह दिल्ली के समीप ही दफना दिया गया। उसके साथ ही

बाकी मुगल शान शीकत समाप्त हो गयी।

बहादुरशाह के चार पुत्र थे जो सभी लुन्हे और बदमाश थे। उनके नाम थे जहाँदार शाह, सजीमुल्लाह, रफीउल्लाह तथा खुजिस्त-खस्तार जहाँशाह। उसका दूसरा पुत्र सजीमुल्लाह अपने भाइयों की भाँति विलास-शिर हुंने के साथ बड़ा मक्कार तथा पड़्यन्त्रकारी था। उसकी हत्यारी प्रवृत्तियों तथा सहत्याकांक्षाओं को बहादुरशाह ने बहुत पहले ही जान लिया था।

बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के लिए सदा की भाँति युद्ध प्रारम्भ हो गया, किन्तु सबसे बड़े पुत्र जहाँदार शाह ने किसी प्रकार विहासन हथिया लिया। जहाँदारशाह का राजतान आतंक, घन्घणा तथा विलासिता तक ही सीमित था। उसकी आज्ञा से उसके अपने तथा भाइयों के दरवाजों की काल काँटियों में बन्द कर दिया गया। इनमें से कुछ की उम्र तो बचन से आठ वर्ष की थी। महाबत खाँ तथा एक दर्जन से अधिक अन्य दरबारी खजौर में बाँध दिये गये, उन्हें सताया गया तथा उनकी सम्पत्ति को हड़प लिया गया।

जहाँदार शाह के समय दिल्ली के लालकिले में मद्यपान, नृत्य तथा अन्य विलासश्रिय आते-होती रहती थीं। जहाँदार शाह द्वारा अपहृत हिन्दू नियोक्तों में एक लाल कुँवर भी था। बादशाह की चहेती होने के कारण उसके भाइयों तथा मित्रों को जामोरे, जवाहरात तथा हाथी भेंट कर दिये गये थे।

उसका छोटा भाई सजीमुल्लाह १७१२ ई० में मर गया था। उसका पुत्र फर्रुखसिमियार, जो बंगाल का गवर्नर था, अपने चाचा जहाँदार शाह की मारकर स्वयं वहीं पर बैठना चाहता था अतः उसने युद्ध की घोषणा कर दी। दो प्रभावकारी दरबारी, सैयद बन्धू, उसके भेदिये थे। जहाँदार शाह पराजित हुआ, बन्दी बना लिया गया तथा फरवरी, १७१३ में मार दिया गया। उसका शासन केवल एक वर्ष ही चला। अन्य मुसलमान शासकों की भाँति उसका मन्द भी बड़ा बुरा हुआ। अनेक बारों के पश्चात् भी उसने पलायन जीवन जीते देखकर एक भुगल ने उसकी कमर के नीचे ऊँची पसीदार भारी जूते मारे जब तक कि बेचारा शहंशाह पूरी तरह भर नहीं गया। उसका शरीर धरती पर तथा सिर भाल में रखकर

फर्रुखसिमियार के तम्बू के सामने लाया गया। मृतक बादशाह के पास ही उसी प्रकार मारे गये जुल्फिकार खाँ दरबारी का शरीर पड़ा था।

इन दो लाशों के ऊपर चढ़कर फर्रुखसिमियार ने अपने हत्या किये गये चाचा के सिंहासन की राह ली। ठीक यवन परम्परा के अनुसार फर्रुखसिमियार भी अत्यन्त दुराचारी था। वह भी दुर्बल मस्तिष्क का व्यक्ति था। फर्रुखसिमियार का छःवर्षीय शासन दरबार की मक्कारियों व विलासिताओं से भरा हुआ था। जहाँ पहले भारत के अधिकांश को प्रभावित करने वाले शाही राजा हुए, जहाँदारशाह से आगे के मुगल बादशाह तो केवल हूरम के ही मालिक थे जिन्हें लालकिले की दीवारों से बाहर का कोई बाँध नहीं था। किले के भीतर भी सम्पूर्ण राजनीतिक शक्ति पर मक्कार सरदारों का नियन्त्रण था। उनमें भी कुछ वर्षों तक दो सैयद भाई, अब्दुल्ला खाँ तथा हुसैनखली खाँ वास्तविक सत्ता हथियाए रहे अतः उन्हें 'किंग मेकर' कहा जाने लगा। अपने चाचा की हत्या कर सिंहासन हथियाने वाला फर्रुखसिमियार उनके हाथों की कठपुतली था। इनमें से अब्दुल्ला को मुख्य मन्त्री तथा हुसैन को प्रधान सेनापति बना दिया। यह फर्रुखसिमियार ही था जिसने बन्दा बैरागी के नेतृत्व में हिन्दू शिष्य सेनाओं (जिन्हें अब भिक्ख कहते हैं) पर धावे वाले। बन्दा पकड़ा गया। अधिकांश हिन्दू नेताओं के समझ फर्रुखसिमियार अत्यन्त शक्तिहीन सिद्ध हुआ अतः उसने बैरागी तथा उनके अनेक अनुयायियों की हत्याएँ कर बदला लिया, किन्तु इसका बदला राजस्थान के राजपूतों ने ले लिया। उन मुस्लिम दुर्ग-रक्षकों को मार-मार कर भगाकर। उन्होंने राजस्थान का बहुत-सा भाग मुगलों के पंजों से मुक्त कर लिया।

सैयद बन्धुओं की कठपुतली बने रहने से दुःखी होकर अब फर्रुखसिमियार ने उनसे छुटकारा पाने की तरकीब सोची। जनरल हुसैन, जिसे दक्षिण में जाने के आदेश दिये गये थे, मराठा सेना की सहायता लेकर मुगलों की राजधानी दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए लौट आया। फर्रुखसिमियार पराजित हुआ तथा फरवरी २८, १७१३ को गद्दी से उतार दिया गया। उसे बन्दी बना लिया गया, अन्धा कर दिया गया तथा ठीक दो मास पश्चात् अप्रैल २८, १७१३ को बहुत बुरी तरह मार दिया गया।

फर्रुखसियार के हटाये जाने से तात्कालिक के बाहर भगड़ा हो गया। मुघल बादशाह का तो अब इतना भी महत्त्व नहीं था कि वह किसी को, कूठ-कूठ ही नहीं, डरा भी सके। यवन दरबारियों की अपनी-अपनी पड़ी की तथा बन्दी मुगल कठपुतली एवं वास्तविक शक्ति के बीच धुड़दौड़ मची थी। सरदार लोग अब ऐसे व्यक्ति की खोज करने लगे जिसके प्रति नाम-मात्र की स्वाभिमानिता दिखा सामान्य दरबारियों को दबा सके। इन मक्का-रियों के बीच दरबारियों ने हरम में जा किसी सामान्य शाहजादे की खोज की जिससे हरम-रमणियाँ जोख उठीं एवं भयभीत बच्चे चिल्ला उठे। शाही हरम की स्त्रियों को भय था कि उनके साथ बलात्कार किया जाएगा एवं उनके बच्चों की हत्या। अतः उन्होंने अपने निवास-स्थान की तालाबन्दी का अपने बच्चों को बाटों के नीचे कर दिया क्योंकि पाँच सौ वर्षों के शाही मन्त्रिण हस्तों ने मुगल सिंहासन को भयानक भूतपुपाश बना डाला था अतः उससे सभी घृणा करते थे।

स्त्रियों के रोने-बिलखने के बावजूद भी उन महिलाओं के कल तोड़ दिये गये। शाहजादा बीदार दिल का नाम पुकारा गया। वह औरंगजेब का पोद्दा, बीदार बस्त का पुत्र था। उसकी माँ ने प्रार्थना की कि उसके बालक को शाही मुगल सिंहासन की घृणा से बचाया जाय। लुटेरे सरदार अस-मजल में पड़ गये। अन्त में किसी ने प्रत्यक्ष रफीउद दाराजात पर भजड़ा मारा और उसे लावारण कपड़ों में ही हड़पे हुए हिन्दू मयूर सिंहासन पर बैठा दिया। तुरही बजा एवं ढोल पीट उसे विश्व का बादशाह घोषित कर दिया गया। १०० वर्षों से अधिक हत्यारी यवन शक्ति के साथ वे रूप से बादशाह के साथ जीभ तोड़ने वाली अनेक उपाधियाँ जोड़ी जाती थी, पर अब वे सभी उपाधियाँ व्यंग्यपूर्ण खोजली एवं अशुभ लगने लगीं। रफीउद दाराजात, रफी उस शाह का पुत्र एवं बहादुरशाह का पोद्दा था।

दाराजात का शासन बहुत कम समय चला किन्तु इसमें अभूतपूर्व घटना हुई जिसका बीज हजारों वर्षों की यवन साम्प्रदायिकता ने एक वीर हिन्दू के अस्तित्व में बोधा।

बीर एवं सुयोग्य हिन्दू जो हिन्दुओं की नवजागृति का प्रतीक था, जोधपुर का शासक अजीतसिंह था। अन्य अनेक हिन्दू शासकों के समान

उसकी कन्या को भी मुस्लिम हरम में ले जाकर अपमानित किया गया। वह फर्रुखसियार के हरम में बन्दिनी थी। अजीतसिंह को यह सोच-सोच कर बड़ा दुःख था कि मुगल हरम पदों के पीछे हिन्दू कुमारियों का सेना-नायकों तथा सामान्य सैनिकों द्वारा अहनिश शीलभंग किया जाता है। वह मूल्यवान् हीरों के आभूषणों तथा सम्पत्ति के साथ अपनी प्रिय पुत्री को हरम से निकाल लाया। इतना ही नहीं, उसने उसका इस्लामी लबादा उतार फेंका, उसके यवन चाकरो को अलग कर दिया, उसे गर्वपूर्वक, पुनर्जन्म धारण करने वाली हिन्दू घोषित किया तथा सुरक्षापूर्वक जोधपुर के पैतृक घर ले आया।

अजीतसिंह ने प्रशंसनीय उदाहरण प्रस्तुत किया। उसने बलपूर्वक धर्म परिवर्तित तथा हरम में डाली गयी स्त्रियों के लिए नई आशा उत्पन्न कर दी कि वे पुनः हिन्दू स्वातंत्र्य-समीर में साँस लें, उन्होंने यह ध्यान नहीं दिया कि वे कितने समय गला घोटू बुकें में हरम में रहें। कहा जाता है कि जिस सम्पत्ति को वे अपनी पुत्री के साथ लाये थे वह एक करोड़ रुपये की थी। इससे पाठक को पता लगेगा कि हिन्दुओं की कन्याएँ ही नहीं, सम्पत्ति भी छीनी गयी। कम से कम एक हिन्दू ने दिखा दिया कि हिन्दुओं को अपनी पुत्रियों, बहिनों, माताओं, पत्नियों के सम्मान को बचाने के लिए कट्टरता छोड़ देनी चाहिए। अपहृत हिन्दू स्त्रियाँ अपने घरों तथा धर्म को पुनः प्राप्त कर सकती हैं। जिसे बलपूर्वक विधर्मी बना दिया गया है उसे क्रूरताओं के समक्ष झुकना नहीं चाहिए। संसार के करोड़ों व्यक्तियों को जो ईसाई अथवा मुसलमान हो गये, इतिहास से यह सीखना चाहिए। अन्याय, नियन्त्रण तथा क्रूरता कभी सहन नहीं किए जाने चाहिए।

सात महीनों की उस छोटी अवधि में जो फर्रुखसियार के गद्दी से उतारे जाने (फरवरी २८, १७१६) तथा मुहम्मदशाह के गद्दी पर बैठने (सितम्बर २४, १७१६) के बीच गुजरे उनमें बिचारे तीन असहाय शाहजादे औपचारिक रूप से सिंहासन पर बिठाए गये और अनौपचारिक रूप से वहाँ से नीचे खींचकर सिंहासन के नीचे वाले कमरे की कोठरी में दान दिये गये, अन्धे कर दिये गये तथा मार दिये गये। वे बादशाह इतने महत्वहीन थे कि अन्धरी इतिहास की किताबों में तो उनके नाम भी नहीं

मिलते।

जब सैयद बन्धुओं ने तीसरे कठपुतली शाहजादे को उतारना चाहा तो राज्य की खोज की। वे कई कठपुतली शाहनशाह का पुत्र, औरंगजेब का पोष, मुहम्मद रोशन खस्तर था। उस समय वह केवल अठारह वर्ष का था। जैसा कि मुसलमान इतिहासकारों की पैर-चाटने की तथा भूठी बापसूती करने की घादत है, खफी खान लिखता है कि नये बादशाह की माँ "एक सम्प्रान्त महिला, राज्य के कार्यों से सुपरिचित एवं अत्यन्त मेधावी तथा चतुर स्त्री थी।"

नये बादशाह की सम्बन्धी-चौड़ी उपाधि थी अबुल मुजफ्फर नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह बादशाह-ए-नाजी महंशाह-ए-हिन्दुस्तान। तीन बीच के शासकों के छोटे-छोटे शासनो पर ध्यान न दे मुस्लिम लेखों में कहा गया है कि मुहम्मदशाह का शासन फर्रुखसियार के गद्दी से उतरते ही प्रारम्भ हो जाता है।

नया बादशाह तो सैयद बन्धुओं का सचमुच ही बन्दी था। सैयद बन्धुओं द्वारा नियुक्त किये गये चुने हुए सैनिक उसे घेरे रहते थे, उसे इधर से उधर ले जाते थे, उसके हर कामों में निगरानी रखते थे। शाही मुगलों की परम्परा के अनुरूप ही मुहम्मदशाह का जीवन भी अत्यन्त भोगमय था। उसका शासन कई कारणों से पाद किया जाता है। वह अन्तिम मुगल शासक था जो हिन्दुओं से हड़पे हुए मयूर सिंहासन पर बैठा क्योंकि उसके ही राज्य काल में फारस के लूटेरे नादिरशाह ने दिल्ली पर चढ़ाई की, हजारों लोगों का बच किया तथा तीन करोड़ रुपये लूटकर, जिनमें प्राचीन हिन्दू होरा कोहनूर तथा सिंहासन भी था, ले गया। वह मयूर सिंहासन जो लहने वाले तथा मक्कारियों करने वाले शाही दरबारियों ने धीरे-धीरे चुरा लिया, अब नहीं है। इसके नाम का ही तत्काल ताउस, जिस पर आज फारस का राजा बैठता है, का नाम आमीनिया की वेश्या ताउस के नाम पर है जिसे एक फारस का राजा प्रेम करता था तथा जिसके साथ कुत्सक करने के लिए बादशाह ने उस शाही कोष के निर्माण की आज्ञा दी। आमीनिया की वेश्या का ताउस नाम वही मयूर धर्म रखता है इससे अनेक इतिहासकारों को यह अभ्यस हो गया है कि चुराया गया हिन्दू मयूर सिंहासन आज भी फारस में है।

मुगल बादशाह द्वारा हड़पे गये सिंहासन का समाप्त हो जाना किसी जमाने के विशाल मुगल साम्राज्य के धीरे-धीरे घटने सम्बन्धी नाटक का चरम बिन्दु है। मुहम्मदशाह के राज्य-काल में पुनर्जागरित हिन्दुत्व ने विकट मराठों के नेतृत्व में बड़ी सफलतापूर्वक गुजरात, मालवा के बरार प्रदेशों को मुसलमानों की पकड़ से छुड़ा लिया। मराठा सेना स्वयं दिल्ली में ही छा गयी। कायर मुहम्मदशाह ने उनकी आज्ञा मानने की सहमति दे दी। यहाँ मराठों ने ऐतिहासिक तथा राजनीतिक भूल की। उन्हें चाहिए था कि वे सरेआम मुहम्मदशाह पर दोष लगाकर तथा उसे अपने और उसके पूर्वजों के अनेक दोषों के लिए फाँसी पर लटकाकर भारत की बड़ी पुरानी दासता समाप्त कर देते। उनसे योग्य तो विदेशी अंग्रेज थे जिन्होंने बाद में बहादुरशाह जफर को सिंहासन से उतारकर देश निकाला दे मुगल शासन को सदा के लिए समाप्त कर दिया।

दक्षिण में भी मराठों ने वही मूर्खताभरी भूल की जो अनेक बार युद्ध स्थल में उस छोटे मुगल निजाम को हराकर भी उसे सिंहासन से च्युत नहीं किया। दक्षिण में मुगल शासक निजाम ने स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। उत्तर में नादिरशाह के हमले का लाभ उठाकर सिक्खों ने पंजाब मलेच्छ शासन से मुक्त कर लिया। ऐसे ही बंगाल के शासक मुर्शिदा कुली खान ने अपने को शासक घोषित किया। इस प्रकार प्रत्येक दिशा में टूटते हुए मुगल साम्राज्य के टुकड़े गिर रहे थे।

मुहम्मद शाह के शासन की दूसरी महत्वपूर्ण घटना भयानक सैयद बन्धुओं का पतन था। मुहम्मद शाह को सिंहासन पर आसीन करने के तुरन्त ही पश्चात् पूर्व तीन शाहजादों के समान उससे भी छुटकारा पाने की सोचने लगे। पुनः वे मुगल हरम में किसी जीव को खोजने लगे। कुछ-कुछ काल पश्चात् जब-जब मक्कार दरबारी किसी शक्तिशाली कठपुतली बादशाह की खोज में हरम में जाते स्त्रियाँ चिल्ला-चिल्लाकर अपने बच्चों को छिपाकर भाग जातीं। वही दृश्य अब दिखाई देता जब सैयदों ने मुहम्मद शाह के किसी प्रतिद्वन्द्वी की तलाश की। स्त्रियाँ चिल्लातीं, मिसकियाँ भरतीं तथा क्रूर एवं हृदयहीन सामन्तों से प्रार्थना करतीं कि वे उन्हें उनके रहम पर छोड़ दें। ऐसा भय छा जाता जैसे कोई बिल्ली कुत्ते-गृह में घुस गयी हो। स्त्रियाँ अपने द्वार बन्द कर लेती थीं सैनिक

तोड़ देते, फिर भी स्त्रियाँ अपने बच्चों को देने से इन्कार कर देतीं।

यह सूचना पाकर कि प्रतिद्वन्द्वी बादशाह की खोज हो रही है, अक्टूबर १७२० में मोहम्मद शाह ने सैयद बन्धुओं में से एक हुसेन खली खाँ की हत्या करा दी। बचा हुआ खन्दुल्ला अब बड़ा निराश हो गया। अनेक शाहजादों के मना करने पर अन्त में रफी उस शाह के तीसरे पुत्र, मुहम्मद इबाहीम को उसने सिंहासन का दावेदार होने के लिए मना लिया।

अक्टूबर १५, १७२० को तेईस वर्षीय मुहम्मद इबाहीम, अबुल फतह जहोरखान मुहम्मद इबाहीम की उपाधि ग्रहण कर मुलतान घोषित किया गया। यह एक शासन के भीतर दूसरा शासन था। नष्ट-शाय: मुगल साम्राज्य ने अब दूसरा दुर्बल सिर उठाया था।

नवम्बर १३-१४, १७२० को प्रबंधक इबाहीम तथा उसके सहायक खन्दुल्ला बन्दी बना लिये गये। दो वर्ष पश्चात् अक्टूबर ११, १७२२ को खन्दुल्ला को विष देकर मार डाला गया। मुहम्मदशाह अपने गिरते मुगल साम्राज्य का यद्यपि असहाय दर्शक था फिर भी उस दो सैयद दातवों को समाप्त करने में सफल हुआ जिन्होंने लगभग एक दशक से मुगल दरबार तथा हरम में आतंक मचा रखा था। मुगल राजनीति के भँवर में फँसे हुए इने-गिने लोग ही थे जो स्वाभाविक मृत्यु से मरे। चाहे बादशाह हो चाहे हिक्मदा, दरबारी हो चाहे केशवा सब हत्याओं तथा पीड़ाओं पर जीवित रहे और इन्हीं द्वारा स्वयं मारे गये।

नादिरशाह का भारत पर १८वीं शती में किया गया आक्रमण मुहम्मद बिन-नादिर के आठवीं शती में किये गये आक्रमण से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं था। स्पष्ट है कि जहाँ शेष विश्व क्रमशः बर्बरता से वैकिंग, वासिग, व्यापार, न्याय तथा वर्तमान प्रशासन की ओर प्रगति कर गया था, अन्ध राजे, सैनिक, सौरदार तथा शहजाद अब भी हत्याओं, बंधों, घातक, कत्ल, बलात्कार एवं लूटपाट में आनन्द लेते थे। १६४७ में देश-विभाजन के समय ही उन्होंने अपने इसी इतिहास की आवृत्ति की।

नादिरशाह जब नादिर कुली खाँ जन्म के समय किसी कुली से अन्ध्रा नहीं था। इसका जन्म १६०७ ई० में बुरासा में हुआ। इसका पिता गढ़-रिया का की काटी हुई बकारिया की ऊन से कोट तथा टोपियाँ बनाता था। युवक नादिर शाह ने इस प्रकार भेद काटने के स्थान पर नरसंहार का

प्रशिक्षण लिया। हत्याओं एवं विलासिता से भरे होने के कारण उसे एक बार कोठरे में डाल दिया गया। १७ वर्ष की किशोर आयु में समाज के लिए उसे भय का कारण समझ उजबेकों ने एक काल कोठरी में डाल दिया। उसने किसी प्रकार पलायन कर जाने के पश्चात् उसने अपने पिता की सभी बकरियाँ बेचकर लुटेरों, गुण्डों का एक गिरोह बना लिया तथा दिन-दहाड़े डाके डालने को अपना पेशा बना लिया।

इसी समय अफगानों ने फारस पर अधिकार कर लिया था। बाद में नादिरशाह ने अपने साथ छह हजार लुटेरे एकत्र कर लिये। नादिरशाह की दुष्टता उसके पूर्वजों की भाँति ही उसकी निजी दुष्टता थी। उसने हीरत को हथिया लिया। नादिरशाह के आदेश से उसका दुर्ग-रक्षक चाचा मार दिया गया।

इस समय तक नादिरशाह गुण्डों के बहुत बड़े गिरोह का सेनापति हो गया था। अफगानों द्वारा सिंहासन-च्युत ईरान के शासक शाह तहमास्य द्वितीय ने नादिरशाह की सहायता माँगी ताकि वह सिंहासन को पुनः प्राप्त कर सके। नादिरशाह ने 'किंग मेकर' का यह कार्य शीघ्र स्वीकार कर लिया क्योंकि स्वयं राजा बनने की दिशा में यह प्रथम पग था। उसने अफगान अशरफ को १७३० में हराया तथा तहमास्य द्वितीय को ईरान के सिंहासन पर आसीन कर दिया। आगामी पाँच वर्षों तक उसने ईरानी राजा की ओर से अनेक लड़ाइयों में भाग लिया तथा उसके साम्राज्य की सीमाएँ प्राचीन काल जैसी फैला दीं। अब ईरान का शासक नादिरशाह की शक्ति से भयभीत होने लगा। अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उसने तुर्कों से सन्धि कर ली। राजा की इस चाल से नाराज हो, नादिरशाह ने उसे गद्दी से उतार दिया (१७३२ में) तथा ईरान के शाह के अल्पवयस्क पुत्र अब्बास को सिंहासन पर बिठा स्वयं उसका रीजेंट बन गया।

युवक अब्बास की हत्या नादिरशाह के आदेशानुसार ही कर दी गयी। नादिरशाह ने अब अपने ही पिछलग्गुओं द्वारा स्वयं को राजा बनाने की योजना पर विचार किया। निदान १७३६ में वह ईरान का राजा घोषित हुआ। स्वयं धर्मान्ध सुन्नी होने के कारण उसने अधिकांश शिया ईरानियों को अपने को सुन्नी घोषित करने के लिए बाध्य किया। नादिरशाह ने शियाओं को सुन्नी बनाने के लिए वे ही आतंक फैलाये जिन्हें अमुसलमानों

को मुसलमान बनाने के लिए अपनाया जाता था।

१७२७ ई० में नादिरशाह ने अफगानिस्तान पर चढ़ाई कर उसे अपने राज्य में मिला लिया। पहले जब अफगानों ने ईरान पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया, वे भी लूटमार, बलात्कार एवं वध में डूब गये। अब नादिरशाह की बारी थी कि वह अफगानों को उन्हीं की बिरुद्ध से उठा दे। उसने इनकी क्रूरताओं का बदला घोर भी अधिक क्रूरताओं से लिया। समार में अब मुसलमानों में घायल में ही क्रूरताएँ तथा बदलों एवं प्रति-बदलों का नाच होने लगा।

अब नादिरशाह की सीमाएँ हिन्दुस्तान के मुगल साम्राज्य का स्पर्धा करने लगीं। उसके सपनों में अब पूर्ववर्ती मुहम्मद बिन कासिम, गजनी एवं गौरी या साकर उसे भारत पर चढ़ाई करने, हिन्दुओं की सम्पत्ति लूटने तथा हिन्दुओं के हत्यारे के रूप में इस्लामी रूपाति प्राप्त करने को प्रेरित करने लगे। इन महान् उपलब्धियों को प्राप्त करने की नादिरशाह ने सोची। हिन्दुओं के हत्यारे के रूप में वह उन तीन लुटेरे मोहम्मदों से निम्नस्थान क्यों स्वीकारे जब उसके पास १,००० वर्षीय जानकारी तथा हिन्दुओं की हत्या कर उनकी सम्पत्ति-वारियों को लूटने का रास्ता मालूम था।

अब वह किसी बहाने की तलाश में था। उसने विलासी मोहम्मद को बड़ा घसम्यतापूर्ण पत्र लिखा जिसमें लिखा कि वह मुगल राज्य में शरण पाये हुए अफगानों को जल्दी ही लौटा दे। इस व्यर्थ के पत्राचार पर मोहम्मद ने चुप रहना उचित समझा। इससे नादिर को अपना गिरोह अफगान सीमा पर घेरे जाने का अवसर मिल गया। १७३६ में बड़ा भयानक युद्ध हुआ जिसमें मुगल सेना परास्त हो गयी। मुगल बादशाह मोहम्मद शाह को बाध किया गया कि वह स्वयं नादिर के डेरे में अपमानपूर्ण विनती करे।

अफगानों ने नादिरशाह ने शाहशाह मुहम्मद शाह को ५८ दिन बन्दी बनाये रखा। इस बीच नादिरशाह के बर्बर इस्लामी गुणों दिल्ली तथा आसपास के गांवों में भेड़ियों तथा दिग्द्वियों की तरह छा गये। दो मास तक दिल्ली की लूट होती रही। इस नरसंहार में दिल्ली की सड़कों-गलियों में २,२५,००० बघ की हुई लाशें पड़ी सड़ती रहीं। इस काले-ग्राम

के समय नादिरशाह हिन्दुओं के मन्दिरों की चोटियों पर चढ़ अपने घसम्य गिरोह को दिल्ली के पुरुषों, स्त्रियों एवं बच्चों के वध करने की आज्ञा देता। इसी कत्ल की बात है कि चांदनी चौक में कोतवाली के समीप एक विशाल मन्दिर का भूभाग काटकर तथाकथित मुनहरी मस्जिद में परिवर्तित कर दिया गया। उन अनेक स्त्रियों में जिन्हें लुटेरों ने अपहृत किया एक मुगल शाहजादी थी जिसकी नादिरशाह ने बलपूर्वक अपने पुत्र से शादी कर दी।

सामान्य गड़रिये से ईरान, अफगानिस्तान तथा भारत के कुछ भाग के विजेता के रूप में अपनी इस उन्नति से नादिरशाह इतना गर्वीला एवं क्रूर हो गया कि उसके अपने संगी-साथी उसे भयानक चीता एवं लकड़-बग्घा समझने लगे। नादिरशाह का आतंक, क्रूरता एवं सन्ताप उसके सगे से सगे व्यक्ति को भी नहीं बरुशता था। नादिरशाह ने १७४३ में अपने ही पुत्र को अन्धा कर दिया। शिया लोग अपने प्राण बचाने लिए इधर-उधर भागते फिरे। फलतः अन्य दुष्ट मुस्लिम शासकों की भाँति नादिरशाह अपने ही भतीजे अली कुली खाँ के हाथों १७४७ में मारा गया। यह चांडाल नादिरशाह मेघशाह में दफन पड़ा है। इसके उत्तराधिकारी अली कुली ने नादिरशाह के तेरह पुत्रों-पौत्रों को क्रूरतापूर्वक मौत के घाट उतार दिया। केवल एक पौत्र जीवित बच सका। उसने आस्ट्रिया में शरण ले वहाँ के शासकों की सेवा कर बैरन वॉ सोमेलीन (Baron von Somelin) नाम से प्राण त्यागे।

भारत त्यागने पर नादिरशाह ने मोहम्मदशाह को निर्धन एवं घायल मुगल साम्राज्य दिया जो अब तक के आतंकपूर्ण राज्य की छाया मात्र था।

दिल्ली पर मराठों का राज्य हो गया, मुहम्मदशाह का शासन मुगल आधिपत्य के वास्तविक अन्त का द्योतक है। ३० वर्ष राज्य करने के पश्चात् मुहम्मदशाह १७४८ में मरा। उसका एक ही पुत्र था—अहमद शाह मुजादुद्दीन अहमदशाहगाजी नाम से २२ वर्ष की उम्र में वह सिंहासन पर बैठा। ६ वर्ष ३ मास ६ दिन तक नाममात्र का बादशाह रहा। उसी के काल में अहमदशाह के भयानक मुसलमानी धावे हुए। हजारों विदेशी मुसलमान—पठान तथा दिल्ली के मुगल, इस्लामी दरबार के चारों ओर धावे हुए थे—वे जो भारतीय भूमि पर मोटे ताजे हुए थे अब भी समर

देश बने हुए थे। उभरती हुई हिन्दू शक्ति से मुगल शक्ति को क्षीण होते देख उन्होंने हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिए नादिरशाह के ही एक पुत्र अहमदशाह ख्वासी को बुताया। नादिरशाह की मृत्यु के पश्चात् अहमदशाह काबुल कंधार का शासक हो गया था।

अहमदशाह ने अनेक बार भारत पर आक्रमण किया। प्रथम प्रवास में बानपुर युद्ध में मार्च ११, १७४८ को बुरी तरह पराजित हुआ। बाद में उसने भारत पर दो बार आक्रमण किया: १७५०-५१ में तथा १७५१-५२ में तथा पुनः १७५७ में। अन्तिम आक्रमण में वह दिल्ली एवं मथुरा पर कब्जा कर लिया उसने अनेक हथारों, बलात्कार, मन्दिरों का विध्वंस, लूट मार कर बलपूर्वक हजारों हिन्दुओं को इस्लाम में परिवर्तित किया। अहमदशाह कस्तुरी बहुत बड़ी मुसीबत था, महामारी था। जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तान में उसने आक्रमण किया, अपने पीछे सन्ताप, विनाश एवं लूटपाट के चिह्न छोड़ गया। हजार साल पुरानी इस्लामी कहानी पुनः प्रावृत्त हुई। प्रथम मुस्लिम लूटेरे के समान ही, अन्तिम भी, १,००० वर्षों के बाद आकर, विश्वास करता था कि इस्लामी स्वर्ग की प्राप्ति का मार्ग गैर-मुस्लिमों की हत्याओं के रक्त की नदियों में से है।

ख्वासी के आक्रमण के समय (१७५०-५२ में) मुगल बादशाह अहमदशाह का मुख्य मंत्री सफदरजंग था। मक्कारी करने वाले इस ईरानी के विनाशपात एवं विनाशिता के कारण उसे जीघ्र ही दरबार से बाहर कर दिया गया। उसे दूर घबघ का शासक बनाकर भेज दिया गया। उस समय बनारस उसके शासन-क्षेत्र में था। क्योंकि मुसलमान समय-समय पर हथारों, मन्दिरों को अपट्ट, लूट एवं धर्म-परिवर्तन करते रहते थे; अतः मराठों ने इस पुनीत नगर को उनसे मुक्त कराना चाहा। सफदरजंग जानता था कि उसकी सेनाएँ मराठों की टक्कर नहीं झेल सकती; अतः उसने बाराणसी की हिन्दू जनसंख्या को निस्तार पर रख लिया और मराठों को कहना लगा कि यदि उन्होंने बाराणसी पर आक्रमण किया तो सभी ब्राह्मणों को एकत्र कर (स्वयं सभी निवासियों को एकत्र कर लेना असंभव था) मार डालेगा। मूलतः बाराणसी के कुछ मध्यमोत्त निवासियों ने मराठों के आदेश की कि वे बाराणसी पर आक्रमण न करें। निरे धोले के सफदरजंग मरिच बाराणसी को अपने हथारों पंजों में जकड़े रहा।

यह दुष्ट सफदरजंग अक्टूबर ५, १७५४ को बड़ी बुरी तरह मरा। वह नयी दिल्ली के इधियाये गये दिशाज हिन्दू महल में दफन पड़ा है, जिसे जनजान दर्शक उसकी कब्र पर निमित्त मकबरा मान लेता है। सबसे प्राश्न्यजनक बात यह है कि यह १७५३ में विद्यमान था और फिर भी मूलतः विश्वास कर लिया जाता है कि यह १७५४ में, इन दैत्य के लिए, मकबरे के रूप में बना। हिन्दुओं की यह लूटी हुई सम्पत्ति दिल्ली में सफदरजंग की सम्पदा थी। मरने पर उसे उसके भीतर दफना दिया गया। विभूजाकार टीले के रूप में उसके गड्ढे को भरने तथा पाटने के लिए पत्थर तक कुछ मील दूर अवस्थित एक हिन्दू महल से चुरा लिया गया, जिसे आजकल अब्दुर रहीम खानखान का मकबरा कहा जाता है।

बादशाह होते हुए भी अहमदशाह की रुचि जराब, स्त्री तथा मद्यपान एवं भोग तक ही परिमोषित थी। उसे विलासिता से इतना लगाव था कि उसने चार वर्ग मील क्षेत्र में अग्रहत सुन्दरियों को रख छोड़ा था, जिसमें स्वयं अहमदशाह के अतिरिक्त (जो कुछ पुंमत्त्व उसमें शेष था) अन्य किसी को भी प्रवेश की आज्ञा नहीं थी और जहाँ वह सांड की भाँति घूमता था। यहीनों तक बिना बाह्य संसार को देखे वह जनाने बुर्के में खोया रहता।

दरबार के भगड़ों तथा दलबन्दियों ने मुख्यमन्त्री सफदरजंग को बाहर कर दिया। स्वयं महल में अहमदशाह की माँ, ऊधमवाई नामक हिन्दू अग्रहत महिला तथा उसके दूसरे पार जबीद खाँ उत अड्डे पर शासन करते थे। एक महन्वाकांक्षी दरबारी इमादुल मुल्क ने सत्ता पाने की ललक में अहमदशाह को सिंहासन से अलग कर दिया तथा १७५४ में जहाँदारशाह के पुत्र आलमगीर द्वितीय को गद्दी पर बिठा दिया। नये बादशाह के पादेशानुसार अहमदशाह को अन्धा कर दिया गया। अन्धे अहमदशाह ने बड़ी कष्टपूर्ण अवस्था में एक गिलास जल के लिए पुकारा। बड़े व्यंग्यपूर्ण प्रसम्मान के साथ उसके काराध्यक्ष सैफुल्ला ने एक गन्दी घातु का बर्तन उठाया तथा उसमें गंदला पानी भरकर उस असहाय भूतपूर्व बादशाह को दे दिया। आलमगीर द्वितीय अपने पूर्वज से किसी भी दशा में न्यून कठपुतली नहीं था। वास्तविक शक्ति तो उसके मुख्यमन्त्री गाजीउद्दीन में थी, जो स्वयं मराठों की कठपुतली था। जिनका दिल्ली पर पूर्ण नियन्त्रण था।

१७५७ में अहमदशाह ने चौथी बार भारत पर आक्रमण किया। वह

दिल्ली और मथुरा तक घुस आया और अधिक सम्पत्ति ले गया। पंजाब को संतान कर लिया गया तथा नजीब खाँ रोहिला को इसका शासक बना दिया गया। मराठों ने पंजाब में खन्दाली की सेना पर प्रति-आक्रमण किया और उसके पुत्र को रिरिवाली खन्दा में मिन्यु के पार उसके पिता के पास भेज दिया। इससे १७५६ में खन्दाली ने फिर भारत पर आक्रमण किया। इस वजहों से मुगल सिंहासन को मराठे, खन्दाली तथा अन्य सामन्त लूट रहे थे तभी १७५६ में ही स्वयं आलमगीर द्वितीय को मार डाला गया। इस हत्या की योजना उसके मुख्यमंत्री गाजीउद्दीन ने ही स्वयं बनायी थी।

आलमगीर का पुत्र, मुहीउलमुल्त का पुत्र, मुहीउल मिल्तत शाहजहाँ द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठा पर उसे किसी ने मान्यता नहीं दी। जब-जब अहमदशाह खन्दाली ने भारत पर आक्रमण किया तभी किंग मेकर किंग गाजीउद्दीन तथा उसका भाई नजीब भाप की तरह उड़ गये। नवम्बर २३, १७६० को मदानिव राउ भाऊ सेनापति के अधीन मराठों ने दिल्ली को घेर लिया और बाद में इसपर तूफान की तरह टूट पड़े। दिसम्बर ६, १७६० को उन्होंने शाहजहाँ को गद्दी से उतार दिया तथा आलमगीर द्वितीय के पुत्र, मिर्जाजवाकिर को बादशाह घोषित किया तथा एक नए आलमगीर द्वितीय का पुत्र फलीखीहर, हत्यारे की तलवार के गिराव डग जाने के भय से दिल्ली के लाल किले से निकल सुदूर बंगाल की ओर भाग गया। वहाँ उसने छप्रेजों की जरूरत ली। यही वह प्रारम्भ था, जहाँ नजीब मुगल ने रक्षा के छप्रेजों के यही जरूरत ली। वहाँ उसने शाहजहाँ द्वितीय की उपाधि ग्रहण कर ली और यद्यपि १७६१ से १७७२ तक दिल्ली दिल्ली दुर्ग नियन्त्रित थी, उसने अपने को बादशाह घोषित कर दिया।

अब की नवाबी अफगानों के पुत्र गुजाउद्दीन को मिली। वह तथा मराठों के, उन समय भारत में सबसे अधिक शक्तिशाली थे, मुगलों के नाम-काश के बादशाह को अपने विजयक में करना चाहते थे। निस्सहय बादशाह ने स्पष्ट कर दिया था कि उसे दिल्ली के लालकिले के मुगल सिंहासन पर आ कोई दिठा देना वह उसी की चापसूजी करने लगेगा, पर आलमगीर बादशाह इस बात के छप्रेज सेनापति मिमय का बंदी था। उन्होंने के अधिकानुसार १७६४ ई. में छप्रेजों का छप्रेज वार्षिक पेंशन के

बदले उसने बंगाल-बिहार तथा उड़ीसा की माल गुजारी बसूल करने के अधिकार दे दिये। इस प्रकार मुगल बादशाह शासक न रहकर मात्र एक पेंशन पाने वाला रह गया।

इसी बीच जनवरी ६, १७७२ को मराठों ने सफलतापूर्वक दिल्ली लाकर उसे अहंशाह बना दिया। नजीब खाँ रोहिला, जो बड़ा भयानक विदेशी मुस्लिम सेनापति तथा देशभक्त मराठों का शत्रु था, मर चुका था। उसका पुत्र नजीब खाँ नये मुसलमान बादशाह का मुसलमान मुख्यमंत्री बना। मंत्री के पुत्र गुलाम कादिर ने उस नाममात्र के पेंशन पाने वाले बाद-शाह शाहआलम द्वितीय को वह ही मजा चखाया, जिसका व्यवहार उसके अनेक पूर्वज हिन्दुस्तान के हिन्दुओं के साथ करते रहे थे।

गुलामकादिर भयानक डाकू बन गया। उसने हिन्दुओं से लूटी हुई मुगल महलों में रखी हुई सम्पत्ति को लूटना प्रारम्भ किया। उसकी अधिक-से-अधिक सम्पत्ति एकत्र करने की आकांक्षा कभी संतुष्ट होने वाली न थी। रात-दिन वह दूरस्थ शाही महलों को लूटता और वहाँ से सभी मूल्यवान् वस्तुएँ ले आता। इतना ही नहीं, वह मुगलों की स्त्रियों तथा बच्चों के मूल्यवान् वस्त्रों को उतारकर कोड़े भी लगाता ताकि वह छिपी हुई सम्पत्ति का भी भेद बता दें।

१७८८ में शाहआलम की स्त्रियों और बच्चों को बाहर निकालकर निंद्यतापूर्वक लतियाया तथा पीटा गया और शाहआलम को बड़ी बर्बरता के साथ अंधा कर दिया गया। गुलामकादिर द्वारा की गयी ये भयानक क्रूरताएँ फकीर खैकूद्दीन मुहम्मद ने अपने इतिहास में विस्तारपूर्वक लिखी हैं। शाही हरम की स्त्रियों का बुरी तरह शील भंग किया गया। इस भयानक नाटक का चरम बिन्दु तब आया जब एक चित्रकार को बहुत ही शीघ्र बुलवाकर स्थल पर ही चित्र बनाने को कहा गया। जब गुलाम कादिर हाथ में कटार लिये हुए बादशाह शाहआलम की छाती पर बैठा था तथा पके हुए तरबूज के टुकड़ों की तरह उसकी ओर खिंचे निकल रहा था, "आँखों से रक्त गिरते हुए अन्धे बादशाह की जो कुछ पीने के लिए पानी मिला वह मात्र बहो था, जो उसकी आँखों से गिरा।" (पृष्ठ २४६, खण्ड VIII, इतिवट एण्ड डाउसन)।

मुगल भवन में गुलामकादिर के भय तथा विलासिता के जीवन के

विषय में इतिहासकार कहता है, "वेदरवस्त की एक महिला वहाँ जो कुछ हो रहा था उसे देखकर ही भय के मारे मर गयी तथा महिलाओं का जीत-हरण करने वाले अकबराद सब उन्हें मरे जाने की सोच रहे थे।" दिया करने तथा माँही महिलाओं को सम्मिलित न करने के लिए प्रार्थना किये जाने पर गुलामकादिर ने उत्तर दिया कि बादशाह के नौकरों ने उसके पिता के कब्रों को लूटा है तथा उसकी स्त्री के साथ इसमें भी अधिक दुर्व्यवहार किया है अब यह दर्शनोप दृश्य होगा क्योंकि मेरे लोग राजा की कन्याओं को पकड़कर घर से बाहर ले तथा बिना माँही के उनके शरीरों पर अधिकार कर लेंगे। एक हज़ार वर्षों के अनवरत बलात्कारों तथा लूट-पाटों का यह उचित ही परिणाम था जो गुलामकादिर ने जाहंगीर के मुँह पर ही कहा।

माँही सुनकर बराने के बहुत-से लड़के-लड़कियाँ गुलामकादिर की इस दुर्लभ-भरी प्रकल्पान्ति में भ्रम, भय तथा धक्के के कारण मर गये। जहाँ थे उन्हें वहाँ दफना दिया गया। इससे एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि भारत में तथाकथित मध्यकालीन मुस्लिम अकबरे हिन्दू भवन ही हैं।

इस गुलामकादिर नामक मुस्लिम वैश्य को भी उचित फल मिल गया जब बीर मराठों द्वारा कीचड़ तथा इनदल में प्राची रात को कुत्ते के समान पीछाकर मुगल हथियारों को दे दिया गया। मुगलों ने उसकी टांग को लखौर में बाँध दिया और बेल के जूए के समान उसकी गर्दन पर एक हथौड़ी रख दी। सर्वप्रथम उसके कान काटे गये और उसकी गर्दन के चारों ओर मटका दिए गये, उसके चेहरे को काला कर दिया गया तथा नगर और सैनिक शिबिरों में चारों ओर घूमाया गया। दूसरे दिन उसकी नाक और ऊपरों काट कर के छोड़ फिर घूमाया गया। तीसरे दिन उसकी बाँझ निकाल दी गयी तथा जनता को उसकी भयानक जकल फिर दिखायी गयी। इसके पश्चात् पहले उसके हाथ काटे गये फिर उसके पैर और सबसे अन्त में उसका शिर। गर्दन को नीचे की ओर करके उसकी लाश एक सूत के मटका दी गयी। एक काला कुत्ता, जिसकी पीछों के चारों ओर सफेद निशान थे, लाया तथा रक्त चाटता रहा। तीसरे दिन वह लाश और कुत्ता दोनों ही गायब थे।

मुगल बादशाह माँही कानोशीकाव की लिये हुए जनता के मंच से हट-

कर बन्दी तथा पेंशन याफता के रूप में इतिहास के भीतरी कक्ष में चले गये और इस प्रकार हिन्दुस्तान में सहस्रवर्षीय भयप्रद मुस्लिम शासन समाप्त हुआ। अन्तिम दृश्य में वह बादशाह जो अपने प्रातंक से दूसरों को डराता था, सोने और रेशम के वस्त्रों में सुसज्जित होकर बैठता था, अब एक निस्सहाय फटे-पुराने कपड़े पहने हुए भिखारी बन गया जो पानी तथा रोटी की भीख माँगता था और प्रार्थना करता था कि उसकी स्त्रियाँ और बच्चे बलात्कार तथा अप्राकृतिक कृत्यों के शिकार न बनावे जाएँ।

शाह ग़ालम २६ वर्ष की अवस्था में १८०६ में बड़ी बुरी तरह मरा। उसका पुत्र अकबर अंग्रेजों से एक लाख रुपये वार्षिक पाकर दिल्ली में पेंशन याफता बादशाह की हैसियत से रहता था। अकबर १८३७ में मर गया। उसका पुत्र मुहम्मद बहादुर शाह पेंशन का अधिकारी हुआ। यह वही बहादुरशाह है जिसपर बाद में मुकद्मा चला तथा १८५८ में देश से निकाल दिया गया और इस प्रकार मुस्लिम कुशासन के अत्यन्त घृणित हजार साल समाप्त हुए जिस बीच हिन्दुस्तान में रात-दिन जंगली आतकों, कष्टों तथा यन्त्रणाओं का नग्न नृत्य रहा।

कूद अपने प्राण देती रही।

इस लम्बे नाटक की यातनाओं का अन्त भी एक प्रकार के व्यंग्यपूर्ण व्यास के साथ हुआ। बहादुरशाह जफर अर्थात् वीर विजेता, नाम-मात्र के शासदीय नामक का अन्त भगाये गये कायर के रूप में हुआ; दीन-हीन बन्दी की भाँति कटघरे में खड़ा बहादुरशाह माना मुहम्मद बिन-कासिम, तथा उससे पूर्व तक के अपने पूर्वजों का प्रतीक था, जिन्होंने इंसानियत के नाम पर बहुत बड़ा दाम नमाया था; उसके मुकद्दमे का स्थल, दिल्ली के लाल किले का दीवान-ए-आम वस्तुतः सबसे उचित स्थल था क्योंकि भगवाँ रंग के हिन्दू दुर्ग का जालसाजी से शाहजहाँ द्वारा निर्मित बताया गये इसी पवित्र शाही छज्जे से अनेक विदेशी शासकों ने क्रूर कर्म किये थे, बहादुरशाह का मुकद्दमा उसके पूर्वजों द्वारा किये गये कुकर्मों एवं कुशासन के प्रति दोषारोपण था, अन्त में उसका बाह्यकरण बहु-प्रतीक्षित बाह्यकरण का प्रतीक था; प्रथम मुगल ने भारत में पश्चिमोत्तर से प्रवेश किया, अन्तिम को दक्षिण पूर्व से बाहर कर दिया गया तथा अन्त में उसकी स्मृति ठीक ही इतनी पोंछ दी गयी कि यह भी नहीं ज्ञात कि वह कहाँ दफनाया गया था। रंगून में उसकी तथाकथित कब्र बनावटी है जैसा कि हम बाद में बताएँगे। कैसी विडम्बना है कि बहादुरशाह कवि भी था, जिसने मुगलों के विनाश के अन्तिम गीत गाये।

इससे बहुत पूर्व कि बहादुरशाह मुगल शासक बना, भूतपूर्व क्रूर एवं दहाड़ता हुआ मुगल बादशाह चूहे की भाँति चिचियाता हुआ पेंशन प्राप्त-कर्ता रह गया था जिसने पहले तो मराठों से जीवनयापन-वृत्ति पायी, पुनः अंग्रेजों से।

मिर्जा अबुल जफर अकबर द्वितीय के अनेक जाने-अनजाने बच्चों में सबसे बड़ा था। ('टुवाइलाइट साव द मुगल्स', केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, १९५१ नामक कृति में) पर्सिवल स्पीयर का कथन है: "ठीक मुगल परम्परानुसार अबुल जफर अपने पिता का चयन नहीं था। जहाँगीर (तृतीय पुत्र) के पक्ष में अकबर द्वितीय ने उसे दूर रखना चाहा था तथा उसपर अप्राकृतिक अपराध (यानी अप्राकृतिक मैथुन) का दोष लगाया था। स्वयं जहाँगीर ने उसे कम-से-कम दो बार विष देने का यत्न किया था।" स्पष्ट है कि मुगलों ने कितने परिश्रम के साथ अप्राकृतिक मैथुन

बहादुरशाह

अन्तिम मुगल-शासक बहादुरशाह जफर के सिंहासन-व्युत्तर करने एवं निर्वासन के साथ ही औपचार्य से १८५८ में हिन्दुस्तान का सहस्र-वर्षीय शासन का क्रान्तिकाल हुआ। मुहम्मद-बिन-कासिम से प्रारम्भ हुए महा-रोग में मुक्ति मिली।

७१० ईस्वी में प्रारम्भ होकर अरब, ईरान, इराक, सीरिया, तुर्की, अफगानिस्तान तथा अरबी-सीरिया से एक के पश्चात् एक इस्लाम के नाम पर राज्यदार किया, मन्दिरों को मस्जिदों तथा मकबरों में परिवर्तित कर डाला तथा माना पाद पर तमक छिड़कने के लिए उन सबके निर्माण का श्रेय स्वयं को दिया। विदेशी संस्कृति (१) प्रदर्शित करते हुए वे तमूचे विश्व में और-मुस्लिमों का अपहरण, परिवर्तन, दास-रूप में बिक्रय, आगजनों, लूट तथा दुर्बल प्रदास करने समय कुरान की कसम खा अरब के टिड्डी-दल की भाँति छा गये।

बहादुरशाह उन सर्वथा अनेतिक, असंस्कृत गैवारों तथा अणिजित बर्बरी की अन्तर्गत शासक का अन्तिम प्रतीक एवं अवशेष था जिनका शासन सामूहिक लूटपाट, बर्ष-परिवर्तन, आगजनों तथा लूट की व्यापारों कहानी है।

अन्तिम रूप में वे अत्यन्त ही अनेतिकतापूर्ण, दुराचारी, मद्यप, अप्राकृतिक मैथुनकर्ता, अपहरणकर्ता तथा अपने ही पिताओं, पुत्रों, भाइयों, भावियों, भतीजों, उनके पुत्रों, भावियों तथा सासों को अत्याचर करने वाले, लूट कर देने वाले तथा अतीव पीड़ा देने वाले थे। उनकी पीड़ाओं, अत्याचारों, अपमानों तथा लूटपाटों से प्राण पाने के लिए इन हजारों लाखों तक अपने पुत्रों की पीड़ा में लिये हिन्दू सारिया पहनिष्ठ अग्नि में

तथा भाइयों को बिय देने की अपनी पंतुक परम्पराओं को कायम रखा था।

बहादुरशाह की बुद्धिमत्ता उसके पाठवीं जन्म के पूर्वज से किसी प्रकार अच्छी न थी। सर सैयद अहमद खाँ ने लिखा है कि बहादुरशाह का 'निश्चित बिचार था कि वही ही अच्छा होता कि वह अपने को मक्की या मच्छर के रूप में परिवर्तित कर लेता तथा इस देश में अन्य देशों में जा देख-पला कि वहाँ क्या हो रहा है?' यह इस तथ्य का निदर्शक करता है कि १,१०० वर्षों के शाही पोंपण के पश्चात् भी विदेशी शासक, जो दिल्ली के सिद्दासन पर बैठे हुए थे, वैसे ही गँवार तथा भक्की या जैसा कि ७ वीं शताब्दी के जनों का उसका पूर्वज।

बहादुरशाह स्वयं तो मक्की या मच्छर नहीं बन पाया, हाँ अंग्रेजों ने शासकशाही मुगल की छाया में उसे मक्की बनाकर देश से बहुत दूर रंगून भेज दिया।

भारत की शाही परम्परा में ही नहीं संसार में शायद सर्वत्र समय को ठहरा देने की परम्परा रही है। जिस प्रकार ११०० वर्षों में यवन शासकों में तनिक भी अन्तर नहीं आया तदवत् उनकी चिकनी-चुपड़ी चाटुकारिता भी अपरिवर्तित रही। यवन इतिवृत्तकार शाही दरबारों में छाये हुए थे जिनका कार्य शासक की नास्तनिक उपलब्धियों तथा अनस्तित्वपूर्ण विरोधनाओं की बढ़ा-बढ़ाकर निरूपण देना था।

होकर इसी परम्परा में, लन्दन और पेरिस में डाक्टरेट किये हुए एक यवन विद्वान् ने बहादुरशाह को "बहुत बड़ा विद्वान्, आश्चर्यजनक सुन्दर हुस्न लेख वाला तथा मेषादी कवि", मन्त्र तथा देशभक्त बताया है। मरहटी दुर्जन के इस कथन को कि बहादुरशाह "महान् देशभक्त तथा बहादुर ही नहीं भारत के स्वातन्त्र्य के लिए जहीद भी था।" विवादास्पद बनाते हुए डा० धार/ सी० मजूमदार लिखते हैं "यदि हम अंग्रेजी शब्दों की मदद से बहादुरशाह तनिक भी बहादुर देशभक्त तथा जहीद नहीं था। उसके लिए तो एक ही विशेषण उपयुक्त है 'गद्दार'। मलिका जीनत महल तथा दरबार जैसा कि जिन्होंने डा० हूगिन के शब्दों में 'बहादुरशाह के कार्य की ही छाने बढ़ावा।' इसी विशेषण के अधिकारी है।"

१८३७ ई० में, ६२ वर्ष की बलहीन आयु में, राजाओं का राजा, मुगल बादशाह, संसार का शासक और न जाने कौन-कौन-सी उपाधियाँ लेकर बहादुरशाह खोखले तथा पेंशन युक्त सिद्दासन पर बैठा। उसके अनेक दोषों के कारण (जिनमें अप्राकृतिक मधुन भी था) उसके पिता ने उसे उत्तराधिकार से वंचित कर रखा था, पर अंग्रेजों की कृपा से उसने यह उपाधि प्राप्त की। अकबर द्वितीय का तृतीय पुत्र मिर्जा जहाँगीर, जो इसका प्रतिद्वन्दी तथा पिता का लाड़ला था, असफल रहा।

अब 'शक्तिशाली' मुगल का 'राज्य' दिल्ली के लालकिले की दीवारों तक ही सीमित था, फिर भी अबू जफर की उपाधियाँ थीं—शहंशाह अबू जफर सिराजुद्दीन बहादुरशाह, हजरत जिल्ले सुब्बानी (परमात्मा की छाया), खलीफातुर रहमानी (ईश्वर का खलीफा), साहिबे किरानी (समय का मालिक) इत्यादि।

१२,००,००० रुपये की अच्छी खासी वार्षिक पेंशन के साथ उसके पास हरम था जहाँ वह मद्यपान करता रहता था। फलतः उसका जीवन काहिली, बुराईयों, भोग-विलासों, हुक्का पीने तथा दुःखमरी उर्दू गजलों लिखने से भर गया।

उसकी अनेक बेगमों में उस दुर्बल, झुके हुए शरीर वाले बादशाह से अनेक वर्ष छोटी, जीनत महल भी थी। जहाँगीर की नूरजहाँ के समान उसे भी गलती से बादशाह की चहेती मान लिया गया है। अतीव कर्कशा, भगड़ालू एवं विकट औरत होने के नाते जहाँगीर की नूरजहाँ के समान वह बातों में तो बादशाह तथा उसके प्रभावशाली दरबारियों को हरा देती। अपने इन्हीं गुणों के कारण जीनत महल तथा नूरजहाँ ने अपने शहंशाह पतियों पर अधिकार जमा लिया था। हरम में तो ये दोनों स्त्रियाँ अन्य की ही भाँति थीं, पर जहाँ अन्य इतनी बानूनी, दृढ़ एवं आक्रामक न होने के कारण खामोशी के साथ बुरका तथा पर्दा के फिराक में तिल-तिल घुट-घुटकर समाप्त हो गयीं; इन दोनों ने अपने शाही पतियों को अधिकार में ले लिया। अतः भारत से मुगल तथा मुगलिया शासन की, बहादुरशाह की समाप्ति होने के साथ-साथ अकेली जीनत महल का नाम ही नायिका के रूप में आता है। अन्य स्त्रियों की भी कमी नहीं थी पर उनमें इतनी बातें नहीं थीं।

पुरानी दिल्ली की चक्करदार गलियों के मुहल्ले लाल कुर्मा में जीनत महल का एक मकान था। यह मकान आज भी देखा जा सकता है। बहादुरशाह इस मकान में बहुधा ठहरा करता था। मार्च-अप्रैल, १८४६ में तो वह वहाँ १२ दिन ठहरा। इस दुर्बल 'राज्यहीन शासक' के लिए २०,००० रुपये खर्च कर भोग-विलास की सभी वस्तुएँ एकत्र कर रखी थीं। तत्कालीन बादशाह के मनोरंजन का स्तर था और कहा जाता था कि जो कोई बादशाह मनोरंजन करने की आशा करे, प्रतिदिन १५०० रुपये व्यय करे। बादशाह ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मात्र रक्षित व्यक्ति था यद्यः एक सामान्य से भंगी ने घाने में जाकर रिपोर्ट की कि १२ दिन एक व्यक्तिगत घर में पड़े रहने के कारण बहादुरशाह अत्यन्त सामान्य व्यक्ति की भाँति व्यवहार कर रहा था।

उसी वर्ष बहादुरशाह का सबसे बड़ा पुत्र दारा बख्त मर गया। बरिष्ठता की दृष्टि से दूसरा फखरुद्दीन था। इसने मान लिया था कि पेंशन के बदले वह गद्दी के सभी दावे त्याग देगा।

जाहिर बहादुरशाह के शान्तिप्रिय एकरस जीवन में, अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय सेना द्वारा विद्रोह करने के कारण एकाएक ही तूफान आ गया। लोगों ने कुछ समय पूर्व ही तो कठिनता से यवन शासन से छुटकारा पाया था; अब हिन्दुस्तान की घोर बढ़ते हुए जुए को देख सेना ने १८५५ में विद्रोह का विगुल बजा दिया जिससे बहादुरशाह का विलासी जीवन नष्ट हो गया।

इस समय बहादुरशाह ८२ वर्ष का था; यह ऐसी अवस्था है जब व्यक्ति में शान्ति के साथ मरने के प्रतिरिक्त अन्य कोई आकांक्षा शेष नहीं रह जाती। पर उसकी हसीन जवान बेगम जीनत महल में अब भी कुछ आकांक्षा शेष थी। अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह ने तथा उसके पति की 'राजाघोष का राजा एवं विश्वशासक' उपाधि ने उसमें नयी आशाएँ भर दीं। उसने बादशाह जहांगीर की बेगम नूरजहाँ की भाँति वास्तविक महारानी बनने तथा बादशाह के नाम पर अपनी महान् शक्ति प्रयुक्त करने की सोची। पर वह एक इन्द्र में फँसी थी—यदि सेना जीतती है तब तो वह निश्चय ही पूर्ण महारानी बन जायगी, पर यदि अंग्रेजों की विजय होती है और शात हो जाता है कि यह भी विद्रोही सेना के साथ थी तो

या तो उसे फाँसी पर चढ़ा दिया जाएगा या जीवन भर के लिए सामान्य बन्दी बना दिया जायगा। इन दो सम्भावनाओं के बीच झूलते हुए उसे कभी अंग्रेजों की तो कभी विद्रोही सेना की सफलता की सूचना मिलती, उसने दोनों नावों पर पैर रखे रहना उचित समझा। उसने अपने कापते पति को विद्रोहियों का साथ देने के लिए प्रेरित किया, दूसरी ओर परोक्षतः अंग्रेजों से भी बहुत मधुर सम्बन्ध रख विद्रोहियों की उन्हें सूचना देती रही। जीनतमहल ने इस प्रकार चौर और साह दोनों का साथ दिया। दोनों नावों पर खड़े होकर महत्वाकांक्षिणी शरारती जीनत महल ने किसी भी घटना के घटने पर अपने लिए उच्चस्थान बनाने का प्रबन्ध कर लिया। पर जैसा कि दो नावों पर पाँव रखने वाला सदैव गिरता ही है, उसका घोर पतन हुआ और प्रवासी जीवन व्यतीत करते मर गयी।

विद्रोह के समय लगा कि खोखली उपाधियों के चिपके होने के कारण पेंशनयाफता मुगल फिर शक्ति प्राप्त कर लेगा। ऐसी दशा में यह निश्चित था कि वह फिर उन्हीं दुष्टताभरे मार्गों पर यवन शासन प्रारम्भ कर देगा। यह बाद में उस पर मुकद्दमा चलते समय 'आजमगढ़ घोषणा' से स्पष्ट है। घोषणा में था "मैं, अब मुजफ्फर सिराजुद्दीन बहादुरशाह गाजी यहाँ आया हूँ और मैंने मोहम्मद का ध्वज गाड़ दिया है।" सर एच० एम० इलियट एवं अन्य अंग्रेज विद्वानों की खोजों को डा० महदी हुसैन उद्धृत करते हुए लिखते हैं, "भारतीय इतिहास के हिन्दू काल के पश्चात् का युग स्थायी उत्पीड़न एवं धर्मान्धता का रहा है। (पृष्ठ १७, बहादुरशाह द्वितीय तथा दिल्ली के अविस्मरणीय दृश्यों के साथ १८५७ का युद्ध) बहादुरशाह अपने अन्य पूर्वजों की भाँति उसके पिता द्वारा प्रलोभित की गयी लालबाई हिन्दू महिला का पुत्र था तथा उसकी दादी भी ऐसे ही जाल में फँसायी गयी हिन्दू स्त्री थी। परन्तु फिर भी बहादुरशाह सदा "मुहम्मद का ध्वज" की बात करता था अर्थात् उसके स्वप्नों के अनुसार भारत अब भी दूज के चाँद वाले हरे झण्डे के नीचे होना था।"

इस सम्बन्ध में हम यवन इतिहासों का एक और धोखा बताएँ— तीसरी पीढ़ी के मुगल बादशाह अकबर की भाँति अनेक दूसरे यवन शासकों को झूठ ही श्रेय दिया जाता रहा है कि उन्होंने गोहत्या बन्द करा दी थी।

यह आदेश, यदि कभी दिये गये थे तो जनता को मूर्ख बनाने के लिए धोखे थे—यह तथ्य डा० महदी हुसैन की पुस्तक (पृष्ठ ३८) से स्पष्ट है। उसके अनुसार जब बहादुरशाह ने अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय सेना का नेतृत्व स्वीकारा "उसने शीघ्र ही गोवध बन्द करने की स्वीकृति तथा आदेश दे दिये। अनन्तर २८ जुलाई को गोवध बन्दी की बात प्रमाणित कर दी गयी—तथा २ अगस्त को बकरीद के दिन गोवध तीसरी बार फिर बन्द किया गया। यह कहना अनुचित न होगा कि युद्ध काल में बहादुरशाह ने गोवध बन्द करना हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए एक अनिवार्य कदम सम्भाला।"

अन्तिम वाक्य से स्पष्ट है कि यह प्रतिबन्ध, यदि कभी था तो, हिन्दुओं को केवल सान्त्वना देने के लिए था ताकि वे अंग्रेजों को पराजित करने में सहायता दे सकें और यह अनिवार्य था कि म्लेच्छ शासन के फिर प्रारम्भ हो जाने से गोवध पुनः जारी कर दिया जाता।

ये शब्द कि सम्राट् "दिल्ली में गोवध बन्दी के लिए एकदम सहमत हो गया।" स्पष्टतया घोषित करते हैं कि यवन शासन काल में समूचे देश में गोवध जारी था और यदि बहादुरशाह इसी बात पर सहमत हुआ तो वह केवल दिल्ली में प्रतिबन्ध के लिए सहमत हुआ था और वह भी तब तक जब तक कि अंग्रेज बाहर नहीं खदेड़ दिये जाते। स्पष्ट है कि भारत में यवन शासन काल में हमेशा गोवध होता रहा था, यवन इतिहासों के यह झूठे दावे कि बहादुरशाह के पूर्व अनेक मुस्लिम राजाओं ने गोवध पर प्रतिबन्ध लगा दिया था, बहुत किये गये हैं।

यह बात सामान्य पाठक की पकड़ में नहीं आती। डा० महदी हुसैन के कथनानुसार मई और जुलाई, १८५७ के बीच गोवध एक नहीं, तीन बार बन्द किया गया था। इसका मतलब तो यह है कि बहादुरशाह के आदेश केवल माही फाइलों को सजाने तथा हिन्दुओं को मूर्ख बनाने के लिए थे। व्यवहार में उन्हें कभी नहीं लाया गया। यह कोई असामान्य बात नहीं थी। ऐसे बीसवें आदेश 'महान्' कहे जाने वाले अकबर द्वारा भी आवश्यकता पड़ने पर दे दिए जाते थे। और ये सब हिन्दुओं को मूर्ख बनाने के लिए थे कि उसने जजिया कर समाप्त कर दिया और गोवध पर प्रतिबन्ध लगा दिया। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि उससे मुरजनासिह, बीरबिजय

एवं शान्त बिजय ने भिन्न-भिन्न कालों में मिलकर बड़े दुःखपूर्ण शब्दों में जजिया से छुटकारे के लिए विशेष प्रार्थना की थी और जब अकबर की सेनाओं ने नगरकोट पर आक्रमण किया उन्होंने दो सौ गायें काट डालीं तथा जूतों में भरकर उनके रक्त को मन्दिर की दीवारों पर छिड़का। जब डा० महदी हुसैन कहते हैं (पृष्ठ ४०) कि "हिन्दुओं ने भी झुण्ड बनाकर तनिक से लाभ के लिए एक मुस्लिम मकबरे पर हमला किया" तो हम भी उन्हें इस मूर्खता का दोषी ठहराते हैं। किन्तु इसी समय हम यह भी कहना चाहेंगे कि ऐसे मकबरों पर हिन्दुओं के आक्रमणों का एक अन्य ही ऐतिहासिक कारण था। यह इसलिए था कि मध्यकाल के सभी मकबरे अब तक के हिन्दू मन्दिरों ही पर बनाये गये हैं। इस स्थान की अतीत की पावनता का स्मरण कर हिन्दू वहाँ जमा होते रहे यद्यपि उनकी मूर्ति को बहुत पहले ही हटा दिया गया।

खूब पेंशन प्राप्त करने पर भी बहादुरशाह ने अपने मुगल पूर्वजों की भाँति साहूकारों को उसे ऋण देने के लिए बाध्य कर दिया जबकि अपनी आय को मद्यपान तथा अन्य बदमाशियों में व्यय कर देता था। इसे डा० महदी हुसैन भी स्वीकार करते हैं। (पृष्ठ ४७), "उदाहरण मौजूद हैं कि हिन्दू महाजनों से ऋण लेने के लिए बाध्य हो गया ताकि अपने नौकरों को तनखाहें दे सके, इच्छुक यात्रियों (मक्का जाने के इच्छुक मुसलमानों को), अधिकारी कवियों (यानि उर्दू, फारसी और अरबी के शायरों), जरूरत मन्द लोगों (यानी मुस्लिम फकीरों) तथा अपने दरबारियों को भेंटें देने का सामाजिक कृत्य कर सके।"

एक ऐसे ही हिन्दू महाजनों के वंशज का कथन है कि जबकि दिए हुए ऋण पर व्याज लेने के लिए कुरान मुसलमानों को रोकता है, मुस्लिम बादशाह कुरान के इस फैसले को उलट देता तथा हिन्दू महाजनों को तनिक भी व्याज लेने से मना कर देता। इससे बादशाह इतना अनुत्तरदायित्वहीन हो गया कि वह हिन्दू व्यापारियों से कितना ही विशाल धन ले लेता था, ऐसी दशा में कोई गारण्टी नहीं थी कि कभी मूलधन भी लौट सकेगा।

हिन्दू महाजनों को इसके बदले में जो कुछ प्राप्त होता वह था कुछ मोखली फारसी की उपाधियाँ तथा चांदनी चौक में हाथी पर चढ़ने का अधिकार।

इस कृष्ण में लिखे हुए धन को बहादुरशाह किस पर खर्च करता था वह इमामबख्श सहबाई के राजमा-ए-जवाहिर से जाना जा सकता है जो बहादुरशाह के विषय में लिखता है, "अपने शाही कमरे को वह ऐसे सजाता है कि फूलों का झोंका भी गरमा जाय और अपने विलासपूर्ण शोभाओं के कारण उसके व्यक्तिगत कक्ष फलदार वृक्षों की ईर्ष्या की वस्तु बन गए हैं।" वह स्वाभाविक ही है कि ऐसे व्यक्ति ने "युद्ध में न तो तलवार चलायी और न किसी को मारा ही जबकि वह कान्ति (डा० महदी हुसैन की पुस्तक, पृष्ठ ११) यदि सफल हो जाती तो वह और जीनत महल मध्यकालीन सहशाह बनने के स्वाब देखते।"

भारतीय सेना का विद्रोह एक घमाके के साथ प्रारम्भ हुआ जबकि मेरठ में कुछ टुकड़ियों ने अपने अंग्रेज अधिकारियों को मारकर मई १०, १८५७ को दिल्ली की ओर कूच किया। मई १२ की प्रातः को लगभग आठ बजे वे लालकिले में घुस गये तथा बहादुरशाह से नेतृत्व ग्रहण करने के लिए कहा। यद्यपि बहादुरशाह इसके लिए सहमत नहीं हुआ पर सैनिक किसी भी नाममात्र के नेता की बहुत भारी आवश्यकता महसूस कर रहे थे अतः वे नकारात्मक उत्तर प्राप्त नहीं करना चाहते थे। मुस्लिम बादशाह अपने पादशामे में काँप गया। उसने अपने महल के व्यक्तिगत कक्षों में अनेक अंग्रेज नर-नारियों को मरण दे रखी थी। विद्रोही सैनिकों ने उसके कमरों का लाल पर्दा खींच दिया और समूचे महल में छा गए। उन्होंने क्रोधित होकर अपने बैतल मणि। भयभीत बादशाह ने निर्धनता की बात कही। अब उसके महल की एकान्तता और उसकी स्वयं की पावनता तो भंग हो ही गयी थी अतः विद्रोहियों ने बहादुरशाह को चारों ओर से घेर लिया। उन्होंने उसको धक्के मारे। एक आदमी ने उसके कपड़े पकड़कर खींचे और दूसरे ने उसकी दाढ़ी पकड़कर ताना मारने हुए "धरी बादशाह... धरी बुड्ढे" कहकर अपनी समस्त अच्छन्न सम्पत्ति को निकालने के आदेश दिये।

कहते हुए बहादुरशाह ने जिस पर स्वातन्त्र्य सेनानियों का नेतृत्व सौंप दिया गया था, १३ मई को एक दरबार का आयोजन किया, जिसमें कान्तिकारीयों के नेता बुलाये गये। मई १४ को अंग्रेजों ने दिल्ली खाली कर दी। मई १५ को दूसरा दरबार लगा और पुराने दिनों की भाँति ही

सभी अधिकारी शासक अपने ही भाई-भतीजे बना दिये गये। एक पुत्र जहीमदीन मिर्जा मुगल को प्रधान सेनापति, दूसरे पुत्र जवान बख्त को मन्त्री तथा जीनत महल को एक छोटा-सा न्यायकत्व दे दिया।

उचित संगठित सहयोग, शिक्षित तथा सुसूचित नेतृत्व तथा सम्मिलित लक्ष्य के अभाव में अपने श्रेष्ठ संगठन, एकमात्र लक्ष्य, सम्पूर्ण भक्ति तथा श्रेष्ठ नेतृत्व के कारण अंग्रेज इस महान् विप्लव को दबाने में सफल हुए। एक के बाद एक लड़ाई में बहादुरशाह के विदेशी हरे भण्डे के नीचे लड़ने वाले बुरी तरह हारते गये। बादशाह की प्रेमिका जीनतमहल यद्यपि बाहर से तो विद्रोहियों का संचालन कर रही थी, भीतर से अंग्रेजों की भेदिया थी। चाहे अंग्रेज जीतें और चाहे स्वदेशी सेना, और युद्ध का चाहे कुछ भी परिणाम हो उसका तो ऐसा जुआ था कि उसकी तो विजय होनी ही थी। उसने तथा हकीम अहसानुल्लाखाँ नामक एक विरुपात दरबारी ने अंग्रेजों के साथ पत्र-व्यवहार भी प्रारम्भ कर दिया।

सितम्बर १४ को अंग्रेज दिल्ली पर आक्रमण कर बैठे। नियति अब बहादुरशाह की ओर घूर रही थी। अंग्रेजी सेनाओं के दिल्ली नगर में प्रवेश कर जाने की बात सुनकर वह रो पड़ा और सिसकते हुए बोला, "मेरा डर सच्चा हुआ। इन कृतघ्नों ने वृद्धावस्था में मेरा विनाश कर दिया।" सितम्बर १६ को अंधेरे लालकिले में बहादुरशाह विल्कुल अकेला सेटा हुआ था। लगता था जैसे उसके चारों ओर के शून्य से उसके पूर्वजों की प्रेतात्माएँ उसकी ओर घूर-घूरकर उसे चिढ़ा रही हैं तथा लगा जैसे बहादुरशाह को भयभीत करने के लिए युद्ध के मिश्रित स्वर, ठण्डे फौलाद की आवाज, घायल तथा मरणासन्न लोगों की चिल्लाहटें, उसके अग्रगामी तथा प्रवेशकों की बहुत ऊँची-ऊँची आवाजें, तुरहियों के दृढ़ स्वर तथा अनेक ढोलों की घुटती हुई आवाजें उसे भयभीत कर रही हों। उसकी नस-नस में शीत-लहर व्याप्त हो गई। इस महान् बलवे में अपनी सिंहासन-प्राप्ति के लिए उसने एक मक्खी तक नहीं मारी और अब वह इतना एकाकी रह गया कि लालकिले में एक भी मक्खी नहीं भनभनाती थी। सेटा हुआ बुढ़ा हुक्का चामे हुए था। दुःखी हो हुक्के की कणें खींचकर वह नाक से पुष्पा निकाल रहा था और पूरे समय यही सोचता रहा कि कितना अच्छा होता यदि वह इसी सरलतापूर्वक अंग्रेजों को भी दिल्ली से निकाल देता।

उसके हरम के हरेक व्यक्तियों ने उसे त्याग दिया था। आठ दशकों के उसके प्रसन्न जीवन की यह प्रथम घामिनी थी जब बहादुरशाह निपट एकाकी सो रहा था।

सितम्बर २० की प्रातः अपने पूर्वजों द्वारा हड़पे हुए हिन्दुओं के इस लालकिले से वह भी भग्न गया। उसके प्रवेश एवं बहिर्गमन पर जो लोग उसके साथ चलते थे भी आज नहीं थे। उसका किसी ने अभिनन्दन नहीं किया। सर्वत्र मृत्यु जैसी शान्ति थी। वक्रे हुए बहादुरशाह ने तीन मील दूर सबतक के एक हिन्दू मन्दिर का मार्ग पकड़ा जिसमें मुस्लिम फकीर निजामुद्दीन दफन पड़ा है। मकबरे के समीप बैठकर वह रोने लगा, पर निजामुद्दीन की प्रेतात्मा ने उसको घोर कोई ध्यान नहीं दिया।

दुरी तरह रोकर बहादुरशाह ने मकबरे के रखवाले से बड़बड़ाकर कहा—“अब मैं बुढ़ फकीर हूँ। मैंने दीवार पर का लेख पढ़ा है। इस सम्पूर्ण वंशव के दुःखद घन का मैं गवाह हूँ। मैं तैमूर के घर का वह पश्चिम व्यक्ति हूँ जो हिन्दुस्तान के सिंहासन पर घासीन हुआ। मुगल साम्राज्य का दोषक अब दुकने वाला है।” यह कह निजामुद्दीन के मकबरे के रखवाले को उसने एक बक्स दिया। डा० महदी हुसैन (पुस्तक की भूमिका, पृ० २०) के अनुसार उस बक्स में मुहम्मद की दाढ़ी के तीन बाल थे, जिन्हें कहा जाता है, तैमूर वंशी १४वीं शती से अपने पास रखे हुए थे। सम्भव है उस बक्स में मुहम्मद के बाल न हों शाही कोष का कुछ अवशेष हो जिसे लालकिले से अन्तिम बार बाहर जाने की शीघ्रता में बूढ़ लड़खड़ाते बहादुरशाह ने साथ ले लिया था। बहुत सम्भव है यदि दिल्ली के लालकिले तथा प्रागरे के लालकिले एवं ताजमहल के अनेक भीतरी कमरों तथा छिपी दरारों को उचित एवं ठीक ढंग से खोजा जाए तो उन अनजाने स्थलों पर अब भी हिन्दू-मुस्लिम शाही युग का छुपा हुआ धन प्राप्त होगा।

बक्स देकर बहादुरशाह ने चैन की साँस ली। अब वह वस्तुतः फकीर था जिसके पास न तो शहंशाहियत थी और न धन। मानो अपनी निर्धनता के प्रतीक स्वरूप उसने मकबरे के रक्षक से भोजन माँगा। पिछले २४ घण्टों से न तो किसी ने उसके लिए भोजन तैयार किया था और न पानी का भिलाव दिया था। मोटा-झोटा जैसा कुछ घन्न था, वही बहादुरशाह को एक कटोरे में दिया गया। वह दृश्य सचमुच ही बड़ा बीभत्स था। एक

सहस्र वर्षीय इन शरारतियों के अन्तिम अवशेष, जिन्होंने हिन्दुस्तान में कहर मचा रखा था, के साथ मानो भाग्य अन्तिम निपटारा कर रहा था। कुछ भासों को शीघ्र निगलकर बहादुरशाह भरा हृदय ले हुमायूँ के मकबरे की ओर चला। उसकी कामना थी कि यदि फकीर निजामुद्दीन का प्रेत उसकी इयनीय दशा पर दया न दिखाएगा, कम-से-कम उसके महान् पूर्वज का प्रेत उसकी प्रतीक्षा में अवश्य सिर उठाएगा या कम-से-कम अन्तः शान्ति के लिए वह उसे अपने मकबरे में ही खींच लेगा ताकि बन्दी बनाये जाने प्रथवा नीच दोषी के समान तिरस्कारपूर्वक शिरच्छेद से ही मृत्ति मिल जाए। उसके अनुयायी पहले ही उस प्राचीन हिन्दू भवन, जिसे हुमायूँ का मकबरा कहा जाता है, पहुँच गये थे। वहाँ बादशाह तथा और सब हुमायूँ के मकबरे के नीचे के सबसे बड़े कमरे में एकत्र हो गये। २१ सितम्बर को हडसन, रज्जबअली तथा ५० घुड़सवार उस हिन्दू महल में पहुँचे जिसे मुस्लिम कब्र बना दिया गया था। रज्जबअली ने जीनतमहल से वार्ता प्रारम्भ कर दी। यह वार्ता तीन घण्टे चलती रही फिर भी समाप्त नहीं हुई। हडसन की टुकड़ियों के बाहर विपक्षी भीड़ निस्सहाय अवस्था में खड़ी रही।

अन्त में “वक्रतापूर्वक दो पालकियाँ बरामदे की ओर दिखाई पड़ीं। शहंशाह की अत्यन्त दुर्बल मुड़ी हुई शक्ल परदों के भीतर से भाँकती हुई दिखाई पड़ी।”—रिचर्ड कोलियर (‘द ग्रेट इण्डियन म्यूटिनी’ नामक पुस्तक में) लिखते हैं।

अब तक के शाही शहंशाह से वेगम को छोटे से घर में ले जाने के लिए आज्ञा दी गई। दुर्बल तथा कांपता हुआ, तारदार खाट पर लेते हुए, बहादुरशाह के दन्तहीन मसूड़े हुक्का चूस रहे थे। “कभी-कभी उसे बड़ा वमन होता था। वह इतना ओकता था कि बारह बर्तन तक भर जाते थे। पास के ही पदों पड़े हुए कमरे में जीनतमहल थी जो शहंशाह के अविवेकता-पूर्ण बोलने से पिजरे में बन्द फास्ता की तरह चिल्ला उठती थी।”

दूसरे दिन हडसन ने तथाकथित हुमायूँ के मकबरे पर फिर घावा बोला जिसे भाग्य ने घमण्डी मुगल शासन के लिए अन्तिम स्थल बना दिया था। हडसन ने बहादुरशाह के दो पुत्रों और एक नाती को गोली से उड़ा दिया तथा उनके सिरों को काटकर अन्य २६ के सिरों के साथ, जो शाही-

घराने के ही खून थे तथा जिससे रक्त बू रहा था दुःखी बादशाह के सामने पेश किया। इतिहास की पन्नों की सुइयों ने चक्र पूरा कर लिया था। ऐतिहास ने मुगलों के विरुद्ध घुमना प्रारम्भ कर दिया था। शाहजादों के तिर छोटे-छोटे भूसात् हो रहे थे तथा रक्तपूर्ण तशतरी में अबतक के शहजाह के समय प्रस्तुत किये जा रहे थे। मुहम्मद बिन कासिम से लेकर हजार वर्षों के भारत के मुस्लिमकालीन इतिहास में जो बघ होते रहे मानो यह उन्हीं का ख्यंगचक्र प्रतीक था।

बहादुरशाह को एक बार पुनः नालकिले में भेज दिया गया पर इस बार ऐसा नहीं था कि उसके दरबारी बहादुरशाह की कठिनता से उच्चरित होने वाली उपाधियों को बोल रहे हों। एक दरबारी ने अबतक के बादशाह को यह कहकर "बन्दी" घोषित किया कि उसने बहुत बड़ा राजदंड किया है। जनवरी २७ से मार्च १, १८५८ तक ४२ दिन उस पर सुकहना चला।

जिस टीकान-ए-कास में बहादुरशाह बादशाह की भाँति सुशोभित होता था, उसी में उसपर सुकहमा चला। उस पर अनेक अभियोग थे—सैनिकों से विद्रोह कराना, अपने प्राधिकृत तथा दिल्ली के अन्य लोगों को विद्रोह के लिए उकसाना, अपने को बादशाह घोषित करके अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ कर देना तथा १६-१७ मई को ४६ यूरोपियों को कत्ल कर देना।

इस मुकद्दमे से अनेक तथ्य प्रकाश में आए। एक ओर तो बहादुरशाह ने उन किपाहियों के साथ बिश्वासघात किया जिन्होंने मूल्यतावश उसे अपना बादशाह मान लिया था दूसरी ओर उसने ईरान के शाह से बात-चीत करवाई कि वह बिधमियों (अंग्रेज तथा अन्य गैर-मुस्लिम) के विरुद्ध विद्रोह छेड़ने के लिए हिन्दुस्तान में मुस्लिम सेना भेज दे। इससे स्पष्ट है कि अन्तिम पवन शहजाह पहले की अपेक्षा न तो अधिक बुद्धिमान् था और न कम धर्मान्ध। पूरे सहस्र वर्षों तक वे ईरान को अपना आध्यात्मिक तथा धार्मिक सन्तुलन का घर मानते थे जो कभी भी जादू की तरह गैर-मुस्लिमों का घन्ट करने के लिए मुस्लिम सेना भेज सकता था। प्राणचर्य है कि ईरान का शाह भी सान्ताक्लॉज (Santaclaus) की भाँति सदैव संभार रहता था, पर वह अपना भाग अवश्य माँगता था। जिस प्रकार

तत्कालीन शाह ने हुमायूँ के सामने शिया होने की शर्त रखी थी, बहादुरशाह ने भी यह वचन दिया था कि यदि वह मुस्लिमों को उसके अधीन कर दे तो वह स्वयं को शिया घोषित कर देगा। अपने देश के प्रतिरिक्त अन्य देश से भक्ति रखने वाले सदैव रहे हैं। विद्रोह की हलचल में बहादुरशाह के पुत्रों ने दिल्ली के नागरिकों को ठीक उसी प्रकार लूटा था, जिस प्रकार उनके पूर्वजों ने विगत वर्षों में।

इस मुकद्दमे के फलस्वरूप दिल्ली के विशेष प्रायुक्त के आदेशानुसार विद्रोह के लिए २६ मुगल शाहजादों को प्राणदण्ड मिला। १५ बन्दी बनाये जाने के समय अथवा उस समय मर गये जब उन्हें जीवनभर की सजा सुनाई गई। अन्य १३ मुगल शाहजादों को आगरा में कठोर कारावास में रखा गया तथा बाद में छोड़कर रंगून भेज दिया गया, जहाँ उन्हें केवल दस रुपये महीना देकर उनपर कड़ी निगरानी रखी गई। अन्य १३ को जीवन भर का कारावास देकर मोलमीन तथा करांची भेज दिया गया। राजकीय गड़बड़घोटाले के कारण जिन्हें करांची भेजा जाना था उन्हें आगरा जेल से कानपुर और वहाँ से कलकत्ता की अलीपुर जेल भेज दिया गया।

बहादुरशाह के साथ उसके अतिरिक्त २८ बन्दी और थे—उसकी पत्नी जीनतमहल, उसका लड़का जन्नानबख्त, दूसरा हरामी लड़का मिर्जा शाह अब्बास, जन्नानबख्त की पत्नी जमायी बेगम, उसकी बहन रुकइया सुलतान बेगम तथा उसकी एक छोटी लड़की, मुमताज दुल्हन बेगम, दोनों बहनों की माँ, छह हरम की स्त्रियाँ, ताजमहल बेगम, सुलतानी, रहीमा इशरत, तहारत तथा मुबारकुन्वीस, पाँच मरदाने नौकर और जनाने नौकर। इनमें से कुछ नौकरों के साथ उनके दो-तीन बालक भी थे।

इस दल ने दिल्ली से इलाहाबाद के रास्ते अक्टूबर ७, १८५८ को प्रातः नवी लैन्सर्स टुकड़ी के पहरे में घोड़ागाड़ियों से प्रस्थान किया।

जब यह दल १३ नवम्बर को इलाहाबाद पहुँचा तो उनके चौदह साथियों ने कुछ और ही सोचा। उनकी वही रहने की इच्छा थी अतः उन्हें इलाहाबाद के दुर्ग में बन्द कर दिया गया। कुछ नौकरों के अतिरिक्त ये ताजमहल बेगम, मुमताज दुल्हन तथा उसकी लड़की रुकइया सुलतान थे। इलाहाबाद में अंग्रेजी डाक्टरों के एक दल ने बहादुरशाह का डाक्टरों

मुघायना किया। इलाहाबाद से इन बन्दियों को नाव द्वारा मिर्जापुर ले जाया गया, जहाँ उन्हें सुरमाफलेट नामक नाव में चढ़ाकर टेक्स स्टीमर पर बिठाने के लिए भेज दिया गया। नवम्बर १६ को इलाहाबाद से चला हुआ यह इल २२ नवम्बर को बक्सर और २३ को दीनापुर पहुँचा। ४ दिसम्बर को डायमण्ड हारबर पहुँचने पर इन बन्दियों को मेघरा (Megara) नामक जहाज पर स्थानान्तरित कर दिया गया। वे दिसम्बर ६, १८५८ को रंगून पहुँचे।

रंगून में इन बन्दियों में से कुछ को तो तम्बुओं में रख दिया गया और कुछ को चौकीदार के विभाजित किए कमरे में। कप्तान एच० एन० डेवीज इन बन्दियों के इंचार्ज थे।

लकड़ी का मकान बनाकर इन बन्दियों को स्थानान्तरित कर दिया गया। इनमें १६ फुट वर्ग के चार कमरे थे। १६ बन्दियों के भोजन पर प्रतिदिन लगभग ११ रुपये खर्च किये जाते थे। रविवार को एक और रुपया खर्च कर दिया जाता था। महीने की पहली तारीख को उन्हें साबुन, तेल आदि के लिए प्रत्येक को दो रुपये और दे दिये जाते थे।

अन्त में शुक्रवार, नवम्बर ७, १८६२ को प्रातः पाँच बजे बहादुरशाह अल्ताह के प्यारे हो गये। उनका गला कैंसर से रेंव गया था, जिसके कारण न तो वे कुछ झील पाते थे न कुछ निगल पाते थे। उसी शाम को चार बड़े मुख्य गार्ड के पीछे उन्हें दफना दिया। कब्र पर तिनके डाल दिये गये तथा शेष भाग को इस प्रकार एक-सा कर दिया गया ताकि पता न लगे कि कहीं दफनाया गया है। विश्व की अनेक अन्य मुस्लिम कब्रों के समान रंगून में मुगलों के अन्तिम नाम के शहंशाह बहादुरशाह की कब्र भी बनावटी है, जो १६०३ में भारतीय मुसलमानों के एक दल द्वारा अनुमान से बाद में बना दी गई।

पुस्तक पृष्ठ ४२६ पर डा० महदी हुसैन लिखते हैं, "कुछ प्रचलित उबावों के लोगों के मार्गनिर्देशन के पश्चात् उन लोगों ने मुस्लिम धर्म के नीचे अस्थायी रूप से, खोजी जाने वाली कब्र का स्थान मान लिया, फातिहाखानी कर दी गयी तथा बाद में उसके ऊपर मकबरा बनाये के प्रयास किये गये।" अनेक मुसलमानों के नाम से जलता से बन देने की अपील की गई किन्तु अंग्रेज सरकार द्वारा इस

योजना पर नाराजगी दिखाए जाने के कारण इसे छोड़ दिया गया। वर्तमान मकबरा १६३४ में बनाया गया। जैसा कि अभी कहा गया है इसका वास्तविक दफनाए गए स्थल से कोई सम्बन्ध नहीं—यह मकबरा तो केवल मकबरे के लिए ही बनाया गया है।

इस अन्तिम मुगल की मृत्यु ने हिन्दुस्तान के विदेशी शासन के अत्यन्त घृणित एवं लम्बे अध्याय पर पर्दा डाल दिया और अन्त इतना पूर्ण था कि अन्तिम मुगल की कब्र तक का नामोनिशान न रहा।



हमारे अन्य प्रकाशन

श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक की खोजपूर्ण ऐतिहासिक रचनाएँ

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—1

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—2

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—3

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—4

भारत में मुस्लिम सुल्तान—1

भारत में मुस्लिम सुल्तान—2

कौन कहता है अकबर महान् था ?

दिल्ली का लाल किला लाल कोट था

Agra Red Fort is a Hindu Building

Christianity is Chrshn Niti

कठहपुर सौकरों हिन्दू नगर है

लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन है

ताजमहल मन्दिर भवन है

भारतीय इतिहास की भवकर भूलें

विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय

ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है

फल ज्योतिष (ज्योतिष विज्ञान पर अनूठी पुस्तक)

Some Blunders of Indian Historical Research

साहित्यकार गुरुदत्त

प्रतिनिधि रचनाएँ

इस बीसवीं शताब्दी में यदि किसी साहित्यकार ने जन-जन पर अपनी छाप छोड़ी है तो वह हैं गुरुदत्त ।

२५० में से इस समय उनकी लगभग १०० रचनाएँ ही उपलब्ध हैं तथा अन्य सबके कई-कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और अभी भी अनुपलब्ध हैं ।

सभी रचनाओं का पुनर्मुद्रण एक असम्भव-सा प्रयास होगा । अतः हमने यह निश्चय किया है कि उनकी प्रतिनिधि रचनाएँ जो हर दृष्टि से अपने क्षेत्र (विषय) का प्रतिनिधित्व कर सकें, का प्रकाशन प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में किया जाये ।

श्री गुरुदत्त जी स्वयं कहते हैं कि उन्होंने लेखन-कार्य चुनौती के रूप में आरम्भ किया था । जिस-जिस विषय में उन्हें चुनौती मिली, उस-उस विषय में उन्होंने युक्ति-युक्त विवेचनात्मक ढंग से लेखन कार्य किया ।

उनका क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत रहा है । राजनीति, संस्कृति, इतिहास तथा शास्त्र—प्रायः प्रत्येक विषय को उन्होंने अपने लेखन का आधार बनाया है ।

अतः प्रत्येक विषय पर उनकी चुनी हुई रचनाएँ अपनी इस शृंखला में हम प्रस्तुत करने जा रहे हैं ।

